UNIVERSAL LIBRARY

OU_180109

UNIVERSAL LIBRARY

Osmania University Library

Call No. H 83 S56B     Accession No. H 3277

Author शुक्ल, कमल

Title बौखला 1957.

This book should be returned on or before the date last marked below.

# बावला

वर्तमान परिस्थितियों के जलते प्रश्नों की समस्याओं का समाधानात्मकक
एवं मनोविश्लेषणात्मक समाजिक उपन्यास

लेखकः
श्री कमल शुक्ल

ऐलोरा पब्लिशिंग हाउस
छत्ता बाजार मथुरा

प्रथम बार:— १५ अगस्त १९५७

★

★

प्रकाशक:—ऐलोरा पब्लिशिंग हाउस, मथुरा
लेखक:—श्री कमल शुक्ल
चित्रकार:—किशोर स्टूडिओ, मथुरा
सर्वाधिकार:—प्रकाशक द्वारा सुरक्षित
मुद्रक:—सुभाष प्रिंटिंग प्रेस, मथुरा
मूल्य:—रु० ५.००

# एक बात

यद्यपि आज के इस प्रगतिशील युग में कथा-साहित्य में भूमिका और प्रस्तावना आदि देने का रिवाज उठता-सा जा रहा है; लेकिन अनुज श्री जगदीश शर्मा के विशेष अनुरोध पर 'बावला' के सम्बन्ध में मैं अपने कुछ विचार व्यक्त करता हूँ।

'बावला' की कहानी कोई एक कथा नहीं; बल्कि कई समस्याओं का समाधान है। यह कृति मनोवैज्ञानिक तथ्य को लेकर चलती है, जिसमें वर्तमान अपने जीते-जागते और जलते प्रश्न लेकर प्रस्तुत हुआ है। जीवन असफल होकर भी किस भाँति मुस्करा सकता है और उन्नति के शिखर पर पहुँचा हुआ मनुष्य, नीचे आकर कैसे जमीन सूँघने लगता है। पात्रों के अंतर्द्वन्द्व, इन सबके प्रमाण हैं, और स्वप्न-लालित्य को लेकर, जागरण होते ही, कटु अनुभव में बदल, जिन्दगी को एक दर्पण बना देते हैं। हार-जीत, राग-रँग, ईर्ष्या-द्वेष और जीवन-गत संस्कारों के आदान-प्रदान से ओत-प्रोत यह यथार्थ की पृष्ठ-भूमि पर खड़ा 'बावला' बतायेगा, जो जिन्दगी पाकर भी मौत माँगता रहा और मौत उससे दूर भागती रही। स्वत्व, सत्ता और स्वाभिमान इन तीनों के ज़हरीले घूँट पीकर, उसने संयम और सन्तुलन गँवा दिया। वह 'बावल' हो गया।

यह है 'बावला' की कथा, पाठकों को इसमें अपनी जीवन-गत और वर्तमान कटु अनुभूतियों, नये मोड़ और उतार-चढ़ावों का प्रत्यक्ष दर्शन मिलेगा। तथ्य को अपनाने और न अपनाने की बात दूसरी है।

*१५ अगस्त १९५७*
*मथुरा प्रवास*

—कमल शुक्ल

# दो शब्द

अपनों की प्रशंसा तो सभी करते हैं, किन्तु मैं यहाँ जो भी निवेदन कर रहा हूँ वह प्रशंसा के रूप में नहीं बल्कि वास्तविकता के रूप में दो शब्द पाठकों से कह रहा हूँ।

'बावला' मेरी अपनी दृष्टि में शुक्ल जी के अब तक की सभी कृतियों में श्रेष्ठ है—वैसे कला की परख आज तक सही रूप से कौन कर सका है यह कहना भी बड़ा कठिन है। बावला की कहानी एक ऐसे कठोर सत्य को लेकर बढ़ती है कि पाठक उसमें अपने को उलझाये चला जाता है। वर्तमान परिस्थितियों के जलते प्रश्नों की समस्याओं का समाधान बड़ी सावधानी से किया है। देवकुमार बैंक का क्लर्क है। उसकी पत्नी गाँव की सीधी-सादी ग्रामीण बाला है। पति शहर के वातावरण में रहने के कारण चाहता है कि पत्नी पढ़ी-लिखी बन, उसमें घुल जाये—किन्तु गाँव की मर्य्यादा की सीमा न जाये। दोनों की मनोदशा अजीब है। यदि शहरी वातावरण में पढ़-लिख कर मिलने को कदम बढ़ाती है, पति की ओर से आदेश, गाँव की मर्यादा की दीवार उसे पांव समेटने को बाध्य करती है तो पाती है उपहार में गँवार, अपढ़ की उपाधियाँ। इस स्थान पर शुक्ल जी ने उक्त सभी समस्याओं का समाधान जिस ढंग से किया है वह सराहनीय है।

दूसरी ओर सहायक नायिका 'चारुशीला' एवं डा० हरीश को लेकर हिन्दू कोडबिल की समस्या का समाधान, जो पूरे भारत का एक आवश्यक अंग बन गया है; बड़ी ओजपूर्ण शैली में किया गया है।

इन सभी बातों को ध्यान में रखते हुए मैं यह दावे से कह सकता हूँ कि शुक्ल जी के अन्य उपन्यासों से 'बावला' उनकी श्रेष्ठतम कृति है। आशा ही नहीं वरन् पूर्ण विश्वास है कि 'बावला' हिन्दी-साहित्य की एक भारी कमी को पूरा करने में सफल कृति रहेगी और कमल शुक्ल जी इसके बधाई के पात्र रहेंगे।

—जगदीश शर्मा

# शुक्लजी के बारे में कुछ साहित्यकारों का मत

श्री प्रोफेसर वासुदेव एम० ए०—

············श्री प्रेमचन्द्रजी के गोदान के ६०० पृष्ठों को शुक्ल जी ने अपने 'काले नगर में' नामक उपन्यास के १३८ पृष्ठों में समाविष्ठ कर दिया है। शुक्ल जी ने अपने को अन्य उपन्यासकारों की भाँति 'वादों' का बन्दी नहीं बनाया········ "

श्री राहुल सांकृत्यायन —

············लेखक की लेखनी को में दाद दिये बिना न रह सका········ ।"

श्री डा० रांगेयराघव—

"·········लेखक ने अपनी कृतियों में गहराई का परिचय दिया है। पारिवारिक मनोविज्ञान के चित्रण में वह खूब सफल रहा है। ऐसे उपन्यासकारों का हिन्दी में अभाव है।"

श्री भगवतीप्रसाद बाजपेयी—

·········लेखक ने शालीन मनोवृत्ति का परिचय दिया है, और उसके कथासूत्र का मांगलिक विन्यास देखते ही बनता है। कथोपकथन और चरित्र चित्रण दोनों में उसे पूर्ण सफलता मिली है और घटनायें इस भाँति परिचित हुई है लगता है जो कुछ हैं सब आंखों देखा और आपबीता है।

## एक

आज शनिवार था। बैंक का खजाना अन्य दिनों की अपेक्षा दो ही बजे बन्द हो गया था। खजांची रुपये सहेजने में व्यस्त थे। किसी के हाथ में नोट फिसल रहे थे और कोई रेजगारी खनकाता हुआ, गिन रहा था। बैंक के हाल में लगे क्लॉक का पेण्डुलम अनवरत रूप से डोल रहा था। देवकुमार की आँखें बार-बार उस ओर उठ जातीं। मोटा-सा लेजर खुला सामने रखा था, उसकी पेशानी पर स्वेद की बूँदें तिर आई थीं, लगता था पसीना अभी कागज पर चू पड़ेगा। उसकी मुद्रा, उसकी उलझन को स्पष्ट कर रही थी। वह अपने में लय था और बैंक का मन्द जन–कोलाहल उसे जैसे सुनाई ही नहीं पड़ रहा था। सहसा घड़ी ने लगातार चार चोटें कीं। अब देवकुमार क्लॉक के डायल पर अङ्कित काले अङ्कों पर दृष्टि टिका कर रह गया।

तभी, पास बैठे हुए दूसरे क्लर्क राधामोहन ने देवकुमार की मीठी चुटकी ली। वह किंचित मुस्कराहट के साथ पूछ बैठा—"क्या मामला है देव! आज तुम कुछ परेशान से नजर आ रहे हो?"

देवकुमार चौंक उठा। अपनी दुर्बलता पर आवरण डालता हुआ वह जल्दी-जल्दी कहने लगा–"कुछ भी नहीं, कोई बात नहीं है राधामोहन बाबू ! पता नहीं आज चित्त उचाट-उचाट सा क्यों है। बहुत कोशिश करता हूँ; लेकिन काम में मन ही नहीं लगता।"

इस पर राधामोहन को हंसी आगई। वह बहुत ही गुदगुदे लहजे में एक सुर्रा छोड़ता हुआ बोला :"यह तो पुरानी आदत है तुम्हारी। इसीलिए तो रोज टोकता हूँ, कि ज्यादा सोचा न करो। छोटी-छोटी बातों को मन में पाल लेते हो, सोचो तो इसमें तुम्हारा नुकासन ही है, कोई फायदा नहीं।"

चर्र-मर्र अपने काले बूटों को चरमराता हुआ सफेद बर्दी में लिपटा चपरासी देवकुमार के निकट आकर अपनी बात कह कर चला गया कि मैनेजर साहब बुला रहे हैं; लेकिन देवकुमार तथ्य को नही नहीं समझ पाया। वह गुमसुम बैठा रहा। तब राधामोहन ने उसे फिर टोका इस बार उसके स्वर में एक आत्मीयता थी और थी एक मीठी भर्त्सना।

"बैठे क्यों हो, जल्दी जाओ, साहब बुला रहे हैं। कभी कभी तो तुम बिल्कुल विदेह ही बन जाते हो ?"

मित्र की यह बात सुनकर देवकुमार एक सांस में खड़ा हो गया और तेजी से कदम बढ़ाता हुआ एजेन्ट के आफिस की ओर चल दिया।

लेजर में क्रेडिट और डेबिट की कुछ भूल हो गई थी। पार्टी की शिकायत सामने थी। एजेन्ट देवकुमार को देखते ही बिगड़ उठा। वह कह रहा था–"रोज तुम्हारी शिकायत मिलती है, क्या बात है देवकुमार ? आँखें खोल कर पढ़ा-लिखा करो यह बनिये की दुकान नहीं, बैंक है। आखिर कहाँ तक बर्दास्त किया जा सकता है कल सेठ हीरामन की चैक तुमने वापिस कर दी उनके दस्तखत बिल्कुल ठीक मिलते थे और

आज लाला करोड़ीमल के हिसाब में फिर फर्क डाल दिया बस समझ लो, कल से तुम्हारी कोई भी गलती माँफ नहीं की जायगी ।"

एजेन्ट की मेज पर रखी टाइम पीस टिक-टिक कर रही थी। सर्र बांधे सीलिंग फैन नाच रहा था, जिससे कलेन्डर झूल रहे थे और देवकुमार के घुँघराले भूरे बाल उड़ रहे थे। वह हक्का-बक्का सा बना खड़ा था और एजेन्ट कह रहा था-"जाओ न अब, मेरा मुँह क्या देख रहे हो ?"

देवकुमार पुनः अपनीं कुर्सी पर आकर आसीन होगया। राधा-मोहन अपने काम से फुरसत पा चुका था। वह आते ही उससे कहने लगा—"देवबाबू ! घर-घर है और बाहर-बाहर। घर की समस्याओं को यहाँ बैठकर सुलझाओगे तो नौकरी अपना दावा जरूर करेगी। आज क्या बात हुई ? साहब कुछ अधिक तो नहीं बिगड़े ?"

"हूँअ, यह तो रोज का धन्धा है। कहाँ तक हर एक की खुशी और नाखुशी के लिए चिन्ता करूँ, आज कुछ जल्दी जाना चाहता था मां के लिए गांव दवाइयाँ भेजनी हैं। मन उसी ओर लगा हुआ है कि अगर तनिक भी देर हो गई तो विद्याधर नहीं मिलेगे। वे सात बजे की ट्रेन से जा रहे हैं, मैं तो अपनी उलझन में था और यहां एजेन्ट महोदय अपनी दूनकी हांक रहे हैं।"

राधामोहन देवकुमार के तुनक मिज़ाज़ी स्वभाव से भलीभांति परिचित था। वह हँसी के मिस कहने लगा—" अच्छा, तों यह बात थी ! भले आदमी जिस काम के लिए अभी तुम्हें इतनी उलझन है अगर उसको समय से पहले सबेरे ही पूरा कर लिया होता तो यह नौबत क्यों आती ?"

देवकुमार मन ही मन कुछ खीझ सा गया था। राधामोहन की यह बात उसे प्रवचन सी लगी। उसने कलम हाथ में साध लिया और दृष्टि खुले हुए लेजर पर गढा दी।

जब छः बजे तो दोनों मित्र साथ-साथ बैंक के जीने से उतर कर सड़क पर आये। इस समय नीला आसमान गोरी-काली बदलियों से आच्छादित हो रहा था। हवा ने जैसे न डोलने की कसम खाली थी और उमस अपने प्राबल्य की सीमा को पार कर रही थी। सड़क पर अच्छी खासी भीड़ थी और था तुमुल जन–कोलाहल। तारकोल की काली सड़क नगरपालिका की मोटर से नहलादी गई थी। उससे भभक निकल रही थी। कारें रपट रही थीं, रिक्शे दौड़ रहे थे, यात्री चल रहे थे और खोंमचे वाले बोलियाँ लगा रहे थे। देवकुमार के डग जल्दी-जल्दी उठ रहे थे और राधामोहन कह रहा था—"कल रात को चारुशीला आ गई है, आज उसका आग्रह है कि अपनी भाभी शरबती के साथ वह सिनेमा जायेगी। जाते ही कह देना, ताकि हम लोगों के आने पर तुम दोनों तैयार मिलो।"

देवकुमार तत्क्षण ही चौक कर बोल उठा—"इस शो में जाना नही हो सकेगा, छः बज गये हैं, अभीं मुझे घुमनी मोहाल जाना है, वंहाँ से लौटते-लौटते देर हो जायगी। बेहतर तो यह होगा कि अगर प्रोग्राम कल मैटनी शो का रखो।"

लेकिन राधामोहन अपनी बात पर अड़ गया और ज़ोर देकर कहने लगा—"यह कुछ नही, तुम पहले घुमनी मोहाल ही क्यों न चले जाओ; वहाँ से पँचकूँचा है ही कितनी दूर ? चारु घर में तैयार मिलेगी, जाते ही मैं उसको लेकर तुम्हारे घर आ रहा हूँ, तुम······।"

देवकुमार के मुख पर आकुलता के चिह्न स्पष्ट होने लगे। वह बीच ही मे बोल उठा—"लेकिन मेरी बात तो सुनो मे·:····।"

"लेकिन वेकिन कुछ नही। मै केवल इतना जानता हूँ कि अभी तुम्हारे घर पहुँच रहा हूँ, और तुम लोग मुझको तैयार मिलो।" राधा-मोहन यह कह कर दूसरी गली की ओर मुड़ने लगा। उसका घर हटिया में था, और देवकुमार को जनरल गंज पँचकूँचे में जाना था।

देवकुमार मन ही मन राधामोहन पर खीझता हुआ घर की ओर बढ़ने लगा। वह सोच रहा था कि न जाने लोगों की राग-रंग में विशेष रुचि क्यों होती है। कोई भी तो अपने में पूरा नहीं है। सांसारिक समाजगत परिस्थितियाँ, विवशताएँ बन मानवीयता का कलेजा कचोट रही हैं। फिर भी आदमी खुश है न जाने उसे हँसी कैसे आ जाती है? एक राधामोहन है और एक मैं, वह मिलनसार है और मैं एकाकी। वह अपना दुख-सुख भूल सकता है, लेकिन मैं अपने अभावो के सम्मुख हँसी से मेल नहीं कर सकता। उसका मन है तो पूरी-पूरी कोशिश करूँगा कि नियत समय पर मैं उसको घर पर तैयार मिलूँ।

देवकुमार के मन में विचारों की दौड़ भाग मच रही थी। पथ का अन्त निकट आ गया था। चौखट पर खड़ी शरबती उसकी राह देख रही थी। पति को देखते ही कली हँस पड़ी और फूल बन गई। वह पति के बूट खोलने के लिये आगे बढ़ी वैसे ही देवकुमार ने मना कर दिया। वह व्यस्त स्वर में कहने लगा—"अभी ठहर जाओ लपक कर मैं विद्याधर को दवाइयाँ दे आऊँ।" यह कहने के साथ उसकी दृष्टि बांयी कलाई पर बंधी रिस्टवाच पर दौड़ गई और उसके मुँह से निकल गया—"अभी छे बज गये हैं, मैं अभी आता हूँ। चारु शीला और राधामोहन आते होंगे। उन लोगों ने सिनेमा जाने का प्रोग्राम बनाया है तब तक तुम कपड़े बदलो मैं अभी दो मिनट में आया।" यह कहने के साथ देवकुमार जल्दी से घर के बाहर निकल गया और शरबती जहाँ की तहाँ ही खड़ी रह गई।

× × ×

यों तो आजकल सूरज लगभग सात बजे डूबता था; लेकिन इस समय बदली थी जिससे गोधूलि बेला में ही ऐसा लग रहा था कि रात का अन्धेरा जमीन पर उतर रहा है। सड़कों पर वत्तियां जल गईं थी और साँझ का सलोनापन मुखर-मुखर रह जाता था। राधामोहन

की पत्नी रेवा ने आज प्रदोष का व्रत रक्खा था। अतः चलचित्र देखने के लिए उसने इन्कार कर दिया तब चारुशीला अपने भाई के साथ देवकुमार के घर की ओर चल दी।

वहाँ शरबती कपड़े बदले तैयार बैठी थी। चौके में थाली सजी रखी थी कि देवकुमार आये और भोजन करके राधामोहन के साथ चल दे। इसके अतिरिक्त स्टोव पर केतली में चाय का पानी खौल रहा था यह आयोजन शरबती ने अभ्यागतों के लिये किया था। कमरे में बिजली के बल्व का प्रकाश अपने पूर्णांशों में फैल रहा था लगता था कि रात का रङ्ग निखर आया है, तभी प्रकाश अपने अस्तित्व की चरम सीमा पर जा पहुँचा है।

देर हो गई और देवकुमार घर नहीं लौटा। अब शरबती को उठा-बैठी सी लग रही थी। वह बार बार दरवाजे पर जाती, दूर तक अपनी नजर बिछा देती फिर एक दीर्घ उच्छ्वास ले प्रत्यावर्त्तन के रग में रँग जाती।

राधामोहन और चारुशीला ने घर में प्रवेश किया तो शरबती हक्का-बक्का सी उनकी ओर देख कर कहने लगी—"वे अब तक नहीं आये, आप लोग अपने ठीक समय पर आ गये। आइये बैठिए।" यह कह कर उसने कमरे में पड़ी दोनों बेंत की कुर्सियों की ओर शिष्टता पूर्वक इंगित कर दिया।

और जब दोनों भाई-बहन बैठ गये तो वह जल्दी से जा चाय छानने लगी।

यह देख राधामोहन हैरानी के स्वर में बोल उठा –"देर बहुत होगई है, छः बजकर चालीस मिनट होगये। यह सब मत करो! चलो, जल्दी करो, देवबाबू आते ही होंगे।"

किन्तु शरबती अपने कार्य में व्यस्त रही। वह प्यालों में चाय ढ़ालकर ले आई। फिर दो प्लेटों में स्वयं बनाये हुए नमकीन सेब दोनों

के पास रख, वहीं एक मूढ़े पर आसीन हो गई। इतने में चारुशीला ने अपनी अकुलाहट का प्रदर्शन किया। वह व्यस्त गले से कहने लगी—"मालूम होता है भइया, कि हम लोगों को डाकूमैंटरी रील (न्यूजरील) देखने को नहीं मिलेगी—पौने सात बज गये हैं, खेल शुरू हो गया होगा। पता नहीं देव भइया कहाँ रह गये ?"

शरबती का ध्यान सहसा टेबिल-फैन की ओर गया। उसे अपने पर खीझ मालूम हुई, जल्दी से पंखा खोल दिया और फिर उदासी के स्वर में कहने लगी—"अभी उन्होने खाना भी नहीं खाया, देर काफी हो गई है, आप लोग अपना प्रोग्राम क्यों खराब कर रहे हैं, अब जाना क्या हो सकता है ?"

इस पर चारुशीला उठकर खड़ी हो गई। उसने चाय समाप्त कर ली थी। आग्रह भरी वाणी में वह शरबती से कहने लगी—"तुम तो चलो भाभी, देव भइया क्या पता सीधे टाकीज ही पहुँच गये हों ?"

राधामोहन भी बहन के समर्थन में बोल उठा—"हाँ, जरूर यही हुआ होगा; क्योंकि मैंने देवबाबू को बता दिया था कि सेन्ट्रल टाकीज चलना है।"

शरबती दोनों की बातें सुनकर अत्यन्त सरलता के साथ धीरे-धीरे कहने लगी—"नहीं, ऐसा नहीं हो सकता, पहले वे घर ही आयेंगे।"

राधामोहन चौंक कर शरबती की ओर देखने लगा और चारुशीला उसको अपने साथ ले जाने के लिये जोर देने लगी; किन्तु शरबती ने मर्यादा का बन्धन नहीं तोड़ा। वह उन लोगों के साथ नहीं जा सकी। चारुशीला और राधामोहन को अकेले ही सिनेमा जाना पड़ा।

× × ×

एक लम्बे मौन के बाद हवा ने साँस ली, जिससे उसकी लहरें बल खाती हुई बहने लगी। गगन पर छाये मेघ भाग गये थे, तारे निकल आये थे और त्रयोदशी का चाँद अब तक अम्बर की कैद से नहीं

छूटा था। अतः रात अन्धेरी थी। शरबती उद्विग्नावस्था में कमरे में बैठी थी। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि आखिर वे ( देवकुमार ) कहाँ रुक गये। सहसा पड़ोस के मकान में घड़ी सात बार टनटनाकर बजी, उसने सुना और चौंक उठी। वह चौखट पर जा, किवाड़ से सट कर खड़ी हो गई और पति की बाट जोहने लगी।

बहुत देर हो गई। शरबती खड़ी एक टक सामने की ओर देखती रही; किन्तु देवकुमार नहीं लौटा। वह अपनी उलझन में थी कि सहसा अन्दर से दो बिल्लियों के लड़ने की आवाज सुनाई दी। वह भागी-भागी अन्दर आई, देखा कि भोजन की थाली पर दो बिल्लियाँ जुटी हैं; दोनों आपस में लड़ रही हैं। उसे देखते ही बिल्लियाँ भाग गईं, खाना सब बिखर गया था—फैल गला था। कुछ बिल्लियाँ खा गई थी और बाकी फर्श पर गिरा गई थीं। शरबती रसोई में ही बैठ गई। वह सोचने लगी कि जब उनको मालूम था कि चारुशीला और राधामोहन आयेंगे और मुझसे भी कह गये थे कि कपड़े बदल कर तैयार रहना; फिर क्या बात हो गई जो अब तक नहीं लौटे? कहीं कोई अनहोनी तो नहीं हो गई? कोई नहीं जानता कि पलक मारते ही क्या से क्या हो जायेगा?

अपनी उधेड़-बुन में व्यस्त शरबती घर में इधर-उधर भटक रही थी, जब इस बार घड़ी ने आठ बजाये तो वह चिहुंक कर रह गई। उसकी मन-स्थिति अनियन्त्रित होने लगी। वह सोचने लगी कि कहीं ऐसा तो नहीं हुआ कि वे किसी और काम से अटक गये हों और देर हो जाने पर लौटते समय सोचा हो कि राधामोहन के घर होता चलूँ, जिसमें उनको शिकायत का मौका न मिले। आते ही होंगे, जायेंगे कहाँ?

इस तरह शरबती ने और समय व्यतीत कर दिया, फिर जब उसका मन नहीं माना तो उसने घर में ताला बन्द किया और राधामोहन के घर की ओर चल दी।

वहाँ उसको रेवा देखते ही चौंक उठी । वह कहने लगी—"अरे, तुम यहाँ कैसे ? सिनेमा नहीं गईं क्या ?"

शरबती अत्यधिक निकटता और आत्मीयता के वश रेवा को दीदी कह कर पुकारती थी। वह उसके निकट चारपाई पर जाकर बैठ गई और पूछने लगी—"वे यहाँ तो नहीं आये थे ?"

रेवा तब और चौंकी। वह व्यस्त होकर पूछने लगी—"क्या देव भइया भी नहीं गये ?"

शरबती ने अपनी बात खूब विस्तार के साथ रेवा को सुनाई। रेवा के मुँह से एक लम्बी साँस निकल पड़ी और वह थके हुए स्वर में कहने लगी—"अच्छा, तो तुम देव को यहाँ खोजने आई थीं ? कोई काम लग गया होगा, बर्ना भला यह कैसे हो सकता है कि देवकुमार अपने मित्र की बात न माने ?"

शरबती और रेवा में थोड़ी देर तक बातें हुईं। फिर शरबती उठकर अपने घर की ओर चल दी। इस समय उसका मन कह रहा था कि मैं इधर आई हूँ और कहीं वे घर न पहुंच गये हों ?

शरबती पथ पर बढ़ी चली जा रही थी। आकाश में तारे काँप रहे थे और हवा तेज होकर बह रही थी। काले मेघ दूर सुदूर देशों से आकर नभ पर एकत्रित हो रहे थे। उनके आतंक से काँपते हुए नक्षत्र लुक-छिप रहे थे और ऐसे में सुई की तरह महीन और नन्ही बूँदें जमीन पर धीरे-धीरे उतरने लगीं।

## दो

पँचकूँचे की संकरी, तङ्ग, अँधेरी गलियों को पार करता हुआ देवकुमार घुमनी मोहाल जा रहा था। उसकी गति में वेग था और मस्तिष्क में विचारों की उलझन, कि असमय की शहनाई मुझे तो बिल्कुल अच्छी नहीं लगती है। ऐसा भी शौक किस काम का, जिसके लिये व्यर्थ हैरान हुआ जाय। राधामोहन कल भी तो सिनेमा जा सकते हैं। आज मुझे काम था, मैंने उनसे कहा भी लेकिन वे उन आदमियों में से हैं, जो अगर कोई योजना बना लेंगे, तो फिर उसके पीछे ही पड़ जायेंगे। मैं कोरा जवाब भी दे सकता था, लेकिन अवस्था में बड़े होने के कारण मैं राधामोहन को मित्र बाद में मानता हूँ, बड़ा भाई पहले! इसीलिये उनका आदर करता हूं। चलूँ, जल्दी विद्याधर के घर पहुँच जाऊँ, क्योंकि काम सभी करने हैं और समय बहुत थोड़ा है।

साँझ का धुँधलका अपनी अवधि से पहले ही, धरती पर उतर आया था। देवकुमार घुमनी मोहाल की बदबूदार अँधेरी तङ्ग गलियों से होकर गुज़र रहा था। घरों से निकलता हुआ धुँआ ऊपर न उठकर

वातावरण में फैल रहा था। ऐसा लगता था कि ये गलियाँ काल-कोठरी हैं, इनमें इन्सान घुट-घुट कर रह जाता है। कैसे रहते हैं यहाँ पर विद्याधर जिनके घर में इतना अन्धेरा रहता है कि दिन में भी लालटेन जलाने की जरूरत पड़ती है। यह सोचता हुआ देवकुमार विद्यधार के दरवाजे पर पहुँच गया।

देवकुमार ने देखा कि हीरा कुण्डी में ताला बन्द कर रही है और रोहन रोनी-सी सूरत बनाये घबराया सा खड़ा है।

देवकुमार ने जाते ही रोहन से प्रश्न किया—"अभी विद्या, दादा नहीं आये क्या ? तुम और भाभी कहीं जा रहे हो ?"

अभी देवकुमार की बात पूरी ही हुई थी कि हीरा उसका स्वर पहचान घूमकर खड़ी होगई और तेजी से दोनों हाथ मत्थे पर पटक रोती हुई कहने लगी—"गजब होगया देवकुमार भइया, तुम्हारे दादा का तो दाहिना हाथ ही कट गया ! वे परेट के अस्पताल में हैं, हम लोग वहीं जा रहे हैं।"

"अँय, यह तुम क्या कह रही हो भाभी ! कैसे क्या हो गया ? चलो मैं भी चलता हूं।" कहकर चौंकता हुआ देवकुमार रोहन के साथ चल दिया।

घुमनी मोहाल की गलियों को तय करते हुये सब लोग मेस्टन रोड पर आगये थे। रोहन देवकुमार को बता रहा था – "आज पिताजी की गाँव जाने की तैयारी थी, कल रात को वे आपसे भी तो कह रहे थे कि अगर कुछ सामान गाँव भेजना हो तो कल शाम को दे जाना, मैं गाँव जाऊँगा। लेकिन होनहार को कौन जानता है चाचा ! मैं अभी थोड़ी देर हुई कालेज से आया हूँ, खाना खाने जा ही रहा था कि एकाएक एक आदमी मिल से आया, उसने बतलाया कि करघा चलाते समय पिताजी का दाहिना हाथ मशीन से कट गया है। वे उर्सला हास्पिटल पहुँचा दिये गये हैं।"

देवकुमार के मुँह से एक लम्बी साँस निकल गई। वह कहने लगा—"रोहन गरीब आदमी की जिन्दगी की कोई वकत नहीं है इस दुनियां में। एक साथ ही मिलों में एक कारीगर को दो दो मशीनों से लड़ना पड़ता है हाथ कटे, पैर कटे और चाहे सिर ही क्यों न कुचल जाय, लेकिन मिल मालिकों की बला से। उनके पास पैसा है इसीलिए वे गरीबों को भेड़ बकरी समझते हैं। अरे एक मजदूर मर जायेगा तो उनका क्या बिगड़ेगा ? एक हजार उनके दरवाजे पर बेकारी और भुखमरी का शिकार बने प्रार्थना पत्र लिये खड़े मिलेंगे। यह बहुत बुरा हुआ इस ढलती उम्र में विद्या दादा अपंग हो गये।"

हीरा देर से दोनों की बातें सुन रही थी। वह बोल उठी—"मैं तो पहले से ही जानती थी, कि कोई न कोई विपत्ति आने वाली है आये दिन असगुन होते थे। परसों मसाला पीसते समय पत्थर की सिल टूट गई बहुत पतली थी जो। मेरा मन छोटा हो गया और कल सबेरे छींके में फूल के कटोरे में खीर रखी थी बिल्ली उस पर चढी छींका गिरा दिया और तश्तरी फर्श पर गिरते ही दो टूक हो गँई। आज सबेरे जब वे ( विद्याधर ) घर से बाहर निकले तब मैं दरवाजे पर खडी थी। मैने देखा कि एक काली बिल्ली उनका रास्ता काट गई। मैने उन्हें बहुत बरजा कि लौट आओ दो मिनट रुक कर चले जाना इतने में देर नहीं हो जायेगी; लेकिन वे नही माने और यह कहते हुये चले गये, कि यह सब ढोंग है, मैं ऐसे पाखण्डों को नहीं मानता। देर हो जायेगी और टाइम पर पहुँचना जरूरी है।"

इसके बाद हीरा ने एक गरम उसाँस भरी और आँखों में आँसू ला, गीलाकर कहने लगी—"देवकुमार देखो, क्या से क्या हो गया ? उनकी बुढ़ौती खराब हो गई, न मील में नौकरी करते और न आज यह नौवत आती। गाँव में बपुआ ( विद्याधर के पिता गंगाधर ) और कला बिटिया कहा करती थी कि अपने गाँव में ही रहो, खेत के लिए जमीन

कम है तो लगान पर ले लो। देश छोड़ परदेश में न जाओ। मगर उनकी सनक थी कि शहर में जाकर कमाई करूँगा और मोहरो से कोट-ले भर लूँगा। मै चिल्ला-चिल्ला कर कहती हूँ कि मुझे परदेश नहीं फला। आज पन्द्रह वर्ष हो गये हैं, वे न पूरी नीद सो पाये और न कभी जी खोलकर हँस ही सके। मैं……।"

अभी हीरा की बात समाप्त नहीं हो पाई थी कि रोहन बीच में बाधा देकर बोल उठा—"किस गेट से चलियेगा चाचा ?"

हीरा की बात जहाँ की तहाँ पर ही रह गई और देवकुमार रोहन को जवाब देने लगा—"हास्पिटल रोड से चलकर कहाँ भटकोगे माल रोडवाला ही गेट ठीक रहेगा। चलो उधर ही चले।"

तीनों व्यक्ति अस्पताल के गेट पर आ पहुंचे। हीरा एक बेंच पर बैठ गई। रोहन और देवकुमार सर्जिकल वार्ड की ओर विद्याधर का पता करने चले गये कि वह नीचे के वार्ड में है या ऊपर।

पता जल्दी ही चल गया। विद्याधर अभी-अभी नीचे के वार्ड में लाकर लिटाये गयेथे। देवकुमार ने संकेत से ही हीराको अपने पास बुलाया। सब लोग वार्ड में प्रविष्ट होने लगे तो स्टाफ नर्स ने रोका कि यह समय मिलने का नही है। लेकिन रोहत और देवकुमार के अनुनय और हीरा की मिन्नतों से प्रभावित होकर उसने स्वीकृति दे दी।

सबने जाकर देखा कि विद्याधर श्वेत चादर ओढ़े सो रहे हैं उनका दाहिना हाथ कुहनी के पास से कट गया है। बांह स्प्रिगदार मशीन पर टँगी है, उस पर पचरें चढ़ी हैं और पट्टियाँ लिपटी हैं। मक्खन जैसी श्वेत पट्टियाँ लाल लोहू से नीचे के हिस्से में तर हो रही हैं।

यह देखते ही हीरा के मुख से एक चीख निकल गई। तब नर्स ने पास आकर उसके मुँह पर हाथ रख दिया और धीरे से डाँटती हुई बोली—"चुप रहो। अभी इसको होश नही आया है। बस देख चुकी, अब आप लोग जाइये।"

हीरा की बोलती बन्द हो गई। वह आँखें फाड़-फाड़ कर नर्स की ओर देखने लगी। देवकुमार और रोहन के पूछने पर नर्स ने बताया कि मशीन में हाथ जाते ही विद्याधर बेहोश हो गये थे। यहाँ तक बेहोश ही आये, लेकिन जब इधर उधर लटक रहा फालतू मांस काटा जाने लगा तब वे पहले कराहे और फिर चिल्लाये थे। उस समय क्लोरोफार्म सुँघा कर वे बेहोश किये गये होश आते आते अभी करीब दो घण्टे लग जायेंगे।

उस दिन विद्याधर से किसी की बातें नहीं हो पाई। सब लोग लौट आये। देवकुमार अस्पताल से सीधा अपने घर नहीं गया, क्योंकि एक तो सिनेमा जाने का समय पता नही कब का निकल गया था और दूसरे ऐसी मारुण परिस्थिति में विद्याधर के परिवार के साथ सहानुभूति बरतना अत्यावश्यक था। वह दोनों माँ- बेटे के साथ उनके घर गया और थोड़ी देर तक बैठ दुनियादारी की बातें कर चला आया।

इस समय पौने नौ बज रहे थे, आकाश मेघाछन्न था। नन्हीं-नन्हीं बूँदों की बौछार हो रही थी। देवकुमार के मन में यह बात बार-बार खटक जाती कि राधामोहन अपने मन में क्या सोचते होंगे? वे जरूर मेरे घर गये होंगे, देर तक राह देखी होगी और यह भी सम्भव हो सकता है कि उनको खेल देखने को न मिला हो और शरबती बेचारी भी हैरान हो रही होगी कि आखिर मैं कहां चला गया। बड़ा विचित्र है यह संसार। एक क्षण में सागर गागर में समा जाता है और पलक मारते ही, उसमें ज्वार भाटे की सृष्टि हो जाती है। होनहार के पन्ने आज तक किसी ने भी नहीं पढ़ पाये। ज्योतिषाचार्य और प्रकाण्ड वैज्ञानिक भी इस भेद से अनभिज्ञ ही रहते हैं कि किस समय भूचाल आयेगा और कब नदियों की बाढ़ का पानी सैकड़ों बस्तियाँ डुबा देगा।

यही सब सोचता-विचारता देवकुमार घर की ओर जा रहा था। हवा के बँधे पंख अब खुल गये थे वह छोटे मोटे झखोरों में बह रही थी।

बूदें नन्हीं से बड़ी हो रही थी और देवकुमार तेजी से कदम बढ़ाता हुआ अपने घर के दरवाजे पर आ गया था।

वहाँ दरवाजे की कुण्डी में ताला लटक रहा था। देवकुमार को आश्चर्य हुआ कि आखिर इस समय शरबती कहां गई होगी ? वह मन ही मन उस पर खीझ उठा और सोचने लगा कि मैं कोई दूध पीता बच्चा तो हूँ नहीं, जो वह इतनी घबड़ा गई कि घर से बाहर निकल पड़ी। अवश्य ही वह विद्याधर के घर गई होगी आखिर और कहाँ जायेगी ?

देवकुमार की विचार धारा बल खाती उफनाती हुई बह रही थी और बूँदों की पड़पड़ाहट जोर से होने लगी थी, पानी से बचने के लिए वह छज्जे के नीचे किवाड़ों से सटकर खड़ा हो गया और शरबती के आने की प्रतीक्षा करने लगा।

मन में अकुलाहट और चिन्ता का समावेश लिये शरबती दरवाजे पर पहुँची। देवकुमार को देखकर वह प्रसन्न हो उठी और निकट जाते ही पूछने लगी—"अरे कहां चले गये थे तुम बहुत देर लगा दी ? मैं तो हैरान हो गई थी।"

शरबती ताला खोलती जा रही थी और बारबार उस अन्धकार में भी पति के मुँह की ओर देख रही थी। वह हैरत में थी कि देवकुमार उसे जवाब क्यों नहीं दे रहा है।

किवाड़ें खुले, दम्पति घर के अन्दर प्रविष्ट हुये और शरबती ने फिर अपना प्रश्न दुहरा दिया। वह पूछने लगी—'बताया नहीं तुमने कि इतनी देर कहां लगा दी ?"

देवकुमार चिढ़ा हुआ था। उसे इस बात पर क्रोध आ रहा था कि शरबती पढ़ी लिखी नहीं है। उसमें गाँव का गँवारपन कूट-कूट कर भरा है, तभी तो तनिक भी समाई नही कर सकी और मेरी तलाश में घर से निकल पड़ी। वह जले-कटे शब्दों में बोला—"ठीक है उल्टा चोर कोतवाल को डाँटे, तुम मुझसे कुछ पूछो इसके पहले इस बात का जवाब

दो कि तुमने इतनी रात को घर से निकलने की हिम्मत कैसे की ? क्या मैं कोई नन्हा मुन्ना बच्चा था, जो कहीं खो जाता, लौट कर घर न आता ? क्या विद्याधर के घर गई थी।"

शरबती के पैरों के नीचे से जमीन निकल गई। वह हक्का बक्का हो पति का मुँह निहारने लगी। उसे आश्चर्य हो रहा था कि आखिर आज इन्हें हो क्या गया है, जो अपनी बात न बता कर उल्टा मुझे डाँट रहे हैं ? वह पति के सवाल का कुछ भी उत्तर नही दे पाई यह देख देवकुमार का क्रोध और उबला, वह खीझ कर कहते लगा—"बोलती क्यों नही शरबती ! मैं पागल हूँ क्या, जो बक रहा हूँ ? बोलो कहाँ गई थीं ?"

शरबती कुछ कहने जा ही रही थी कि इतने में राधामोहन वहां आ पहुँचा। उसके हाथ में बरसात से भीगा हुआ काला छाता था, जिससे टप-टप पानी की बूँदें चू रहीं थीं। कमरे में बिजली का प्रकाश फैल रहा था शरबती हाथ में ताला और चाभी लिये खड़ी थी और उससे कुछ दूरी पर खड़ा था देवकुमार। राधामोहन उभय-पक्षों के मध्य जाकर खड़ा हो गया और आश्चर्यचकित मुद्रा बनाये व्यस्त स्वर में देव-कुमार से पूछने लगा—"अरे कहाँ चले गये थे देवकुमार ? उस समय हम लोग आये और वापस लौट गये इसके बाद जब अभी पिक्चर देखकर लौटा तो घर में चारु की भाभी ने बतलाया कि अभी-अभी बहू (शरबती) वहाँ गई थी कि तुम कहीं मेरे घर तो नहीं चले गये हो क्या बात हुई थी। शायद अभी-अभी आ रहे हो ?"

"हाँ अभी आ रहा हूँ।" कह कर देवकुमार अपने मित्र के निकट कुर्सी पर जाकर बैठ गया और विद्याधर के हाथ कट जाने वाली घटना का वर्णन करने लगा।

अब शरबती भी तथ्य को समझ गई थी और राधामोहन वहाँ अधिक देर न रुक कर, अपने घर चला गया।

उस रात देवकुमार ने भोजन नहीं किया। शरबती ने सब्जी और ताजे पराठे बनाकर, उसके सामने थाली संजोकर रखी; लेकिन उसने कौर भी नहीं तोड़ा।

इस पर शरबती ने पति से अपने कसूर की माफी माँगी। उसकी बहुत चिरौरी की, मगर देवकुमार का होंठ पर से होंठ नहीं उठा।

हार मानकर शरबती बिस्तर पर पड़ रही। बाहर पानी अब खूब जोर बाँधे बरस रहा था। वह सोच रही थी कि स्त्री की छोटी-सी भी गलती को आदमी माफ नहीं करना चाहता, जब कि उसकी बड़ी-बड़ी भूलों को औरत कलेजा थाम कर भुला देती है। फिर मैंने कोई गलती तो की नहीं, हर स्त्री यही करती, जो मैंने किया। लेकिन अगर वे उसको मेरी आजादी समझते हैं और खुल्लम-खुल्ला भूल कह सकते हैं, तो उसके लिये मैंने माफी माँगी, फिर भी उनका गुस्सा नहीं उतरा। मै अपढ़ हूँ, शायद इसीलिये वे मुझे अच्छी निगाह से नहीं देखते! मैं एक रात नहीं—दस दिनों तक भूखी पड़ी रहूँ, इसकी मुझे पाई भर भी चिन्ता नहीं; लेकिन स्त्री के आगे, जब उसका पति भूखा सो जाये, तो उसका कलेजा मुँह को आने लगता है। आज बड़ा गजब हो गया, जो कभी नही हुआ था उसकी भी आज बुनियाद पड़ गई। मैं नही जानती थी कि वे ( देवकुमार ) इतने कठोर हो सकते हैं। ऐसा लगता है कि भगवान् ने स्त्री जाति को हमेशा पुरुष के आधीन बनकर रहने के लिये जन्म दिया है और पुरुष को यह हक दे दिया है कि वह उसको रोंद कर चले, कुचल कर चले। आज वे गुस्से में थे; इसलिये मैं चुप रही; कल सबेरे उनको हँसते-बोलते देखकर ही चैन लूँगी। वे मानेंगे क्यों नहीं? मनाने वाला भी तो चाहिये? दया की भीख माँगने वाले पर एक बार जल्लाद को भी रहम आ जाता है।

रात का आञ्चल असिततम हो गया था। धरती पर पड़ती हुई

बड़ी-बड़ी बूँदें इस बात की प्रतीक थीं कि रजनी रो रही है, वह मातम मना रही है। इसलिये आज काली चादर ओढ़ रखी है। उसकी आँखों से काले-काले आँसू टपक रहे है, जो विषैले हैं और ज़हरीले हैं। हवा साँय-साँय करती हुई चल रही थी। कमरे में बत्ती जल रही थी। पानी की बौछार की रोकथाम के लिये उसके दरवाजे और खिड़कियाँ बन्द थीं। टेबिल-फैन अपनी पूरी रफ्तार में नाच रहा था और देवकुमार चारपाई पर बैठा, अब तक अङ्गरेजी के साप्ताहिक पत्र एलेस्ट्रेटेड वीकली में उलझा था और उलझा क्या था बात दर-असल में ऐसी थी कि वह अपने अशांत मन को शांत करने का उपक्रम कर रहा था। उसके मानस जगत में विचार आँधी और तूफान बनकर मचल रहे थे। वह हैरान था कि शरबती समाजिक ढाचे के लिये एक सुसंस्कृत भारतीय नारी है, लेकिन जहाँ पर समाज के उच्च स्तरीय व्यावहारिक ज्ञान का प्रश्न है, वहाँ पर वह सर्वथा शून्य है। यदि आज को वह शिक्षित होती, उसका कुछ अध्ययन होता तो वह संतोष करके घर में बठी रहती, नाहक ही में उन्हें खोजने घर से न निकल पड़ती। रूप ही सब कुछ नहीं होता है, गुण प्रधान होते हैं। शरबती जितनी खूबसूरत है, जितनी सभ्य और शिष्ट है, उतनी ही अनुभव हीन। अज्ञानता उसकी अशिक्षिता का प्रत्यक्ष प्रमाण है। काश ! आज को मुझे ऐसी गृहणी मिली होती, जो चाहे बदसूरत ही होती; लेकिन होती शिक्षित। गाँवों के समाज की परम्परा ने मुझे पिताजी के सम्मुख एक भी शब्द नहीं बोलने दिया और कुपढ़ शरबती मेरी पत्नी बन गई। राधामोहन भी हँसते होगे, अपने घर में जाकर पत्नी और बहन से कहेगे कि देवकुमार की बहू इतनी बुद्धू और डरपोक है कि उसे घर आने में तनिक देर हो गई तो वह उसे खोजने निकल पड़ी। ऐसे ही पिछली बार राधामोहन के यहाँ दावत में, जब शरबती आलू के चाप छुरी काँटे से न खाकर हाथ में उठाकर खाने लगी थी, तो सब लोग हँस पड़े थे और मेरी गरदन झुक

गई थी। मूर्ख को ज्ञान कौन सिखलाये ? बड़ा अच्छा होता अगर यह शहर में मेरे साथ न रहकर गाँव में माँ के पास रहे।

देवकुमार के विचारों का तारतम्य टूटने को ही नहीं आ रहा था। शरबती भी जाग रही थी, जब पड़ोस के मकान से घड़ी ने दो बजने की सूचना दी, तो वह उठकर अपनी चारपाई पर बैठ गई। फिर जल्दी से नीचे उतर, धोती का पल्ला सिर पर सँवार कर ओढ़ती हुई पति के पास जा खड़ी हुई। उसने देवकुमार के हाथों से पत्रिका छीनकर एक ओर रख दी और धीरे से मुस्कराकर बोली—"चलो, सो जाओ, खाना नहीं खाया, अपनी जिद्द रखी, अब क्या रात भर जागरण करोगे ? बहुत देर से पढ़ रहे हो, कहीं सिर में दर्द हो गया तो सारी रात नींद नहीं आयेगी।"

देवकुमार ने पुनः वह पत्रिका उठा ली और डाँटकर कहने लगा।—"यह क्या बदतमीजी है, पहले बात करना सीखो; बन्दर क्या जाने अदरक का स्वाद ! तुम्हारे लिये काला अक्षर तो भैंस बराबर है, तुम क्या समझो किताबों को !"

शरबती के कलेजे में जैसे किसी ने छुरा भोंक दिया हो। वह तिलमिलाकर रह गई। एक क्षण तक कर्त्तव्य विमूढ़ सी वहाँ खड़ी रही, फिर धीरे-धीरे अपनी चारपाई पर आकर धम्म से गिर पड़ी। इस समय उसकी आँखों से आँसुओं की बरसात हो रही थी। बाहर मेघ गरज रहे थे, बिजली कड़क रही थी, और साँप की तरह सन-सन करती हुई वायु सनसना रही थी। शरबती रो रही थी, उसकी सिसकियाँ देवकुमार के कर्ण रन्ध्रों में प्रवेश कर, उसे गुस्सा दिला रही थी।

## तीन

सबेरा होते ही देवकुमार ने गाँव जाने की योजना बना ली। इसके दो कारण थे। एक बात यह थी कि विद्याधर से शाम को चार बजे से पहले नहीं वह मिल नहीं सकता था और आज बैंक की छुट्टी थी। अतः वह अगामी इतवार से पहले गाँव जा सकता था। माँ को दवाइयाँ पहुँचना आवश्यक था, भेजने का इतनी जल्दी कोई साधन नहीं मिल सकता था और सबसे बड़ी बात तो यह थी कि उसकी मनः स्थिति ठीक नहीं थी। गाँव मोतीपुर पहुंच माँ-बाप से मिलकर, वह चित्त में शान्ति भर लेना चाहता था।

अपने निश्चयानुसार देवकुमार दोपहर होते-होते मोतीपुर अपने घर पहुंच गया। बाहर चौपार में एक मोढ़े पर बैठे वृद्ध रामकुमार चूने की तम्बाकू मल रहे थे। उन्होंने फटकार लगाई, तम्माकू की गर्द उड़ी, ठीक उसी समय नीचे झुककर देवकुमार ने उनके पैर छुये। उसे सुँघनी की भस लगी और फटाक से एक छींक आगई। रामकुमार पुत्र के सिर पर स्नेह भरा हाथ फेरते हुये आशीष भरे शब्दों में बोल उठे—"चिरंजीव रहो, तुम्हें आना पड़ा? कल रात को बड़ी देर तक

मैं विद्याधर के आने की राह देखता रहा। बहू तो अच्छी तरह हैं न ?" यह कह कर वे उठ खड़े हुये और पुत्र का हाथ पकड़ कर बोले—"चलो, भीतर चलें, तुम्हारी माँ की तबियत पिछले पखवारे से कुछ ज्यादा खराब हो गई है। खाँसी तो एक मिनट के लिये भी दम नहीं भरती।

दोनों बाप बेटे जब आँगन में पहुंचे तो बूढ़ी सुखरानी जो उस समय तोरई छील रही थी, जल्दी से उठकर बेटे की बलाँए लेने के लिये आगे बढ़ी।

पुत्र ने माँ की चरणरज माथे से छुआ ली और माँ अपने लाल को कलेजे से लगाकर निहाल हो गई।

दोपहर से तीसरा पहर आगया। देवकुमार आज रात को नगर वापस न जाकर, प्रातः जाना चाहता था, जिससे बैंक के समय से पहले पहुँच जाय। बरसात का मौसम था। गांव से स्टेशन पूरे दो रप मील था। कच्चा पगडंडी का रास्ता था। इस साल पानी खूब बरसा था। तालाब, पोखर और छोटे मोटे गढ्ढे सभी पानी से लबालब थे। चौदस की रात थी, वह छोटी अमावस होती है, चाँद उससे डरता है इसीलिये यह रात भी अंधेरी रहती है। इन सब कारणों को लेकर सुखरानी और रामकुमार ने देवकुमार के कुछ कहने के पूर्व ही उसको रात को जाने के लिये मना कर दिया। किन्तु देवकुमार की यह योजना पहले ही से थी। दोपहर भर उसकी माँ-बाप से बातें हुईं जिसमें सुखरानी ने अपनी खाँसी बढ़ जाने साँस फूलने और दम घुटने का विस्तारपूर्वक वर्णन किया और रामकुमार ने कहा—"भइया ! जैसे भी बने, कुछ पूंजी बचाकर गांव में थोड़ी-सी जमीन खरीद लो। छोटा-सा भी खेत होगा तो कुछ आमदनी होने लगेगी यहां से।" फिर देवकुमार ने दम्पति को चौंका देने वाली बात कही—"कल मिल में बिनता चलाते समय कुहनी के पास से

विद्याधर का दाहिना हाथ कट गया। वे अस्पताल में पड़े हैं। बेचारे अपाहिज होगये हैं। उनकी जिन्दगी ही एक तरह से बरबाद होगई है।"

इस पर सुखरानी और रामकुमार बहुत दुखी हुये। वे परस्पर वार्ता प्रसङ्ग में विद्याधर के प्रति सहानुभूति प्रगट करने लगे और तीसरे पहर देवकुमार पहुँच गया, विद्याधर के बूढ़े बाप गँगाधर के पास।

रामकुमार के कच्चे, पिंडोर से पुते छोटे से मकान की तरह, गंगाधर का भी घर था। बरोठे में मुण्डी भैंस बंधी थी जिसके लिये देवकुमार वहुत दिन से जानता था, कि यह भैंस दूध कम देती है लेकिन उसमें मक्खन बहुत निकलता है। बरोठे के बाद गोबर से लिपा हुआ कच्चा आंगन था, उसके सामने ३ दर की खमसार व एक लम्बी तिद्वारी थी। वहीं गंगाधर बैठे सुमिरनी पर उगलियां दौड़ा रहे थे। अधिक बुढ़ापे के कारण, उनका सिर डगडग करता हुआ हिल रहा था। दोनों हाथ कांप रहे थे उन्हीं के पास अधेड़ कला बैठी कथरी सी रही थी। आंगन में गोरैय्यां फुदक रही थीं और कुछ थोड़ी सी धूप छज्जे के एक कोने से मुँडेर पर चढ़ रही थी। देवकुमार को देखते ही कला ने बाप से तनिक जोर से कहा—"बपुआ, देव आया है।"

गंगाधर इधर कुछ दिनों से ऊँचा सुनने लगे थे। इस समय उनका ध्यान सुमिरनी पर था। वे कला की बात ठीक तरह सुन नहीं पाये। इतने में देवकुमार निकट आगया, उसने पहले कला के चरण-स्पर्श किये फिर गंगाधर के। दोनों बाप-बेटी उसको आर्शीवाद देने लगे।

देवकुमार गंगाधर के निकट बैठ गया और वे उससे कुशल क्षेम के प्रश्न करने लगे।

कला ने पूछा—"कल विद्या भइया क्यों नही आये ? तुमसे भेंट हुई या नहीं ?"

देवकुमार ने उदासी की मुद्रा बना, विद्याधर का हाथ कट

जाने वाली दुर्घटना की कहानी सुना दी। गंगाधर माथा पकड़कर रह गये और कला, वह दुःखद समाचार सुनते ही रोने लगी।

देवकुमार ने दोनों को सान्त्वना दी और बहुत समझाया, लेकिन कला के आंसू नहीं रुके, वे बहते ही गये।

× × ×

जब देवकुमार घर आया तो वहाँ सुखरानी खों-खों करके खाँसती जाती थी और सिर गड़ाये चूल्हे के पास बैठी, कढ़ाई में पूड़ियाँ तल रही थी। तोरई का साग उसने कटा-कटाया ही छोड़ दिया था, क्योंकि जानती थी कि देवकुमार को तोरई अच्छी नहीं लगतीं। जब वह कला के घर गया था, तभी उसने पति को काछी की बाड़ी में भेज कर ताजी भिण्डी मँगाई और ताजी ही गुइयाँ भी खुदवा मँगाई थीं, जिनमें कछ बनारसी बण्डे भी आ गये थे। गुइयाँ और बण्डे का रसेदार साग और भरौआ भिण्डी, पुत्र को अधिक रुचिकर थीं। इसीलिये माँ ने यह सब सरंजाम इकट्ठा किया था।

देवकुमार माँ के निकट पहुंच गया और जल्दी से पैर धो, रसोई मे जा, उससे अनुरोध करता हुआ बोला—"हटो माँ, बाकी पूड़ियाँ मैं तल लूँगा। राम-राम कितनी जोर की खाँसी आती है तुम्हें? चलो, उठो, मै अभी········।"

इस पर सुखरानी खांसी दबते ही हँस पड़ी और गद्‌गद् होकर कहने लगी—"एक बात पूछूँ बेटा! तुम बताओगे?"

देवकुमार कुछ चौंक गया। वह जानता था कि माँ मुझे पूड़ियां कभी नहीं तलने देंगी। अतः वहाँ आसीन हो, चौंककर पूछने लगा—"कोई भेद की बात है क्या माँ, जो इतने गोसे से पूँछ रही हो?"

सुखरानी अपने पोपले मुख पर हँसी लाकर बोल उठी—"भेद की बात नहीं पगले। मैं यह—जानना चाहती हूँ कि जिस कदर तुम मुझे चाहते हो क्या और भी लड़के माँ-बाप को ऐसे ही मानते है? मैंने बड़े पुण्य किये थे उस जन्म में जो तुम जैसा लड़का मिला। बलिहारी

जाऊँ, मैं अपने लाल पर, तुम कैसी बातें करते हो ? मेरे रहते तुम पूड़ियाँ तलो। चलो बैठो, अपने पिताजी को भी बुला लाओ, फिर जब पूड़ियाँ ठण्डी हो जायेंगी, तब खाओगे क्या ?"

देवकुमार हँस पड़ा। वह जाकर बाप को बुला लाया। दोनों भोजन करने बैठ गये। सुखरानी उन्हें हँस-हँस कर परोसने लगी।

बाहर आँगन में खूँटी पर देवकुमार की लाई हुई बहुत पुरानी लालटेन जल रही थी। अन्दर चौके में लकड़ी की दीवट पर अण्डी के तेल का दिया रखा था। रात काली होकर घर में उतर आयी थी, आसमान रुपहले सितारों से द्युतिमान होरहा था। बाहर सन्नाटे को पोखरियों के किनारे बैठे हुये मेढ़क टर्र टें-टर्र टें करके भङ्ग कर रहे थे। देवकुमार बाप से कह रहा था—"पिताजी ! आपसे और माँ से कितनी बार कहा, कि मेरे साथ चलकर शहर में रहो; लेकिन पता नहीं आप लोग इस गाँव और घर का मोह क्यों नहीं छोड़ते हैं ? उल्टा मुझसे कहते हो कि गाँव में जमीन ले लो। आप बुढ़ापे में खेती करेंगे ? मैं कहता हूँ, जब माँ को इतनी तकलीफ है और वे शहर में रहना भी पसन्द नहीं करतीं, तो फिर सहारे के लिये बहू को ही, अपने पास रखें। यह भी उनसे नहीं होता है। अबकी बार मैं आपकी बहू को यहाँ छोड़ जाऊँगा और फिर तब तक उसको शहर नहीं बुलाउँगा जब तक माँ इस बात के लिए राजी नहीं हो जायगी कि वे शहर में चल कर रहेंगी।"

इस पर रामकुमार कुछ जबाब दें, इसके पूर्व ही सुखरानी बोल उठी—"सुनो देव ! तुम्हारी शहर की दवा और गाँव का पानी दोनों बिल्कुल बराबर हैं। शहर जाकर तो मैं घुट-घुट कर मर जाऊँगी मुझे यहीं रहने दो। गाँव की खुली आब हवा हैं शहर में तुतलीघरों का राज है, अच्छा भला आदमी देखने में बीमार सा लगता है। वहाँ मिट्टी तक मोल लेनी पड़ती है बाज आई तुम्हारे शहर से, जो सुख गाँव में है, वह शहर में कभी नहीं मिल सकता। रह गई दवाई की बात, वह मैं खाती

ही हूँ। अब तुम ही मुझे बताओ कि शहर में जाकर तुम्हारी तन्दरुस्ती आधी नहीं रह गई है क्या ?"

देवकुमार निरुत्तर हो गया। माँ के जबाब के सम्मुख उसके सारे तर्क झूठे पड़ गये। रामकुमार इस बहस-मुहाविशे में न पड़कर छूटते ही बोल उठे—"तुम्हारा माँ-बेटे का झगड़ा है, मैं बीच में नहीं बोलूंगा। तुम्ही लोग निपट-सुलझ लो।"

सुखरानी अपनी पुरानी आदत के अनुसार कुछ बिचक गई और पति पर मीठा व्यंग्य कसती हुई बोली—"यह कोई नई बात है, जो तुम कह रहे हो ? जब भी ऐसी बातें चलतीं है, तब तुम गोल हो जाते हो लड़के का पक्ष बाप नहीं लेगा तो क्या मैं लूंगी ?"

रामकुमार को हँसी आ गई। वे उसी हँसोड़ मुद्रा में बोल उठे—"अरे तुम तो नाराज होने लगीं। मैंने······।"

"अच्छा अब तुम चुप भी रहो। काम की बात नहीं करेंगे और ऐसी बाते बहुत अच्छी लगती हैं।"

सुखरानी के मुँह से यह बात सुनते ही बाप-बेटे दोनों हँस पड़े और वह भी उनकी हँसी में योग दिये बिना नहीं रह सकी।

## चार

रात भीग रही थी उसका सन्नाटा सम्पूर्ण गाँव पर साँय-साँय कर रहा था। पता नहीं आज रामकुमार और सुखरानी को कितनी प्रसन्नता थी। वे खुशी से फूले नहीं समाते। दम्पति अपने एकलौते के साथ बातें करने में ऐसे लीन थे, लगता था कि रात बीत जायेगी और उनकी बातें समाप्त नहीं होंगी।

सहसा घर के दरवाजे बाहर बैठा हुआ झब्बू भौंक उठा फिर तत्क्षरण ही वह कूं-कूं करने लगा और तभी किवाड़ों पर एक थाप पड़ी।

भीतर से देवकुमार ने पूछा—"कौन है!"

उत्तर मिला—"मैं हूँ, कला! किवाड़े खोलो देव!"

देवकुमार ने जंजीर खोल दी। कला अन्दर आ गई और उसके पीछे रामकुमार का प्यारा कुत्ता झब्बू दुम हिलाता और कूं-कूं करता हुआ अपने मालिक के पास आकर खड़ा होगया।

कोई कला से कुछ पूछे इसके पूर्व ही वह आने के साथ ही बोल उठी—'देव भइया! कल मैं और बपुआ भी तुम्हारे साथ कानपुर चलेंगे।"

इसके बाद कला रोने लगी और सुखरानी के सम्मुख अपना माथा ठोंक कहने लगी—"मेरा नसीब ही खोटा है, चाची ! ले देकर एक भाई था, वह भी लुन्जा हो गया। तुमने सुना नहीं, हमारे विद्या दद्दा का दाहिना हाथ कट गया है।"

सुखरानी यह सुनकर अफसोस जाहिर करती हुई समवेदना-भरी वाणी मे बोली—"कला, संतोष करो बिटिया ! खड़ी क्यों हो, बैठ जाओ। बुरे-भले दिन सभी को देखने पड़ते हैं। मैने भी जब सुना, तो धक् से रह गई। नौकरी उसकी जान लेवा बन गई।"

कला जाने का आयोजन कर व्यस्त स्वर में बोली—"बैठूँगी नहीं चाची, अब चलूँगी। आज रात को बपुआ ने मारे दुःख के कौर नहीं तोड़ा। रसोई ज्यों की त्यों रखी है। पता नहीं कहाँ से यह गाज आकर फट पड़ी।" फिर वह देवकुमार की ओर उन्मुख हुई और कहने लगी—"ध्यान रखना भइया, सबेरे हम दोनों भी चलेगे।" यह कह कर कला चली गई और जब वह अपने दरवाजे पर पहुंची तो देखा, उसका बूढ़ा बाप चौखट पर खड़ा काँप रहा है। वह पास पहुँचते ही श्रद्धा भरे स्वर में बोल उठी—"अरे, बपुआ ! तुम यहाँ क्यों खड़े हो ? चलो, अन्दर चलो; मुझे जाने-आने में तनिक भी देर नहीं लगती। इसीलिये तुम्हें रात में अकेले नहीं जाने दिया। लेकिन तुम बड़े ममतीले हो। पता नहीं तुम्हें कितना मोह है मुझसे ! जब कभी सोचने लगती हूँ, मन यही कहता है कि मुझ जैसा बाप हर एक लड़की को मिले।"

अब दोनों खमसार में आ गये थे। गंगाधर चारपाई पर बैठ गये और कला नीचे बिछी चटाई पर बैठकर कहने लगी—"देवकुमार से कह आई हूँ, वह सबेरे हम लोगों को लेने घर आ जायेगा। आज तुमने रोटी नहीं खाई है बपुआ, दुँधाड़ी का दूध अब तक वैसे ही रखा है जमाया नहीं थोड़ा सा ले आऊँ, पीलो।" यह कहने के साथ वह दूध लेने चली गई और गंगाधर उसको मना करते ही रह गये।

× × ×

रायबरेली से कानपुर जाने वाली पैसेन्जर रेल गाड़ी अपनी नियन्त्रित रफ्तार में भाग रही थी। देवकुमार खिड़की पर दोनों कुहनियाँ टेके ठुड्डी पर हाथ रखकर बैठा हुआ बाहर के दृश्य देखने में लीन था। पानी खूब पड़ा था। रेल की पटरी के किनारे-किनारे सागर सा लहरा रहा था। बबूल झाड़-झंखाड़ आधे-आधे जलमग्न थे और कटैया तथा झरबेरी आदि की छितरी हुई झाड़ियाँ उस पानी में से थोड़ा-थोड़ा झांक रही थीं। इसके विपरीत जहाँ तनिक ऊँचाई थी, धरातल समतल था, वहाँ मिट्टी रोप-रोपकर पानी रोका गया था और पूरा कृषक परिवार यत्र-तत्र धान रोप रहा था। कहीं और आगे चलकर बाग ही बाग दिखाई देते जिनका सिलसिला बहुत देर में खत्म होता। ऐसा ही कहीं धानों की बेढ़ि लग रही थी और कहीं पानों की भीठियाँ पाँति की पाँति दृष्टिगोचर हो रही थीं।

सूरज निकल रहा था। वह लाल आग का गोला सा लगता था बहुत ही निकट है। आकाश एकदम साफ था उजला-उजला, नीला-नीला। सावन की बरसाती हवा शनैः शनैः बह रही थी। ऐसे में जब कहीं जङ्गली लाल, पीले फूलों के समूह उसकी निगाह में आ जाते तो वह एक क्षण के लिये बहुत ही मगन हो जाता।

पैसेंजर ट्रेन थी, बीच में दो तीन जगह रुकी। इस बीच देवकुमार की गंगाधर और कला से थोड़ी बातचीत भी हो जाती थी। फिर जब ट्रेन चलने लगती तो वे चुप हो जाते थे।

ट्रेन कानपुर पहुँची। देवकुमार को बैंक जाने की जल्दी थी; क्योंकि साढ़े नौ बज गये थे। अतः उसने गंगाधर और कला को एक रिक्शे पर बैठा दिया और स्वयं दूसरा रिक्शा कर कर जल्दी-जल्दी अपने घर आया।

वहाँ रसोई तैयार थी। शरबती पति को देखते ही प्रसन्न हो उठी। वह मधुर स्वर में पूछने लगी—"कल रात को क्यों नहीं आये ?

मैं बड़ी देर तक राह देखती रही। जल्दी कपड़े उतारो, खाना तैयार है, देर न करो।"

देवकुमार ने शरबती को कुछ भी जवाब नहीं दिया। वह कपड़े उतार जल्दी से स्नान कर रसोई घर में पहुँच गया। थाली सामने थी और वह खाने में इतनी जल्दी कर रहा था कि आखिर शरबती ने टोक ही दिया। वह बोली—"ऐसी भी क्या जल्दी है? खाना तो अच्छी तरह खालो! जब रात को नहीं आये, तो मैंने सोचा कि सबेरे अब रेल से ही आओगे! सब काम वक्त से पहले ही निपटा लिया।" यह कहने के साथ शरबती की दृष्टि थाली की ओर गई। वह बोली—'दही बड़े और ले लो, तुम्हें तो बहुत अच्छे लगते हैं।"

देवकुमार खीझ उठा। वह कहने लगा—"मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लगता।"

शरबती अवाक् हो, पति की ओर देखने लगी। वह मन ही मन भय से काँप गई कि देवकुमार का गुस्सा अब तक ताजा बना हुआ है।

जल्दी से भोजन समाप्त कर देवकुमार उठ खड़ा हुआ और फिर मुँह हाथ धोने तथा कपड़े बदलने में उसे दो मिनट की भी देर नहीं लगी।

देवकुमार चला गया और शरबती चित्र लिखी-सी उसकी ओर देखती ही रह गई। वह पानदान खोलकर अभी पान पर चूना ही लगा रही थी कि वह चला गया। वह हैरान हो उठी और सोचने लगी, न जाने वे इतना नाराज क्यों हैं? मैंने कोई ऐसी बड़ी गलती नहीं कर दी, जिस पर वे मुझसे बोलना ही बन्द कर दें। मन की गति आदमी के वश की नहीं होती है। जिस काम के लिये वह कभी सपने में भी नहीं सोचता, सो ऐसे ही, अचानक उसे नये-नये काम करने पड़ जाते हैं। मेरा तो मन उछल-डूब रहा था, इसीलिये पता करने रात को राधा-मोहन के घर गई थी लेकिन वे इसमें अपनी नामोशी समझते हैं।

समझ में नहीं आता कि क्या करूँ ? यह तो करने लिये मैं तैयार हूं कि जो गलती एक बार हो गई है, उसे दुबारा नही होने दूँगी। मगर उनको खुश करने की कोई तरकीब नज़र नहीं आती।

इसी तरह अपने में हैरान शरबती मन ही मन निश्चय करने लगी कि आज शाम को वह पति से बात करेगी और अगर वह कसूर-बार साबित हुई तो उसके लिये हर तरह की सजा भोगने को तैयार रहेगी; लेकिन अब घर में यह नहीं चलने देगी कि दोनों प्राणियों के बीच तनिक भी तनाव रहे।

गौरैयाँ रसोई में फुदक रही थीं।शरबती विचारों में डूब रही थी, सहसा चिड़ियाँ जोर-जोर से चीं-ची करने लगी और फरफराती हुई छज्जे पर जा बैठीं। अब शरबती का ध्यान उस ओर गया। उसने देखा कि चूहे की घात में बिल्ली रसोई वाले बिल के पास बैठी है और उसको ही देखकर चिड़ियां उड़ गयी। वह उठी, रसोई में आई। खाना उठाकर रख दिया, स्वय भूखी रह गई और फिर घर के कार्य में व्यस्त हो गई।

## पांच

विद्याधर अपने गाँव की पाठशाला में ही कक्षा चार तक पढ़े थे। उसके बाद खेती-बाड़ी में बाप का हाथ बँटाने लगे। मोतीपुरा में गंगाधर का पीढ़ियों से चला आ रहा एक छोटा सा खेत था, जिसमें साल में दो फसलें होती थीं। लेकिन जमाना धीरे-धीरे करवट बदलता गया, मन्दे का स्थान मँहगाई ने ले लिला, आमदनी कम हो गई और लोगों के खर्चे बढ़ गये। विद्याधर के परिवार में चार-पाँच वर्ष का रोहन, पत्नी हीरा और विधवा छोटी बहिन कला तथा बूढ़े गंगाधर थें। गृहस्थी का खर्चा दिक्कत से चलता था, हमेशा खींचातानी बनी रहती। इसीलिये ऊब कर विद्याधर शहर चले आये थे।

तब छोटी-छोटी तनख्वाहें पाने वाले भी खुशहाल थे। मिलों में काम आसानी से मिल जाता था। विद्याधर को भी नौकरी मिल गई। फिर वे पत्नी और पुत्र को शहर ले आये। तब से अब तक पता नहीं, कितने परिवर्तन हो चुके थे।

कला अपने बूढ़े बाप के साथ गाँव में रहती थी। ब्याह के एक वर्ष बाद ही वैधव्य ने उसका सिन्दूर

धो दिया। तभी से वह पीहर में रहती थी। कभी-कभी भाई और भावज के पास शहर भी चली आती। उसके व्यवहार से घर में सभी प्रसन्न थे। विद्याधर की अवस्था इस समय लगभग चालीस–बयालिस साल थी। कला उनसे अवस्था में तीन साल छोटी होने पर भी बहुत कुशाग्र थी और हीरा विद्याधर की पत्नी, इतनी सरल और सीधी थी मानो कोई देवी हो। दोनों ननद भौजाई में अच्छी पटती थी।

हीरा और विद्याधर के सारे सपने रोहन के लिये थे, कि वह पढ लिखकर एक काबिल आदमी बनेगा, खूब पैसा पैदा करेगा। फिर हमारे घर की गरीबी अपने आप दूर हो जायेगी; इसीलिए पेट काट-काट कर वे उसे पढ़ा रहे थे। और लड़का भी था होनहार, वह सदाचारी था और पढ़ने में मन खूब लगाता था। गत वर्ष एम०ए० की परिक्षा में प्रथम आया और इस साल बी० टी० कर रहा था।

कला जब घर में आई तो जैसे हीरा को बहुत बड़ा बल सा मिल गया। शाम को चार बजे अपने ससुर गंगाधर और रोहन तथा कला के साथ अस्पताल गई वहाँ देवकुमार पहले से बैठा था।

वार्ड में इस समय अच्छी खासी भीड़ लग रही थी। बीमारों से भेंट करने के लिये आने वाले लोग कोई आरहे थे, कोई जा रहे थे। विद्याधर की बाँह अबतक स्प्रिंग पर से नहीं हटाई गई थी। इस समय वे शान्तिपूर्व लेटे थे और देवकुमार से धीरे-धीरे बातें कर रहे थे। परिवार के सब लोगों को आया देख उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई

सब लोग बैठ गये और वार्तालाप चलने लगा। इस बींच देवकुमार तनिक देर के लिये बाहर गया और अपने साथ कुछ सन्तरे, मोसम्मी और सेव ले आया।

इस पर विद्याधर ने मीठी आपत्ति की, तो वह हँस दिया और कहने लगा – "दादा ! कोई भी छोटा श्रद्धावश जब कुछ करता है, तो उस पर किया गया एतराज भी, एक बहुत बड़े सम्मान की बात होती

है। इन सब बातों को छोड़िये अपना मन बहलाये रहिये। यह सोच-सोच कर आप अपना मन खराब न करें कि आपका दाहिना हाथ कट गया है और आप एक अङ्ग से लाचार हो गये हैं। मैं आपकी दाहिनी बाँह हूँ। आप.........।"

देवकुमार की बात पूरी भी नही हो पाई थीं कि इतने में कला उठी—"देवकुमार ठीक कहते हो तुम भइया। मेल-व्यवहार से आदमी के बहुत बड़े-बड़े काम हँसते बोलते हो जाते हैं। जुग-जुग जियो, मुझे बड़ी खुशी है, कि तुम कितना ख्याल रखते हो हमारे घर का।"

इस तरह देर तक सबमें बातें होती रही। फिर जब सब लोग चलने लगे तो चलते-चलते हीरा पीछे लौट आई और पति के पास जा, गौर से कटी हुई बांह को देखने लगी। ससुर की उपस्थिति में वह मुंह पर घूंघट डाले बैठी रही थी। उसको अवसर नहीं मिल पाया जो विद्याधर से कुछ बोल पाती। सब लोग वार्ड के बाहर दरवाजे पर रुक गये और हीरा दो-एक बातें करके उनके पास आ गई। तब उसको देखते ही देवकुमार मुस्करा पड़ा और कला की ओर देख कहने लगा—"दीदी! तुम ताज्जुब करोगी कि हमारी भाभी को शहर में रहते इतने दिन होगये; लेकिन उनका पुरानापन बदस्तूर आज भी कायम है।"

कला हंस पड़ी और हीरा की ओर देखकर गर्वपूर्वक कहने लगी—"कुल की मरजाद इसी में है। मुझे बिल्कुल अच्छा नहीं लगता है, जो आजकल की बिटिया, बहुयें मुंह खोले घूमती हैं।" यह कहने के साथ उसने एक अजीब प्रश्न कर दिया देवकुमार से। वह पूछ बैठी—"तुम अपनी बहू से कहीं आने जाने के बखत परदा कराते हो या नहीं?"

देवकुमार असमंजस में पड़ गया। लेकिन तत्क्षरण ही सम्हल कर कहने लगा—"क्यों नहीं?"

फिर रोहन के साथ और सब लोग अपने घर चले गये और देवकुमार रास्ते में अकेला रह गया। आज उसने चार बजे बैंक से छुट्टीं ले

ली थी। इसीलिए सोच रहा था कि छुट्टी लेने का मुआविजा कल कहीं एजेन्ट महोदय नाहक गुस्सा करके वसूल न कर लें, किन्तु अब यह संशय पीछे छूट गया था और रह–रह कर उसके मन में यह बात खटक जाती कि कला कहती थी, तुम अपनी स्त्री से परदा कराते हो या नहीं ? बहुत मुश्किल, गाँव का समाज परदे को जितना महत्व देता है, शहर का समाज उतना ही उससे नफरत करता है। शरवती यहां जब भी राधा-मोहन के घर या और कहीं मेरे साथ जाती है तो वह मुंह खोल कर चलती है।अगर कही ऐसी स्थिति में, उस पर कला की निगाह पड़ जाय तब तो वह आसमान में किला खड़ा करदे कि देवकुमार की बहू बड़ी शोख हैं और दूसरी ओर यह स्थिति हैं कि राधामोहन और चारु वगैरह अगर शरवती को घूंघट डाले देखलें, तो मुंह पर न कहकर, मन ही मन यह जरूर कहेंगे, कि देवकुमार की बहू बिल्कुल गवाँर है। दुनियाँ में हर एक को खुश रखना मनुष्य के वश की बात नहीं ! महान मानवों की भी टीका टिप्पड़ी होती है, उनके भी विरोधी और प्रतिद्वन्दी होते हैं। फिर भला साधारण आदमी की क्या बिसात, जो वह सबको प्रसन्न रखने की क्षमता रख सके।

घर निकट आता जारहा रहा था और देवकुमार सोच रहा था, कि घर में पहुँचते ही शरवती, उसके सम्मुख अपनी बातों का ताँता लगा देगी, जिससे वह ऊब जायेगा और उसकी अशान्ति चौगुनी बढ़ जायेगी।

## छः

शाम को शरबती श्रौर देवकुमार में कुछ बातें हुईं थीं जो इस प्रकार थी—

देवकुमार जब घर पहुँचा तो शरबती श्रागे बढ़ श्राई श्रौर फर्श पर बैठ कर उसके जूते का फीता खोलने लगी। देवकुमार ने पैर हटा लिया। उसने मना किया—"मैं खोल लूँगा, तुम श्रपना काम करो।"

इस पर शरबती को क्षोभ नहीं हुश्रा। उसका मन तनिक भी नहीं बिगड़ा, प्रत्युत प्रसन्न होकर हँसोड़ मुद्रा में वह बोल उठी—"यह मैं श्रपना ही काम कर रही हूँ।" कह कर शरबती ने जल्दी से बूट खोल लिये फिर जुर्राब उतारती हुई बोली—"तुम इस काम को पराया समझते हो, बहुत गुस्सा करते हो। जानते हो, गुस्सा खून सुखाती है।"

देवकुमार न तो कुछ जवाब ही दे सका श्रौर न शरबती के कार्य में बाधा ही डाल सका।

बूट उतर गये। रबड़ की चप्पलें शरबती ने पति के पाँवों में डाल दी। फिर टाई श्रौर कमीज उतार कर सन्तोष की ठण्डी साँस लेतीं हुई बोली—"तुमने गाँव का कुछ भी हाल नहीं बतलाया मुझे। घर में जब

तक रहे, मौन ही साधे रहे। अब कैसी तबियत है माँ की ?" "अच्छी है तुम्हें बहुत पूछती थी।" हठात् देवकुमार के मुँह से ये शब्द निकल गये। सहसा उसे लगा कि वह पत्नी के आगे झुक गया है।

और शरबती अपनी कटोरे जैसी बड़ी-बड़ी आँखों को चमका कर आतुरता के साथ बोल उठी—"अबकी बार मैं बहुत दिन से गाँव नहीं गई हूँ। मन करता है कि सनीनो ( रक्षा बन्धन ) का त्यौहार गाँव में ही करूँ, बड़ा अच्छा रहेगा।"

इस पर भी देवकुमार के मुँह से बरबस ही निकल गया—"तो मैं मना कब करता हूँ। वैसे तो माँ ने कहा था कि बरसात का मौसम है, गीली लकड़ियाँ तुम्हारे जलाये नहीं जलेंगी। खाना बनाने में बड़ी तकलीफ होगी, अभी क्या करोगे बहू को लाकर ? क्वार के नवदुर्गों में ले आना, यहाँ संकटादेवी का मेला देख लेगी। फिर जब मैं कार्तिकी नहाने कानपुर आऊँगी, तो उसे वहाँ छोड़ आऊँगी।"

शरबती का अन्तर्मन प्रसन्नता के अतीव आवेग से आलोड़ित हो उठा। वह निर्लिप्त हँसी हँसती हुई आत्म-सुख में विभोर होकर बोली—"तब तो बड़ा अच्छा है, गाँव में रहने का मौका खूब मिलेगा। न जाने गाँव मुझे इतना प्यारा क्यों लगता है, जब कि शहर बिल्कुल नही भाता। अच्छा, अब उठो, पानी लाती हूँ, हाथ पैर धो लो और चलकर खाना खाओ। सवेरे दो कौर भी तो नहीं खाया था तुमने।"

देवकुमार यह सुनते ही स्वयं उठ कर नल पर चला गया और जब पैर धोकर मुँह हाथ पोंछने के लिए तार की अरगनी पर टँगा तौलिया उतारने आगे बढ़ा, तो देखा शरबती हाथ में तौलिया लिये, उसके पास खड़ी मुस्करा रही है। वह बोली—"शायद अब भी गुस्सा थोड़ा-थोड़ा है जरूर। चलो, पेट में कुछ पहुँचते ही, वह भी पच जायेगा आज पालक की पकौड़ियाँ बनाई हैं, मैंने।"

देवकुमार मुस्करा उठा; किन्तु उसके बाद उसको ऐसा लगा कि जैसे वह शरबती के सामने पराजित हो गया है।

देवकुमार भोजन करने लगा। शरबती उससे हँस-हँस कर बातें कर रही थी जिससे अन्त में यह स्थिति आ गई कि वह मन ही मन कह उठा कि शरबती एक कुशल गृहणी है। वह जान-बूझ कर कोई गलती नहीं करती और अनजान में यदि कोई भूल हो जाय तो उसके लिए उसका प्रायश्चित यही है कि तत्काल ही वह अपनी स्थिति में सुधार कर लेती है।

आँगन में थोड़ा सा धुँधला प्रकाश था; क्योंकि दिन छिप रहा था और साँझ आने वाली थी। रसोई में बिजली का बल्ब जल रहा था, उसका प्रकाश अन्धेरे में ऐसा मुखरित हो रहा था जैसे शरबती की मुक्त हँसी।

× × ×

राधामोहन की आयु लगभग बत्तीस-तैंतीस साल की थी। वह केवल इण्टर मीजियेट पास था और बैंक में नौकरी करते हुये उसे लगभग बारह-चौदह साल हो गये थे। घर में पूर्वजों की कमाई की तरी थी, निज का मकान था, लेकिन फिर भी वह नौकरी करता था। छोटी बहन चारुशीला के लिये उसके पिता दस हजार रुपये बैंक में छोड़ गये थे, जिससे उसकी पढ़ाई चल रही थी। वह लखनऊ मेडिकल कालेज से एम० बी० बी० एस० कर रही थी। यह उसका अन्तिम वर्ष था।

राधामोहन का स्वभाव मिलनसार था और वैसी ही सामाजिकता थी उसकी पत्नी रेवा में। वह मैट्रीकुलेट थी, सोने-चाँदी के गहनों से लदी थी; लेकिन थी इतनी सरल कि किसी से बोलती तो ऐसा लगता कि उसके मुँह में मिश्री घुली हुई है।

राधामोहन के पिता लेन-देन का काम करते थे। खानदान ऊँचा था, उसकी आन-बान-शान तीनों कायम थीं। समय ने पलटा खाया।

उन पर डकैती का माल खरीदने के आरोप में एक झूंठा मुकदमा चल गया, जिसमें वे तबाह हो गये और वह तबाही ही उनकी मौत का कारण बन कर रही।

रेवा कई बच्चों की मां थी, जो धरती पर आकर उसका साथ छोड़ गये थे और फिर उसके साथ गर्भस्त्राव वाला झंझट चला। हार मानकर राधामोहन ने उसके पेट का आपरेशन करवा दिया, जिससे बच्चे होना बन्द हो गया।

लेकिन रेवा तब से कुछ अस्वस्थ सी रहने लगी थी। उसके पेट में हमेशा मीठा-मीठा दर्द बना रहता, कभी-कभी जब बढ जाता तो उसे दवा लेने के लिए बाध्य हो जाना पड़ता। कुदरत से खिलवाड़ करने वाला आदमी यह सोच लेता है कि मेरी विजय हुई और प्रकृति हार गई। लेकिन हारता वही है, जो आज तक प्रकृति के सदृश हाड़ और मांस का इन्सान नहीं बना सका। रेवा की जिन्दगी दूभर हो गई थी, उसके पेट का दर्द घटता और बढ़ता रहता था। उसने पाँव जमा लिये थे और न जाने की जैसी कसम खाली थी।

विज्ञान के चमत्कार ने आदमी की आँखों की असली रोशनी छीन ली है और कृत्रिमता में इतना सम्बल कहाँ जो वह—वास्तविकता से टक्कर ले सके। प्रकृति ने जो दिया है और जैसा कि तुलसीदास ने कहा है।

"सकल पदारथ हैं जगमाही, कर्महीन नर पावत नाही।"

इस भाँति मनुष्य को सभी कुछ उपलब्ध है। प्रारब्ध और प्रयत्न उसके दो बहाने हैं। शरीर में से किसी अङ्ग को अलग कर दिया जाय तो वह अपूर्ण और अधमरा हो जाता है। रेवा के साथ भी यही दुर्भाग्य था। वह जब घर में पड़े-पड़े ऊब जाती और पेट का मीठा-मीठा दर्द उसके कलेजे में चुटकियाँ काटता रहता तब वह मन बहलाव के साधन ढूँढ़ती थी। कभी रामायण लेकर बैठ जाती, कभी किसी पड़ोसिन के घर

पहुंच जाती और कभी-कभी आ जाती थी। शरबती के घर क्योंकि उससे वह बहुत स्नेह करती थी।

एक दिन दोपहर की बेला में रेवा शरबती के घर आई। उस समय दोपहर की धूप खूब तीखी हो रही थी। उमस से सारा वातावरण गरम-गरम लम्बी सांसें ले रहा था। हवा की गति एकदम मन्द थी और शरबती अपने कमरे में बैठी तकिया के सफेद गिलाफ पर कमल का फूल रेशमी तागों से काढ रही थी। टेबिल फैन उसके सामने खुला रखा था, जिसकी हवा लग कर उसके – काले बालों की कुछ लटें मत्थे से लेकर कपोलों पर झूल रही थीं। वह अपने काम में व्यस्त थी और धीरे-धीरे गुनगुना रही थी —"ऊँची अटरिया मेरे रघुवर की।"

रेवा ने जाते ही टोक दिया और फ्रेम उसके हाथ से लेकर गिलाफ पर कढे हुये हरे पत्तों वाला गुलाबी सरोज देखकर अनायास ही उसके मुख से निकल गया—"वाह रानी वाह! कढाई में तो तुमने सबको मात दे दी। कितना बढ़िया फूल है यह। ठीक तुम्हारी ही तरह क्योंकि तुम गुणों की खान हो और साथ ही ऐसी फुलवारी जिसमें रोज नये-नये फूल खिलते हैं।"

शरबती संकोच भरी हँसी हँस रही थी, जिससे उसके गोरे और भरे हुए गालों में गढ्ढे बन-बन जाते थे। उसने जल्दी से टांड़ पर से उतार कर सीतल पाटी फर्श पर बिछा दी और फिर रेवा के सम्मुख पंखे का रुख मोड़ कर पास आ कहने लगी—"इतनी तारीफ मेरी दीदी नहीं करेगी तो क्या बाहर वाले करेंगे। आजकल पेट के दर्द का क्या हाल रहता है दीदी?"

"उसकी न पूछो, यह राज रोग है, जिन्दगी के साथ जायेगा।" यह कह कर रेवा शरबती के सम्मुख उलाहना भरे स्वर में बोली— "क्या बात है, बहुत दिनों से तुम घर नही आईं? आज अकेले बैठे-बैठे तबियत ऊब गई तो सोचा कि चलूं अपनी आँखों को शरबती आँखों से

मिलाकर हिये को ठण्डा करूं। न जाने क्या बात है शरबती कि मैं तुमको इतना चाहती हूँ, जैसे तुम मेरी छोटी बहन हो। चारु तो सोमवार को सबेरे ही लखनऊ चली गई थी। अकेले बैठे-बैठे जी ऊब जाता है, आ जाया करो, अकेले मन नहीं लगता है। आज सावन का तीसरा सोमवार है परमट चल रही हो? गंगा स्नान हो जायेगा और साथ ही आनन्देश्वर बाबा के दर्शन।"

छूटते ही शरबती अपनी मजबूरी जाहिर करती हुई कहने लगी- "उनसे नहीं पूछा है, फिर कैसे चल सकती हूँ। तुम चली जाओ दीदी, फिर कभी देखा जायगा।"

रेवा हँस पड़ी और कहने लगी—"यह तो वही बात हुई कि कैदी जेल में बन्द है और अपनी इच्छा के मुताबिक वह पाखान, पेशाब को भी नहीं जा सकता, उसे दूसरे से इजाजत लेनी पड़ती है। औरतों के हर काम मर्दों से ही पूछ कर नहीं किये जाते हैं। गंगा नहाना, देवी पूजना, तिथि त्योहारों पर उपवास रखना यह सब तो रोज के धन्धे हैं, इन मामलों में स्त्री ही सब कुछ समझती है, आदमी कुछ नहीं जानता। चलो चलें अभी एक बजा है चलते-चलते दो बज जायेंगे; चार बजे तक लौट आऊँगी।"

शरबती रेवा के मुँह की ओर देखती रही। वह कुछ जवाब नहीं दे पाई और रेवा फिर कहने लगी—"पता नही तुम्हारा संकोच किस दिन छूटेगा, चलो उठो, यह गाँव नहीं शहर है शहर में रहोगी तो शहरी होकर रहना पड़ेगा।"

बात समाप्त करते ही रेवा खिलखिला कर हँस पडी और शरबती को भी हँसी आ गई। फिर रेवा के सम्मुख उसकी हँसी ही स्वीकृति का प्रतीक बन गई।

दोनों चल पड़ी। घर में ताला बन्द कर दिया। फिर सड़क पर

आ, रेवा ने एक रिक्शा किया और तनिक ही देर में दोनों परमट पहुंच गईं।

× × ×

कला को गांव से आये कई दिन हो गये थे। इस बीच वह एक दिन भी देवकुमार के घर नहीं जा पाई। होता यह था कि वह नित्य योजना बनाती कि आज अपनी भाभी हीरा के साथ देवकुमार के घर जायेगी; किन्तु हीरा को गृह कार्यों से अवकाश ही नहीं मिल पाता जो वह ननद के साथ शरबती के घर जाती। वह आज दोपहर को देवकुमार के घर जा पहूँची।

वहाँ घर में ताला बन्द था। कला को बहुत क्रोध आया और उसके मुँह से स्वतः ही अस्फुट स्वर में निकल गया—"वाह! कमाल करती हैं आज कल की छोकड़ियाँ, गाँव से शहर आते ही एकदम शहरुल्ली हिरनी बन जाती हैं।"

इसी तरह खीझनी और अपने मन को खराब करती हुई कला घर लौट गई और जाते ही हीरा से कहने लगी—"भौजी (भाभी) गजब हो गया। देवकुमार तो बेचारा बक गया है और उसकी जोरु पता नहीं घर में ताला बन्द करके कहाँ घूमने गई है? भला यह आजादी गाँव में कहाँ रखी है? तभी तो बूढ़े सास-ससुर को छोड़कर वह खसम के पास रहती है। दैय्या रे दैय्या! अन्धेर हो गया। आदमी बैल बनकर काम करे और ये नई-नवेली लुगाइयाँ, शहर के चक्कर काटें। मैं तो आज कहूँगी देव से, उसकी लानत-मलामत करूँगी कि औरत को इतना सिर पर क्यों चढ़ा रखा है?"

हीरा बहुत ही सादगी और शान्ति की पुतली थी। वह एकदम अपनी राय देती हुई बोल उठी—"तुम्हें क्या करना है बिटिया, कोई कुछ भी करे और कैसे भी रहे, हुआ क्या? अभी गई और अभी लौट आई। बात क्या है?"

कला ने दोनों हाथ फटकारे और उगलियां नचाकर बोली—"मैं तो गई थी उस चुडैंल से मिलने; लेकिन वह घर में मिली ही नहीं, ताला बन्द था, कहीं गई होगी सैर सपाटे को। तुम्हीं बताओ भौजी। गाँव वाले सुनेगे तो क्या कहेंगे? नाशपीटी के यहाँ आकर पर खुल गये। वह आजाद हो गई है। मैं............।"

"चुप भी रहो बिटिया, हमें क्या करना है कोई नंगे नाचे या घूँघट डाल कर चले हमें किसी से क्या मतलब? अपने अपने घर का चलन है।"

हीरा कला की बात में बाधा देकर प्रवचन पर उतर आई थी। इससे कला का सख्त मन झकझोर उठा और वह चिढ़कर कहने लगी—"ऐसी-तैसी चलन की, सारी लाग आदमी की होती है। वह जैसा बनाता हैं औरत वैसी ही बनती है। मुआ देवकुमार हमसे कहता था कि उसकी घरवाली परदा करती है। हाथ कंगन को आरसी क्या? अब तुम्हीं फैसला करो भौजी, अगर देव की बहू परदे में रहती होती, तो आदमी की न,मौजूदगी में घर में ताला बन्द करके घूमने जाती। अन्धेर है अन्धेर! फिर भला, कलजुग क्यों न पनपेगा। हमारे रोहन की बहू आये और मजाल पड़ी है घर के बाहर पैर निकाल जाय। उसकी टाँग तोड़ दूँगी भौजी। मुझे ज्यादा आजादी अच्छी नही लगती।

कला की इस बात पर हीरा हँस पड़ी और हँसते-हँसते बोली—अरे अभी बहू तो आई भी नही और उसकी खबर तुम पहले से ही ले रही हो? भला बुआ के सामने फिर वह बेचारी कैसे ठहरेगी, थर-थर काँपेगी। कितना कहा कि, तुम्हें क्या करना है, दूसरे की भलाई बुराई से अपना क्या फायदा क्या नुकसान। छोड़ो इस पचड़े को और यहबताओ कि गोंद कितना मँगवा लूँ। कल तुम कहती थी न कि दद्दा के लिए गोंद के लड्डू बनाऊँगी सो......।"

कला एकदम चौंक उठी। वह बीच ही में अपनी भाभी की बात काटकर बोल उठी—"अरे, तुमने अभी मंगाया ही नहीं। मैं तो समझी थी, कि गोंद घर में रखा होगा. देवकुमार के घर से लौटते ही लड्डू बना डालूँगी। छोड़ो ! आज जाने दो अभी रोहन भी घर में नहीं है शाम को मंगा लेना सबेरे बना दूँगी।"

इस तरह प्रसंग बदल गया और दोनों अपने गाँव घर की बातें करने लगीं।

देवकुमार नित्य विद्याधर के पास नहीं पहुँच पाता था। वह आज जब तीन-चार दिन के बाद अस्पताल पहुँचा तो कला उसे देखते ही कहने लगी—"आज कई दिन बाद आये देव, क्या आज बैंक नहीं गये थे ?"

देवकुमार जैसे सोते से एकदम जाग पड़ा। वह अचकचा कर बोल उठा—"क्यों, गया क्यो नहीं था ?"

कला तनिक हँस दी और कहने लगी—"कुछ नहीं यों ही पूछा था। दोपहर को तुम्हारे घर गई थी, तो ताला बन्द था। मैं समझी कि बहू को लेकर कही गये होंगे ?"

"क्या कहा, ताला बन्द था ?" देवकुमार आश्चर्यचकित हो यह प्रश्न करता हुआ, फर्श की ओर देखने लगा।

कला जवाब देने में भला कब चूकने वाली थी। अब की बार वह दूसरी ही बात कहने लगी, जिससे देवकुमार का सिर उस समय लज्जा से नत हो गया। वह बोली—"यह तो मैने आज ही जाना किंतु तुम्हारी बहू घुमक्कड़ है। वह अकेले ही, जहाँ चाहती है चली जाती है। फिर यह परदा कहाँ रहा भइया ? ऐसा नही होना चाहिये, गाँव वाले सुनेंगे तो क्या कहेंगे ! औरत को दाब कर रखना चाहिये। ज्यादा आजादी अच्छी नही।"

अबकी बार देवकुमार कुछ नहीं बोला। वह मन ही मन शर्म

से कटा जा रहा था, इसीलिए प्रसंग बदलने की गरज से विद्याधर से बातें करने लगा।

जब देवकुमार अस्पताल से घर की ओर चला तो उसका चित्त बहुत उद्विग्न था। उसे बार बार यह बात कचोट-कचोट उठती थी, कि शरबती आखिर कहाँ गई थी। किसी के घर आने जाने का समय तीसरे पहर और शाम का है फिर वह दोपहर को कहाँ गई थी। और तो किसी के घर जाती नहीं। हो सकता है राधामोहन के घर गई हो? अभी एक हफ्ता ही हुआ है, इसी बात को लेकर मैं कई दिन तक बिगड़ रहा था। उसके बाद उससे तनिक हँस कर बोलने लगा कि फिर सिर पर सवार हो गई। कला दुष्ट स्वभाव की स्त्री है, गाँव जाकर वह डङ्का पीटती घूमेगी इससे घर की बदनामी होगी। क्या करूँ, शरबती ने तो मेरी नाक में दम कर दी है? कहीं अच्छा हो, जो वह देहात में ही पड़ी रहे। उसको शहर में रखना, अपनी किरकिरी करवाना है।

देवकुमार बहुत हैरान था। उसकी बुद्धि काम नहीं कर रही थी कि घर जाकर शरबती के साथ कैसा व्यवहार करे। उसको कैसे समझाये कि कोई भी काम वह ऐसा न करे, जिसमें किसी को उँगली उठाने का मौका मिले। तीर जब छूट जाता है तो फिर वह वापस नहीं आता। ऐसे ही समाज में यदि किसी स्त्री की बदनामी उड़ जाय फिर वह लाख पाक दामन बने; लेकिन लोग उसको अच्छी निगाह से नहीं देखते हैं। चलूँ, पूछूँ कि आखिर कहाँ गई थी वह!

यह सब सोचता-विचारता देवकुमार घर की ओर बढ़ा चला जा रहा था। उमस इस समय खूब थी लगता था कि पानी जरूर बरसेगा, देवकुमार के तलुए पसीज रहे थे, जिससे जुर्राब भीग गये थे। वे जूतों के तलों से चिपट कर चिपचिपा उठे थे।

## सात

घर आकर देवकुमार ने सबसे पहले शरबती से प्रश्न किया। उसने पूछा—"दोपहर को तुम कहाँ गई थीं ?"

शरबती पति के मुँह की ओर देखने लगी। उसे आश्चर्य हो रहा था कि आखिर ये तो अभी बैंक से चले आ रहे हैं। इन्हें क्या पता कि मैं कहाँ गई थी ? उसने देखा, देवकुमार की आँखें गुस्से में गुलाबी होकर अब लाल हो रही हैं। वह तना हुआ खड़ा था। शरबती शान्तिपूर्वक धीरे-धीरे कहने लगी—"बताती हूँ, बैठो।"

देवकुमार जहाँ का तहाँ खड़ा रहा। गुस्से से उसकी आँखें जल रही थीं और स्वर कठोर हो गया था। वह गरम होकर बोला—"पहले बताओ कि आखिर तुम क्या चाहती हो ? कहीं जाना था तो मुझको बताया होता। मुझे क्या पता कि मेरी नामौजूदगी में तुम घर में हो या कहीं बाहर घूमने गई हो। मैं········।"

शरबती अचरज से हैरान होकर पति की ओर निहारने लगी। वह सकपका गई थी। उसी घबड़ाहट

में उसके मुँह से निकल गया—"कैसी बातें करते हो ? मैं घूमने जाती हूँ। तुम्हें क्या होगया है ?"

देवकुमार छूटते ही बोल उठा—"वही जो नहीं होना चाहिये था। औरत जब आजाद हो जाती है शरबती, तो वह खानदान की नाक ऊँची नहीं करती; बल्कि उसमें बट्टा लगा देती है। जरूर तुम राधामोहन के घर गई होगी। दोपहर को कला तुमसे मिलने आई थी। घर में ताला बन्द देख वह लौट गई और अस्पताल में अभी, जब मुझे मिली तो ऐसी भिगो-भिगो कर बातों की जूतियाँ मेरे सिर पर लगाई कि मेरे तो देवता ही कूँच कर गये। बोलो, कहाँ गइ थी तुम ?"

"दोपहर को रेवा दीदी आई थीं। आज सावन का तीसरा सोमवार था, वे जबर्दस्ती अपने साथ मुझे परमट लिवा ले गईं। भला बताओ, मैं क्या करूँ ?" यह कहकर शरबती पति के निकट आ गई और आँखों में आँसू ला—भीगी दृष्टि से उसकी ओर देखती हुई, गीले स्वर में अनुनय करके बोली—"मन मत खराब करो, कौन जानता था कि आज कला भी मेरे पास आयेगी। मुझे पता होता तो रेवा की बात कभी न मानती। बड़ा मुश्किल है, आदमी एक साथ सब को खुश नहीं रख सकता। उस दिन भी अनजाने में ही मुझसे भूल हो गई और आज तो अचानक ही यह सब हो गया। आगे से ध्यान रखूँगी।" यह कहकर वह स्टूल उठा लाई; उस पर टेबिल-फैन रखा था। प्लग लगाते ही पंखे के पर, सर्र-सर्र घूमने लगे। तब तक शरबती कुर्सी ले आई थी, विवश देवकुमार को उस पर बैठना पड़ा।

देवकुमार मत्थे पर दोनों हाथ टेके ग़मगीन चेहरा बनाये बैठा था, जिस पर लगता था मातमपुर्सी छा रही है। शरबती ने उसको छेड़ना ठीक नहीं समझा। वह आगे बढ़ उसके कपड़े उतारने लगी और देवकुमार उस पर खीझा हुआ होने पर भी ऐतराज नहीं कर सका।

जब शरबती ने भोजन करने के लिए आग्रह किया तो देवकुमार एक गरम साँस फेंकता हुआ कह गया—"मुझे गुस्से में भूख नहीं रह जाती है, शायद इस बात को तुम नही जानती हो ? आखिर क्या होगा ? एक दिन अस्पताल में कला ने मुझसे पूछा था कि तुम्हारी बहू परदा करती है या नही ? तो मैने तपाक से जबाब दिया कि हाँ क्यों नहीं ? लेकिन अफसोस है कि आज मेरी बात की साख मिट गई। वही कला मुझसे आज कहती थी कि तुम्हारी नामौजूदगी में तुम्हारी बहू घूमने जाती है वह बड़ी घुमक्कड है, भला गाँव वाले सुनेंगे तो क्या कहेंगे ? कला के साफ साफ शब्द थे। उसने खुलासा बात कहदी कि यह फिर परदा कहाँ रहा भइया ? जानती हो शरबती ! गाँव जाते ही कला माँ और पिताजी से यह बात बाद में कहेगी सबसे पहले वह गाँव में ढिढोरा पीट देगी। माँ दुखी होंगी, पिताजी बस्ती में लोगों के सामने गरदन झुकाकर चलेंगे। तुमने मुझे बहुत हैरान कर रखा है ?"

H 83/S56B H 3271

शरबती की आँखों से टप्-टप् आँसू चूने लगे। साँझ का अन्धेरा अब घना हो चला था। दही जैसे बादल आसमान में दौड़-भाग लगा रहे थे और उनसे होड़ ले रहे थे काले मेघ, शायद कोई गरजना चाहता था और कोई बरसना। हवा का वेग तीव्र हो गया था, जिससे आँगन की अरगनी पर टँगे कपड़े झूल रहे थे। कमरे में बत्ती का प्रकाश फैल रहा था। देवकुमार अब भी उसी मुद्रा में बैठा था और सिसकियाँ लेती हुई शरबती कह रही थी—"अब तो साँप निकल गया है, उसकी फिसलन पीटने से कोई फायदा नही ; और फिर मेरी समझ में यह नहीं आत कि एक तरफ तुम यह भी चाहते हो कि मैं रेवा और चारुशीला जैसी सुशील और सभ्य बनूँ तथा दूसरी ओर गाँव वालों से भी डरते हो कि कहीं कोई यह न कहने लगे कि तुम्हारी बहू परदा नहीं करती। परदा आँख का होता है, निगाह जीती और हारी जाती है; और जरूरत

पर तिनके का भी परदा करना पड़ता है। मुझे क्या-जैसा कहो, जो बताओ वही करूँ।"

देवकुमार शरबती की यह लम्बी वक्तृता सुनकर आक्रोश से भर आया और कहने लगा—"अदब और कायदा कोई किसी को सिखाता नहीं, सब अपने आप आता है। जैसा देश देखो वैसा भेष बना लो। कला क्या यहाँ बनी ही रहेगी ? अरे जब थी, तब तक तुम्हें कहीं नहीं जाना चाहिये था। रह गई रेवा की बात—वह समझदार है, कुलीन घर की बहू है; उसे समझाया जा सकता है। लेकिन गँवारों में इतनी बुद्धि कहाँ होती है, कला गाँव की एक गँवारिन है। ऐसे लोगों को तरकीब से जीतना पड़ता है और वह तरकीब तुम नहीं जानतीं, इसीलिये मुझे गुस्सा आता है।"

शरबती तुरन्त कहने लगी—"इसमें कुछ कमी तुम्हारी भी है; क्योंकि जो बातें और भेद तुम मुझे अब बतला रहे हो, अगर यह सब पहले ही कह दिया होता, तो मैं.............. ।"

"क्या कहा, यह मेरी कमी है ? ठीक है, अब तुम बोलना सीख गई हो; शरम नहीं आती–मुझसे ऐसी बाते करती हो ?" देवकुमार क्रोध से नथुने फुलता हुआ यह कह गया।

पति के मुँह से शरम की बात सुनकर शरबती एकदम सुन्न पड़ गई। उसने दाँतों से होंठ काठ लिये और लार का घूँट निगलती हुई बोली—"न तुम उल्टे लिये जाते हो और न सीधे। कभी खाँई की ओर चलने को कहते हो और कभी खन्दक में पहुँच जाते हो। बात को मन में रखना बहुत बड़ा पाप होता है और साफ कही हुई बात हमेशा आदमी को बुरी लगती है। इन बातों को छोड़ो। तुम्हारा मन अच्छा नहीं है, लस्सी बना दूँ—पीलो, दिमाग में तरी पहुंचेगी।" यह कह कर शरबती जाने का आयोजन कर आगे बढ़ी कि देवकुमार ने उसे रोक दिया। वह कुण्ठित स्वर में बोगा--"कितनी चालाक हो तुम शरबती !

सब कुछ कहकर, फिर भुस पर ऐसा लीपती हो जैसे बहुत सीधी हो। मेरी अब तब की जानकारी यह थी कि तुम अपढ़ हो और उसी नाते कुछ थोड़ी-सी मूर्ख भी; लेकिन आज तुम्हारी बातें सुनकर लगता है कि तुम हाजिर जवाब हो और साथ ही मग़रूर भी। बस, अब चुप रहो; लस्सी-वस्सी मैं नहीं पीऊँगा। तुम्हारा मन हो, तो बनाकर पी लो।"

लेकिन शरबती नहीं रुकी। वह प्रातः जमाया हुआ दही का कूँडा (प्याला) आलमारी में से निकालने लगी। यह देख खीझा हुआ देवकुमार घर से बाहर निकल गया और शरबती उसे बुलाती ही रह गई।

# आठ

पूरा एक महिना बीत गया तब कहीं जाकर विद्याधर पूर्णतया स्वस्थ हुये। वे घर आगए थे। गंगाधर शहर में दो तीन दिन रहकर बहुत पहले ही गाँव चले गये थे। कला अब तक यहीं थी। इस बीच में न तो शरबती ही उसके घर गई और न वह ही उससे मिलने जा पाई।

अब कला गाँव जाने को तैयार थी। इससे पहले वह एकबार शरबती के घर दुनियांदारी नाते शिष्टाचार निभाने चली आई। साथ में उसकी भाभी हीरा भी थी।

तब दोपहर थी। सूरज विषुवत रेखा से कुछ दूर हट गया था, जिससे उसकी आड़ी तिरछी किरणें धरती की छाती सेंक रही थीं। वह गरम हो गई थी ऐसे जैसे तवा और लगता था कि यह बदली की धूप नहीं, जेठ की चिलचिलाती धूप है। पुराने विचारों की दोनों ननद-भोजाई तारकोल की सड़क पर चल रही थीं। उनके तलुए झुलसे जारहे थे, क्योंकि उनका सिद्धान्त था कि आदमी के सामने औरत की क्या हस्ती जो वह पांव में जूतियां पहन

कर चले। कुलीन ब्राह्मणों के घरों में स्त्रियाँ पैरों में चमड़ा नहीं डालतीं हवा कुछ उमस भरी थी जिससे सड़ी गरमी की सड़ाँध सी वातावरण में फैल रही थी। सबेरे कला को जाना था और शाम को तपेश्वरी देवी के मन्दिर में जाने की उसकी योजना थी। इसीलिए देवकुमार के घर जाने का यह समय रखा था उसने।

शरबती आज चुपचाप बैठी थी। उसकी बेकार बैठने की आदत कभी नहीं रही। न जाने एकाएक वह कुछ बदल सी क्यों गई थी ?

हुआ यह था, कि जिस दिन देवकुमार ने उससे आकर शिकायत की कला उससे मिलने आई और घर में ताला बन्द देख कर लौट गई उस दिन शाम का गया हुआ देवकुमार रात को एक बजे घर लौटा था, तो शरबती यह समझी थी कि वह सिनेमा का दूसरा शो देख कर आया होगा। लेकिन उसने पूछा कुछ नहीं। उससे खाने के लिए कहा तो वह मौन साध गया और जब आग्रह किया तो वह दुत्कार कर बोल उठा—"क्या गवाँरों की तरह खाने-पीने को ही कहती रहती हो तनिक भी अक्ल नहीं है तुममें। आदमी का मन नही देखतीं फिजूल की बातें करने लगती हो। मुझे भूख नहीं, सिर में दर्द हो रहा है। इस समय मुझे कोई बात अच्छी नहीं लगती है।"

इस पर शरबती सिर में आँवले का तेल मलने बैठ गई तो देव-कुमार खीझकर उठ खड़ा हुआ और कहने लगा—"शायद तुम चैन से नहीं बैठने दोगी, अच्छी बला से पाला पड़ा हैं। मूर्ख आदमी जब पल्ले पड़ जाता है तो जिन्दगी नर्क बन जाती हैं"

शरबती ने सब कुछ सुना, लेकिन जवाब नहीं दिया। वह अपने कार्य में व्यस्त रही और देवकुमार गुस्से में बड़बड़ाता रहा।

तब से ऐसा होगया था कि शरबती की मुक्ति हँसी विलीन हो गई। अकेले में वह रोती, आँसुओं का पारावार न रहता, किन्तु पति के सामने अपना परोक्ष भूलकर प्रत्यक्ष में गिरने का प्रयास करती

तो यह प्रतीत होता कि वह अपनी हँसी नहीं हँस रही है यह हँसी उधार ली हुई है, जो मन ने जबरदस्ती दी है इसीलिए वह नीरस है। समझता देवकुमार भी था पत्नी की स्थिति को; मगर वह अपनी रूढ़िवादिता को पहले स्थान देता था। अतः पुराने विचार और सड़ी गली रूढ़ियों के सम्मुख नत मस्तक हो अपने संकुचित और दकियानूसी विचारों में तनिक भी परिवर्तन नहीं ला पाता।

दम्पति एक दूसरे से खिचे-खिचे से रहते। दोनों में तनाव था इसीलिए उनके बीच परस्पर कुछ दूरी आ गई थी। शरबती को सबसे बड़ा दुख यह था कि उसका पति उसकी पूरी बात नही सुनता हमेशा ताने कसा करता है कि वह गंवार है, मूर्ख है और है कुपढ़ी। इसका उसे बहुत दुख था।

और दूसरी ओर था एक भीरु प्रकृति का रूढ़िवादी पुरुष, जो पत्नी को उसके अधिकार न देकर उस पर शासन करना चाहता था, जिसमें वह एक आंख से हँसे और दूसरी से रोये। अद्भुत व्यापार था, शायद तभी दैवी अभिशाप उस पर वज्र बन कर फहरा रहा था और वह विक्षिप्त की भाँति अपनी उलझनों का शिकार बन गया।

उस दिन शरबती से नाराज होकर देवकुमार कहीं और नहीं गया, पहले वह कुछ देर राधामोहन के घर बैठा रहा। फिर चला गया गंगातट पर। वहाँ बरसात की नदी आँखे काढ़े बह रही थी। पानी हिलकोरे भर रहा था। उत्तुंग लहरें नाचती-गाती, सागर प्रदेश में लय होने के लिए बावरी हो रही थीं। पानी बह रहा था, उसमें चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब चाँदी के थाल जैसा लरजता, डोलता दृष्टिगोचर हो रहा था। तारे भी प्रतिबिम्बित होकर जलराशि पर उतर आये थे और चाँदनी दूर-सुदूर तक फैली हुई, चाँदी सी चमक रही थी। ऐसे में दरिया पर बहती हुई ठण्डी-ठण्ठी पुरवाई, अपने रेशमी तारों के जाल बुन रही थी। उसकी गति ऐसी थी जैसे डोली पर से उतरी हुई बहू हो।

देवकुमार का मन यहाँ लग गया। वातावरण ने उसका खोया हुआ संतुलन ढूँढ़कर ला दिया। वह देर तक बैठा रहा और सारी परिस्थितियाँ भूल गया कि क्या उसने शरबती से कहा था और क्या शरबती ने उससे।

झींगुरों की शहनाई बज रही थी। कौंच पक्षी रात की चाँदनी में आकाश पर कों-कों करके उड़ रहे थे। सहसा घाट पर के गंगा पुत्र, मन्दिर के पुजारी और पण्डा आदि लोगों की आबाल वृद्ध सहित एक छोटी सी भीड़ दोनों बुर्जों पर आकर खड़ी होगई और समवेत स्वर गूँजने लगे—"ये राजा की कोंकें हैं, पहाड़ से उड़कर आ रही हैं और किसी मैदान में जाकर उतरेंगी।"

शान्ति भंग हुई, देवकुमार उठकर चल दिया और घर पहुंचते ही उलझनों ने उससे फिर संगम कर लिया।

शरबती इस समय बैठी इन्हीं सब बातों पर विचार कर रही थी कि उसे क्या करना चाहिये। उसके लिये पढ़ना जरूरी है, क्योंकि आदमी में जब कोई कमी होती है, तभी दूसरे को कहने का मोका मिलता है। इसके अलावा वह इस बात को अच्छी तरह समझती थी कि एक मेरे अपढ़ होने की कमी को लेकर वे चिढ़े रहते हैं। असली कारण यही है और फिर यह तो आदमी की आदत होती है कि जब वह किसी में खराबियाँ ढूँढ़ने बैठ जाता है, तो उसकी निगाह में खूबियाँ भी खराबी बन जाती हैं। क्या करूँ, पढ़ने-लिखने का सिलसिला कैसे शुरू करूँ? कौन पढ़ायेगा मुझको? स्कूल तो जा नहीं सकती और अगर उनसे कहूँ, तो सुनते ही आग-बबूला हो उठेंगे और कह देंगे कि फुरसत नहीं है।

इस भाँति शरबती का अन्तर्द्वन्द्व चल रहा था कि कला और हीरा ने घर में प्रवेश किया।

शरबती ने गाँव की प्रथा के अनुसार, हाथों में आँचल लेकर

दोनों स्त्रियों के पैर छुये। फिर शीतल पाटी बिछा, सम्मानपूर्वक दोनों को बैठाती हुई, आवभगत करने में लग गई। उसने घर में बनाये हुए नमकीन और मीठे सेब, मूंग के लड्डू लाकर दोनों को जलपान कराया। फिर दुनियांदारी की बांते होने लगीं।

बातों के सिलसिले में कला ने अपनी पुरानी गोट चलाई। वह एकाएक शरबती से पूछ बैठी—"अरे, बहू! एक दिन मैं आई तो ताला बन्द था। न जाने कहां गई थीं तुम। मुझे तो बड़ा बुरा लगा कि हमारे घर की बिटिया, बहुएं अकेले घर से बाहर कदम निकालें। कहाँ गई थीं, उस दिन?"

शरबती पहले से ही जानती थी कि कला की बाल की खाल निकालने की पुरानी आदत है, तभी वह चौंकी नहीं और न सुनकर हैरान ही हुई। वह नम्र स्वर में बोली—"उस दिन सावन का तीसरा सोमवार था। मेरा कहीं जाने का विचार नहीं था, इसीलिये उनसे कुछ पूछने की जरूरत नहीं थी; लेकिन पड़ोस की रेवा दीदी, उनके पति तुम्हारे भाई (देवकुमार) के साथ काम करते हैं, वे नहीं मानी और अपने साथ गंगाजी लिवा गईं।"

इस पर कला के कान खड़े हो गये। वह मुंह फैला, अचरज व्यक्त करती हुई कहने लगी—"राम-राम, शहर में किसी का विश्वास न करना बहू! विश्वास में ही आदमी मारा जाता है, और फिर मेले-ठेले में तो अपने घर के आदमी के साथ जाना चाहिये। चलो, कोई बात नहीं। अभी तुम्हें तजुर्बा नहीं है, धीरे-धीरे सारी लोक-रीति अपने आप समझ जाओगी।"

शरबती ने हाँ द्योतक सिर हिलाया और तभी पास बैठी हुई हीरा, कला के समर्थन में बोल उठी—"हाँ, दुलहिन! बिटिया ठीक कहती हैं। देखो, मेरे बाल खिचड़ी हो गये हैं; लेकिन घर के बाहर

निकलने पर अब तक मुँह खोलने की हिम्मत नहीं पड़ती। अभी तुम्हारी उमर ही क्या है, बच्ची हो बच्ची।"

शरबती, हीरा की बातों से न चिढ़ी और न प्रसन्न हुई। वह संयत होकर कहने लगी—"हाँ जीजी ! बड़े-बूढ़े तो ज्ञान की ही बात बताते हैं, जो उनकी बातों पर न चले यह उसकी ना-समझी है। मुझे बड़ी खुशी होती है, जब कोई बूढ़ा और अपने से बड़ा नेक सलाह देता है।"

शरबती की बातों से कला प्रभावित हुई। उसे लगा कि शरबती ने उसको अपना गुरु मान लिया है। अतः वह प्रसन्नता से खिल उठी।

हीरा का यह विश्वास अटूट हो गया कि देवकुमार की बहू बहुत सीधी तथा सुशील है। वह बड़ों का अदब करती है, यह बहुत बड़ी बात है।

शरबती दुनियाँदारी के दस्तूर पर उतर आई थी। काफी देर तक कला और हीरा उसके पास बैठीं। सब में बातचीत होती रही, फिर जब दोनों अपने घर जाने के लिये उद्यत हुईं, तो शरबती ने दोनों के पाँव छुए और बाहर चौखट तक भेज आई।

× × ×

कला चली गई। रोहन उनको भेजकर गाँव से लौट आया। आज कॉलेज बन्द था। विद्याधर घर में मौजूद थे। हीरा उनके पास बैठी खजूर का पंखा झल रही थी और रोहन साथ में लाई हुई एक मासिक-पत्रिका पढ़ रहा था।

इस समय ठीक दोपहर थी, लेकिन आसमान रूठा था; इसीलिये सूरज को काले बादलों ने बन्दी बना लिया। मध्याह्न बेला थी और लगता था कि साँझ की अँधेरिया झुक आई है। विद्याधर का अनुमान था कि अभी हवा और जोर भरेगी और ये बादल छँट जायेंगे। वे पास रखा लोटा उठा; मुँह में दो घूँट पानी डाल, रोहन को पुकार

उठे—"रोहन, यहाँ आ बेटा ! बपुआ कुछ कहते थे, मेरे लिये ?"

रोहन बाप के निकट आकर बैठ गया और स्वर को कुछ आर्द्र करके दीन वाणी में कहने लगा--कहते क्या थे, वे बेचारे तो रो रहे थे। बहुत घबड़ा रहे थे कि आपका हाथ कट गया इससे गृहस्थी का सारा बँधा हुआ फेर ही बिगड़ गया। अब आगे भगवान मालिक है। मेरी बलाएँ लेते थे और कहते थे कि बेटा रोहन तू ही हम सब लोगों का सहारा है खूब जी लगा कर पढ़ना जिससे इस साल पास हो जाओ। फिर नौकरी की तलाश करो।"

विद्याधर ने एक दीर्घ उच्छ्वास ली और धीरे-धीरे कहने लगे—"ठीक ही कहते हैं बपुआ। अब अगर हमारा रोहन नहीं कमायेगा, तो घर का खर्च कैसे चलेगा। मैं तो अपाहिज हो गया हूँ। सोचा था कि साल दो साल मिल की नौकरी और करूंगा और जब लड़का कमाने लग जायेगा तो छोड़ दूंगा। लेकिन तकदीर ने जिन्दगी की पतंग के कन्ने ही काट दिये, अब......।"

सहसा रोहन को कुछ स्मरण हो आया और उसने याद दिलाने के लिये बाप को टोक दिया। वह बोला--"आप एक दरख्वास्त मिल में दे आइये, मैं लिखकर अभी टाइप करवाये लाता हूँ।"

हीरा और विद्याधर दोनों चौंक उठे। उनका समवेत स्वर सुनाई दिया--"कैसी दरख्वास्त ? क्या लिखोगे उसमें ?"

रोहन के मुँह से तत्क्षण ही निकल गया—'हर्जाने की।"

इसके बाद वह सम्हलकर बैठ गया और आवेश में आ कहने लगा—'मिल वालों के हाथ आपने अपना समय बेचा था, देह तो नहीं। मिल में आपका हाथ कटा इसका जिम्मेदार कौन होगा ? मिल मालिक को हर्जाना देना होगा। आपने अभी तक यह सोचा भी नहीं ?',

विद्याधर पुत्र का मुँह देखने लगे और हीरा उत्सुक होकर बोल उठी—"रोहन ने अच्छी सोची, तुम्हें इस पर अमल करना चाहिये !"

पत्नी की बात सुनकर विद्याधर निराशा में डुबकियाँ लगाते हुये एक ठण्डी सांस छोड़कर बोले—"सब जानता हूँ रोहन ! लेकिन इससे होता क्या है ? आज के इस मतलबी जमाने में हर बड़ा आदमी छोटे को कुचल रहा है, और तिलों से तेल निकालकर भी, उसे संतोष नहीं होता। पिछले साल मेरे साथ करघे पर एक मियाँ काम करता था, नाम था रहीम ! उस बेचारे के तो दोनों हाथ मशीन में दब कर सफा-चट हो गये थे। बाद में उसने बहुत दौड़-धूप की, तब कहीं सौ रुपये हर्जाने में मिल की ओर से दिये गये थे। मेरी आदत है कि भूखा पड़ा रहूँगा, पर किसी से दया की भीख नही माँगूँगा। क्या करोगे दरख्वास्त देकर, नतीजा कुछ नही निकलेगा।"

किन्तु रोहन अपने निश्चय पर दृढ था। छूटते ही बोल उठा—"पिताजी ! आप न जाने कैसी बातें करते हैं ? अपने अधिकारों की माँग दुनियाँ करती है और जमाना अब ऐसा नहीं है कि चुप्पी साधकर बैठ रहा जाय। अपने हक को नही छोड़ना चाहिये।"

विद्याधर गम्भीर हँसी हँसकर बोले—"कैसी बातें करते हो रोहन ! चुप्पी साधने की बात छोडो। मैं तो कहता हूँ कि जो चुप नहीं रहते, अपने हकों के लिये नारे लगाते हैं उनकी ही कौन सुनता है ? मिल की नौकरी तो प्राइवेट नौकरी है; सरकारो नौकरियों में आजकल आदमी की बात नही सुनी जाती। मुझे यकीन नहीं होता कि मेरी दरख्वास्त कामयाब रहेगी।"

रोहन बड़ी कुशलता के साथ बाप के हर तर्क को काटता गया। हीरा, पुत्र के पक्ष में थी; और होती भी क्यों न ! लालच स्त्रियों का एक बहुत बड़ा चाव है। हर्जाने की दरख्वास्त देने पर

मिल से रुपये मिलेंगे, यह जानकर वह प्रसन्न हो रही थी । और विद्याधर जब बेटे को दरख्वास्त न देने के लिये राजी नहीं कर पाये, तो अन्त में वे सहमत हो गये ।

उसी समय रोहन दूसरे कमरे में जाकर प्रार्थना-पत्र लिखने में व्यस्त हो गया, और उसी दिन तीसरे पहर अर्जी मिल में भेज दी गई ।

## नौ

ऊसर की धरती यद्यपि पत्थर की भाँति कठोर, कड़ी और सख्त नहीं होती है; लेकिन फिर भी लोग उसको उपेक्षा की ही दृष्टि से देखते हैं। बरसात में यत्र-तत्र जब उसकी छाती पर हरी दूब के रेशमी बाल उग आते हैं तो लोग भ्रम में पड़ जाते कि अरे ! यह ऊसर कहां, यह तो बंजर है ? ठीक यही गति कला की थी। उसका नाम कलावती था। वह साँवले रंग की पैंतीस-छत्तीस साल की स्त्री थी। पैरों में चाँदी के कड़े पहने हुये उसे एक युग बीत गया। वह दोहरी देह की थी और उसकी छोटी-छोटी आँखें इतनी जल्दी चलती थी, मानो एक क्षण में ही अपनी दृष्टि से सारी असलियत भाँप लेगी। सचमुच बड़ी चतुर थी वह ? नाक में सोने की बड़ी सी चोंगिया ( पोंगी ) और हाथों में चार-चार चाँदी की चूड़ियाँ वह पहने रहती। और धोती हमेशा सफेद पहनती थी। उसमें भी खूबी यह कि वह धोती हमेशा बिना किनारी की ही धोती थी। पूरा गाँव तो जैसे उसका नैहर था। अतः वह गाँव में चादर नहीं ओढ़ती; लेकिन जब शहर आती तो साठिया सफेद चदरा बराबर उसके सिर पर पड़ा रहता।

कला बाप की बहुत दुलारी थी। भाई की बहुत प्यारी थी और भौजाई से तो ऐसी पटती थी जैसे दूध और पानी का मेल हो। मतलब यह कि गांव से लेकर शहर तक सब पर उसका अधिकार भरा नियन्त्रण था। सभी उसका मान करते थे घर का प्रत्येक काम कला की राय से होता था और गांव में पड़ोस के घरों में भी वह जैसे छाई रहती थी। उन घरों पर कला का दकियानूसी अदल खूब चलता था। सारे मुहल्ले की काजिन थी वह।

एक बात और थी। कला जब मिलन सारिता पर उतर आती अथवा मौखिक सहानुभूति प्रकट करने लगती तो उसके स्वर में मिठास भर जाती और लगता वह बहुत बड़ी आत्मीया है। लेकिन यह भ्रम लोगों का उस समय दूर हो जाता, जब वह कर्कशा बन जाती थी।

बहुत ही विचित्र स्वभाव था कला का। धर्म की ओर उसकी प्रवृत्ति थी। अतः सफाई का वह बहुत ध्यान रखती। उसकी आदत थी जब तक चार घरों का हाल उसे नही मालूम हो जाता, चैन नहीं पड़ती। सुनी हुई बात को पचाना जैसे उसने सीखा ही नहीं था। गांव आते ही वह उसी दिन दोपहर को सुखरानी के घर गई और इधर-उधर की बातें करने के बाद शरबती की चर्चा छेड़ दी। उसने कहा—"चाची! जैसे विलायत जाकर आदमी अपना दीन देता है वह पूरा किरीस्तान हो जाता है, वैसे ही गांव की बिटिया-बहुएँ भी शहर जाकर बे अदबी और बेपरदगी करके अपनी आन को गवां देती हैं। भला लोक लाज भी तो कुछ है?"

सुखरानी समझ गई कि कला कोई छोटी सी बात को बहुत बड़ी बनाकर सुनाना चाहती है। इसीलिये इतना लम्बा ताना-बाना बुन रही है। वह थोड़े में ही ऊबकर प्रकट में उसके समर्थन स्वरूप हां, द्योतक सिर हिलाती हुई, मीठे लहजे में बोल उठी—"हां-हां, यह तो होता ही है। नई रोशनी के लड़के-लड़कियां और बहुएँ सभी अँगरेजी फैशन बहुत

पसन्द करते हैं। मुझे बड़ा सन्तोष है कि मेरा देव बहुत होनहार लड़का है और बहू जैसे हमारे हाथों की कठपुतली है; बेचारी मेरा मुँह ही मुँह देखा करती है।"

सुखरानी ने बात का प्रसंग बदल दिया था। इससे कला मन ही मन झल्ला उठी और व्यंग्यात्मक शब्दों में छूटते ही कहने लगी—"तुम्हारी उसी बहू की बात कह रही हूँ सुनकर बुरा मत मानना। देखने में अच्छा नही लगता; इसलिये तुमसे कह रही हूँ वैसे मुझे क्या गरज पड़ी थी।"

सुखरानी सकते जैसी हालत में आ गई वह कला का मुँह देखने लगी। सम्पूर्ण वातावरण उस समय शांत था। हवा सधी हुई चल रही थी। धूप कुछ फीकी थी, क्योंकि बदली का मौसम था। आँगन के एक कोने में खड़ी वह, दीवालों पर चढ़ने का उपक्रम कर रही थी। गर्मी जोर की थी। सुखरानी पंखा झल रही थी और उसके निकट बैठा झब्बू खुशी से अपनी दुम हिला रहा था। कला सुनाने लगी—"कान खोलकर सुन लो चाची! तुम्हारी बहू शहर में मुँह खोले घूमती है और कैसे बताऊँ चाची कि देवकुमार ने उसे कितनी आजादी दे रखी है जो उसकी नामौजूदगी में वह घर में ताला बन्द करके मुहल्ले की औरतों में जाकर बैठती है। भला बताओ, यह तुम्हें अच्छा लगेगा।"

सुखरानी सारी परिस्थिति को समझ गई। कला को वह बहुत कड़ा जवाब देना चाहती थी, लेकिन इसके लिए उसका शब्द भण्डार रिक्त हो गया। वह भोली अनजान बन कर बोली—"मैं तो कुछ भी नहीं जानती कला बिटिया, तुमने क्या देखा था कि मेरी बहू सड़क पर मुँह खोल कर चलती है और आपसदारी के नाते पड़ोस के घरों में बैठती है। मैंने तो आज तक इस बारे में न कुछ सुना और न देखा ही है, लेकिन आज तुम कह रही हो और तुम क्या, कोई गलत बात कहोगी?"

कला हर्ष से पुल उठी। वह मामले को तूल-अर्ज देती हुई बोली "अरे

देखा नहीं है तो क्या वैसे ही कह रही हूँ। अबकी बार जब बहू गाँव आये, तो उसको समझा देना क्योंकि अभी बात हमारे और तुम्हारे घरों तक है, अगर कहीं फैल गई, तो गाँव में बदनामी हो जायेगी"

बदनामी का नाम सुनते ही सुखरानी की सांस फूल उठी। वह हतप्रभ हो कला का मुँह निहारने लगी। उस एक क्षण में ही उसने न जाने कितना सोच डाला, जिसका क्रम यह था कि कला के पेट में बात रुकती नहीं है। वह घर-घर यह गीत गाती घूमेगी तब मेरा सिर शरम से जरूर झुक जायेगा। वह इस वार्ता प्रसंग को एकदम समाप्त कर देना चाहती थी। अत: कला की हाँ में हाँ मिलाना ही उसने ठीक समझा। उसने अपराधी की माँ की भाँति अपने बचाव में यह कह दिया कि मेरा ही अंग दोषी है। वह बोली—"ठीक कहती हो बिटिया। मैं कहूँगी जरूर कहूँगी, और बहू को इसके लिए डाटूँगी; मजाल पड़ी है आगे कोई बात सुनने को मिले।"

कला को तृप्ति मिल गई। उसने समझा कि मेरा जादू सुखरानी के सिर पर चढ़कर बोलने लगा है। वह गद्‌गद् होकर बोली—"और सास होती किसलिए है चाची! कहावत है कि सास चाहे जितनी सीधी हो, मगर हँसिये की तरह उसे कुछ टेढ़ा जरूर होना चाहिए। बहू तभी उससे दबती है और उसका अदब करती है।" यह कह कर कला थोड़ा सा हँस दी, जिससे मन-स्थिति खराब होते हुये भी सुखरानी मुस्करा पड़ी।

× × ×

रात को भोजन से निवृत हो रामकुमार बिस्तर पर लेटे न जाने क्या सोच रहे थे तभी सुखरानी उनके पास आकर बैठ गई। उसने कला से सुनी हुई बातें पति को बताई और रामकुमार सुनते ही गुस्से से तमक उठे। वे कहने लगे—"यह सब गलत है, कला झूठ कहती है। उसका तो धन्धा ही यही है, अफवाहें उड़ाना उसे खूब आता है। उसकी बात

बरना उसका मुँह नोंच लेती मैं। मजाल पड़ी है. कोई आधी बात कह जाय, मेरी बहू को। इस मामले में शहर को मैं फिर अच्छा कहूँगी, वहाँ आदमी अपने काम में लगा रहता है दूसरे की कमियाँ और खूबियाँ परखने नहीं बैठता। गाँव में बेकार लोगों की बाजार हमेशा गरम रहती है घर के बाहर चौपार में आदमियों की मजलिस जुड़ती है और ऐसी ही घर में जब औरतों की चठिया लगती है तो दूसरे की छठी पसनी, दादा-परदादा और लोक-परलोक की कसकर बखिया उधेली जाती है न जाने क्यों यह सब अच्छा नहीं लगता ?

सुखरानी देर तक इन्हीं विचारों में उलझी रही। फिर धीरे-धीरे वह उठ कर खड़ी हुई और पति का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करते हुये एक गरम साँस छोड़कर कहने लगी—"अच्छा, अब सोओ, अभी दूध लाती हूँ, इन झूँठी-मूँठी अफवाहों पर हमें अमल नहीं करना चाहिये।" यह कह कर सुखरानी दूध लेने चली गई और रामकुमार ने करवट बदली तो उन्हें ऐसा लगा, कि उनकी देह बहुत भारी हो गई है, ठीक वैसे ही जैसा कि इस समय उनका मन था।

## दस

नगाड़खाने में एक तो तूती की आवाज पहुँचती ही नहीं और अगर पहुँच भी गई; तो उसका कोई अस्तित्व नहीं होता। स्वर्ण-युग की बात और थी, उस समय शेर और बकरी एक घाट पानी पीते थे; लेकिन यह कलि-काल है, घोर कलियुग। इस युग में क्या नहीं बदला मर्यादा अपनी सीमा के कान उमेठ रही है, सत्य सिसकियां ले रहा है और मानवीय क्रूरता के पँजों में जकड़ी हुई, अपनी साँसें गिन रही है।

विद्याधर की दरख्वास्त की मिल में पहले तो सुनवाई ही नहीं हुई, फिर जब रोहन ने दिन में चार-चार चक्कर लगाये तो अधिकारी वर्ग मीठा जुलाब देने की सोचने लगा। हुआ यह कि हर्जाने में विद्याधर को दिये गये केवल दो सौ रुपये। रोहन ने इसका विरोध किया और वहीं उसने मिल मालिक से कह दिया कि यह प्रजातन्त्र है, हर आदमी आजाद है, कितनी लज्जा की बात है, इस जमाने में आदमी के हाथ की कीमत रह गई है केवल दो सौ रुपये।

विद्याधर ने पुत्र को बरजा, घर में माँ ने

पोखरों के किनारे बैठा अपना आह्लाद राग आलाप रहा था, टर्र-टें, टर्र-टे। रामकुमार हैरानी में डूबे मौन में खो रहे थे। उनके मस्तिष्क में उलझन तूफान की कलियाँ खिला रही थीं, तूफान ज्वार बनकर मचल रहा था। अतः ज्वार-भाटे के उठने की आशंका थी वे सोच रहे थे कि इज्जत बनाने के लिए आदमी थूक में भी सत्तू सानता है; लेकिन अपनी मर्यादा को भंग नहीं होने देता। मैंने अपनी आबरू बनाई है और यह भी जानता हूँ कि मेरा लड़का देवकुमार एक होनहार जवान है और बहू तो ऐसी है जैसे सौ देवियों में एक देवी। कला, पता नहीं किस धातु की बनी है कि वह भलाई में भी आदमी की बुराइयाँ ही ढूंढ़ा करती है। नीच कहीं की, मेरी बहू को बदनाम करती है, इसकी सजा उसे जरूर मिलेगी, जो दूसरे के लिए कुआँ खुदाता है, वह उसमें खुद ही गिर पड़ता है।

रामकुमार अपनी उधेड़बुन में व्यस्त थे। रात की रानी ने पैरों की मेंहदी धो डाली थी। वह आगे बढ़ रही थी सबेरे से मिलने के लिये अभी दूसरा ही पहर चल रहा था फिर भी वह बहुत उतावली थी और थी अकुलाई हुई सखरानी भी वह एकटक पति का मुँह निहार रही थी, पीली रोशनी में जल रही लालटेन अपने ऊपर के सूराखों से मिट्टी के तेल का धुँआ उगल रही थी, जिससे वातावरण में उसकी दुर्गन्ध व्याप्त हो रही थी और वह सोच रही थी कि नहीं, ऐसा नहीं मेरी बहू बेहया नहीं है। कला जैसी कुटनियों को क्या, इधर की उधर करना और तिल का ताड़ बनाना उसे खूब आता है। अगर कहीं धोखे से उँगली उसकी पकड़ में आ गई तो पहुंचा तो वह बाद में पकड़ेगी, सबसे पहले सिर पर सवार हो जागेगी अब अगर यह कलमुँही कला घर-घर अपना राग न अलापे तो बहुत अच्छा हो, लेकिन भला कहीं कुत्ते को भी घी हजम होता है। कला ऐसा ढोल है जो बिना बजाये ही बजता रहता है उससे न उलझना ही अच्छा है इसीलिए मैंने सहूलियत से उसे टाल दिया,

पर विश्वास करती हो ? अरे उसकी भी कोई मर्याद है जवाब उठाई और दे मारी। इसमें कितनी देर लगती है ?"

मगर सुखरानी हैरान थी। अपनी उलझन को वह सामने रखने के लिए व्यग्र हो रही थी। उसे पति की बातों से बल नहीं मिला। एक हठ जरूर समझ में आया, उससे बनता कुछ नहीं, बात बिगड़ जाने की ही संभावना थी। वह धीरज धर कर बोली—"अरे यह तो ठीक है, इसे मैं भी समझती हूँ; लेकिन क्या जानते नहीं कि कला का मुँह जब खुलता है, तो वह हवा से बातें करने लगती है। घर-घर वह यही आल्हा गाती घूमेगी, तब क्या हाल होगा ? मामले को चुपचाप टाल जाना ही अच्छा है। कला के खिलाफ में भी कुछ नहीं बोली, क्योंकि जानती थी यह विष की गाँठ है; अगर फूट गई तो सब जगह जहर ही जहर फैल जायेगा। नवदुर्गों में बहू गाँव आयेगी तो उससे पूछूंगी। एक तो कोई बात होगी ही नहीं, क्योंकि मेरी बहू इतनी सीधी है जितनी गाय ! और अगर देवकुमार ने उससे कोई जबरदस्ती की हो और न मन होते हुए भी पति की बात मानी हो अगर कोई भूल चूक उससे हो गई होगी तो उसके लिए मैं उसको समझा दूंगी। खबरदार कला और गंगाधर से कुछ कहना मत, नहीं तो बात का बतंगड़ बन जायेगा।"

रामकुमार पत्नी की बातों को अपनी तर्क-तुला पर नहीं धर पाये। उनका मुँह छोटा सा रह गया और दृष्टि छत में लगी कड़ियों पर केन्द्रित होगई। वे कुछ भी नहीं बोल पाये।

आकाश स्वच्छ था अथवा मेघाच्छन्न, इसका कुछ भी पता नहीं और ऐसे ही रात अंधेरी थी या उजेली सुखरानी और रामकुमार को इसका बोध नहीं था। हाँ, अलबत्ता, सन-सनन-सनन सुरसुराती हुई हवा जरूर बह रही थी, जो किवाड़ो के रन्ध्रों से अन्दर प्रविष्ट हो, असंतुलित दम्पति मस्तिष्क पर बारबार अपना आँचल डुला जाती। रात भीग रही थी, झिल्ली झङ्कार रही थी और दादुरवर्ग तलैयों तथा

उसको हटका; लेकिन बात सही थी, आज का जमाना पैसे का है आदमी की कीमत कुछ भी नहीं। पूँजी केवल श्रम को ही नहीं खरीदती, बल्कि श्रमिक वर्ग के जीवन को नेस्त नाबूद कर देती है। कहने को प्रजातन्त्र है अपने घर में अपना राज्य; लेकिन पूँजीवाद की विभीषिकाएँ, ईमान; धर्म और न्याय सभी को झुलसा रही हैं। आदमी रो रहा है और बड़ी मछली छोटी मछली को निगल रही है। रोटी और कपड़ा श्रमिक, वर्ग के लिए एक अभिशाप हो गया है। वह सोने और चाँदी से भी मँहगा हो गया है। पूँजी हँस रही है, श्रम रो रहा है और प्रजातन्त्र मुखरित हो रहा है।

रोहन बीस-इक्कीस वर्ष का गोरा चिट्टा छरहरे बदन का युवक था। वह जितना शान्त था उतना ही उग्र भी। सिधाई और सच्चाई के सामने उसका माथा अपने आप ही झुक जाता, लेकिन जब उसमें विरोधी भावनाएँ :उफने लगतीं तो वह स्पष्ट बात कहने में तनिक भी नहीं हिचकता था। उसने कसकर मिल मालिक का विरोध किया । घर आकर उसने दैनिक समाचार पत्रों में अपनी शिकायत भेजी लेकिन आज के अखबार मुँह देखी बात कहते हैं और पैसे का साथ देते हैं, अगर वे पूँजो की टीका-टिप्पड़ी करने लग जायें तो चलेगे किस बल बूते पर ! प्रोपेगण्डा के युग में, उन्हें मुँह देखी बात ही कहनी पड़ती है । वे व्यवसाय के पक्ष में रहते हैं और अपने कर्त्तव्य ताख में उठाकर रख देते हैं। हर बड़ा जबर होता है, कहावत है कि जब बड़ा मारता है तो रोने भी नहीं देता। रोहन को सफलता नहीं मिली, अखबारों ने साथ नहीं दिया और धीरे-धीरे बात, गई बीती हो गई।

इसके बाद रोहन ने शहर कांग्रेस कमेटी के दफ्तर का दरवाजा खटखटाया; वहाँ अपनी-अपनी ढपलियाँ बज रही थी और अपने-अपने राग अलापे जा रहे थे। कौन किसकी सुनता है ? यह जहाँगीर का राज्य नहीं, जहाँ इन्साफ का तराजू रखा हो और किले के बाहर जँजीर

लटक रही हो, जिसे फरियादी किसी भी समय खींच सकता हो। शोषण पहले है और पोषण बाद में ? मंजिले मकसूद तक पहुँचने के पहले ही; पैरों में बेड़ियाँ डाल दी जाती हैं। सभी राजा हैं और सभी प्रजा ! जिसके पास पैसा है, वही परमेश्वर है; यह है हमारा प्रजातन्त्र ! जहाँ आदमी, आदमी को—आदमी नहीं, जानवर समझता है। रोहन चिल्ला-चिल्लाकर कहता था कि आदमी के हाथ को कीमत दो सौ रुपये ! मजदूर, और असहाय गाजर-मूली की तरह कुचले जारहे हैं, पैसा हँस रहा है और उसके तख्त पर बैठा इन्सान जुल्म कर रहा है; पाप कमा रहा है और बेईमानी से अपनी झोलियाँ भर रहा है। यथार्थ नगा होकर नाच रहा है, फिर भी समझदार—आँखों पर पट्टी बाँधे हैं।

रोहन ने कितने ही कदम उठाये, किन्तु कहीं पर भी उसकी माँग की सुनवाई नहीं हुई। लेबर आफिस के कितने ही चक्कर काटे, लेबर कमिश्नर को पत्र भेजा और यही नही, लेबर मिनिस्टर के भी पास उसने कपनी विनय पत्रिका भेजी। लेकिन तिनका, तूफान में खो गया। हुआ कुछ नहीं, बल्कि अधिकारी वर्ग रोहन से ईर्ष्या करने लगा।

अब रोटी की समस्या सामने थी। रोहन ने बाप से नहीं पूछा, माँ को नहीं बताया और वह नौकरी की तलाश में शहर की सड़को पर भटकने लगा। सहानुभूति उससे दूर-दूर भागती थी और समवेदना प्रकट करने वाले तो जैसे धरती पर रह ही नही गये थे। जिस युग में योग्यता, सिफारिश का पानी भरती हो; बेकारी और भुखमरी का अटल साम्राज्य हो, वहाँ ठण्डी हवा भी लू बन जाती , और नवोदित पौधे को, झुलसाकर खाक कर देती है।

दिन बीत रहे थे। घर में हीरा और विद्याधर बहुत परेशान थे। रोहन अर्थोपाजन के लिये पूरा-पूरा व्यस्त था, लेकिन सफलता ने उसका बहिष्कार कर रखा था। एक जगह एक मैट्रिक के लड़के को पढ़ाने के लिये ट्यूशन मिली, पारिश्रमिक था, केवल दस रुपये मासिक !

रोहन ने मंजूर कर लिया और ऐसे ही एक दूकान में पार्ट टाइम काम मिला, इन्कम टैक्स और सेल टैक्स का हिसाब बनाने का। वहाँ गिर-गिट वाली नीति थी; क्योंकि जब सरकार डाल-डाल चलती है, तो रियाया पात-पात। इन्कम टैक्स और सेल टैक्स के हिसाब के दिखाने वाले खाते और थे और असली और थे। वह मालिकों के इशारे पर कठपुतली की भाँति नाचता रहा; और अपने में पूरा चौकस तीतर-बटेर जैसी नीति वाला हिसाब चलता रहा।

हीरा बहुत प्रसन्न थीं, और ऐसे ही अपने में फूले नहीं समा रहे थे विद्याधर कि उनका लड़का कुछ कमाने लगा है। हीरा बात-बात में हँस-हँस कर पति से यह कहती कि पत्ता लाद कर हो पत्थर लादा जाता है। अभी शुरूआत है, इम्तिहान खत्म होते ही मेरे रोहन को किसी कॉलेज में बढ़िया नौकरी मिल जायेगी; फिर वह रुपयों से घर भर देगा।

और था भी कुछ ऐसा ही, बाप विद्याधर पत्नी की बात सुनकर निहाल हो जाते और कल्पना के सागर में गोते लगाने लगते कि उनका लड़का कितना होनहार है, और होता भी यही है। बाप जब कमाता है तो लडके ज़िद करके अपना हक समझकर, सहज और नंगनाच करके पिता के द्वारा अपनी जरूरतें पूरी करते हैं, लेकिन जब वे कमाते हैं— तो एक किस्म का माँ-बाप के ऊपर ऐहसान-सा करते हैं। किन्तु रोहन ऐसा लड़का नहीं था; वह बाप को स्वर्ग, माँ को आसमान और अपने को धरती समझता था। वह सपूत था और सपूत हमेशा अद्वितीय होता है।

इस तरह समय की गाड़ी आगे बढ़ रही थी। दिन जा रहे थे और रातें आ रही थीं। उसके बाद ऐसा आभास हो रहा था कि अभी पौ फटेगी, शबनम मोती की भाँति झलक उठेगी और उसके साथ खेलती हुई सुनहली रवि-रश्मियाँ, जब आकर संगम करने लगेंगी, तो धरती पर इन्द्र-धनुष उतर आयेगा और सबेरा मुखरित हो उठेगा।

## ग्यारह

चारुशीला की आयु इस समय लगभग बाईस-तेईस साल की थी। उसकी इच्छा नहीं थी और इसके अतिरिक्त राधामोहन तथा रेवा उसे पूर्णतया विवश भी नहीं कर पाते कि वह ब्याह कर ही ले। चारु के सामने उसका प्रमुख कर्त्तव्य था कि एम. बी. बी. एस. की परिक्षा पास कर लेना और राधामोहन को अपने बाप के अन्तिम शब्द याद थे कि चारु का विवाह तभी होगा, जब वह डाक्टरी पास कर लेगी। लखनऊ गये चारु को यह पाँचवाँ वर्ष था। इस साल उसका फाइनल था। वह दत्तचित्त हो, अपने कार्य में लगन से लगी थी।

चारु जब पहले साल लखनऊ से अपने मामा-मामी के घर आकर रही, तो उसने मातृ और पितृ दोनों सुखों का अनुभव किया और इससे भी बढ़कर उसे हर्ष हुआ तब, जब मामा की लड़की शोभा, जो आयु में आठ-दस साल बड़ी थी, उससे घनिष्टत्व स्थापित करने लगी।

शोभा की एक लड़की थी विभा। उसकी आयु इस समय सात-आठ वर्ष की थी, चारु को उससे बहुत स्नेह था।

लेकिन सुख की बगिया में जहाँ एक ओर शान्ति और सन्तोष की बेलें फैल रही थीं, वहाँ एक काला नाग भी रहता था, नाम था सदाशिव और वह शोभा का पति था।

आचरण भ्रष्ट और मर्यादा से परे लोलुप, कामी, कुटिल प्रवृति वाला सदाशिव, चारु पर अपना जादू डालने लगा। मगर वह भोली थी और शरारतों तथा जघन्यताओं से उसका कभी सम्पर्क नहीं पड़ा था। वह हँसकर उसे जीजा कहती, किन्तु सदाशिव मन ही मन सोचता रहता कि चारु नाम की कली फूल बनने जारही है, क्यों न, उसे डाल से तोड़ लूँ, सूँघ कर मसल डालूँ और फिर फेंक दूँ। इसी आधार पर उसके षड़यन्त्र का चक्रव्यूह बनने लगा और समय आगे बढता गया।

शोभा अपने माँ-बाप की एकलौती लड़की थी। चारु के मामा इन्द्रजीत भूतपूर्व जेलर थे और इस समय उनको पेंशन मिल रही थी। इसके अतिरिक्त घर में खूब समृद्धि थी, जिसकी एक मात्र उत्तराधिकारणी थी शोभा।

शोभा लखनऊ में पैदा हुई और वहीं ब्याही रकाब गंज में उसका पीहर था। नादान महलरोड पर ससुराल। दूरी कोई अधिक नहीं थी; लेकिन फिर भी शोभा आजकल अपनी माँ के घर बहुत कम आती थी। इसका एक कारण था,वह यह कि शोभा को चारु के प्रति सन्देह हो गया था कि वह कुपथ गामिनी है और है चरित्रभृष्टा। इसी बुनियाद को लेकर वह चारु से घृणा करने लगी। हमेशा उसके मन में यह बात समाई रहती कि हो न हो, चारुशीला उसके पति सदाशिव पर डोरे जरूर डाल रही है।

स्थिति का स्पष्टीकरण न होने को था और न हुआ। शोभा के मन में ग्रुत्थियाँ पड़ती रहीं, चारु अनभिज्ञ रही और सदाशिव जागरूक!

सदाशिव की आयु इस समय तीस वर्ष की थी। वे रेलवे डिपार्ट-मेण्ट आफिस में बुकिंग क्लर्क थे। वेतन करीब-करीब दो सौ रुपये था और ऊपर की आमदनी तो इतनी थी कि घर भरा रहता था। रिश्वत लेने के वे सोलहो आने पक्ष में थे। इसीलिये उनकी नीति सदा ढुलमुल रहती, जिसके न सिर था और न पैर। कानून भंग करने का आरोप उस पर इस सीमा तक था, जो जुर्म चोरी करने का होता है, और सरा-सर आँखों में धूल झोंकने का। लेकिन वह सफेद-पोश गुण्डा था और था समाज की आँखों में एक निहायत शरीफ। हराम की कमाई की चर्बी उसकी आँखों पर छाई हुई थी। वह अक्सर सोचा करता कि किस तरह चारु को काबू में लाया जाय, क्योंकि बहुत ही कामी प्रवृत्ति का व्यक्ति था वह। अँधेरा, उजाले को चुनौती दे रहा था और उजाला उससे लड़ रहा था; क्योंकि उसका अभी अस्तित्व था। तीन श्रेणियाँ पनप रही थीं, जिसमें प्रथम था सदाशिव, जो चाहता था कि चारु का चरित्र भ्रष्ट करके वह मनमानी कर सके। शोभा का ख्याल था कि चारु चरित्र-हीना है और वासना की पुतली है। लेकिन था सब एकदम विपरीत! चारु भारतीय सांस्कृतिक नारी थी। पाश्चात्य सभ्यता से उसे दुराव था, वह बड़े को बड़ा और छोटे को छोटा और बराबर की तोल बराबर सम-झती थी।

सृष्टि में होता क्या है? गलत–सही की परिभाषा पाकर बुलन्द हो जाता है और सही खून के आँसुओं रोता है, विवशता उसके मुँह पर मेंहदी लगा देती है। सत्य मारा जाता है और कुचला जाता है, क्योंकि उसका माई-बाप कोई नहीं है।

इस तरह नियति की कीली अपने पूरे वेग के साथ घूम रही थी, पाप फल रहा था, पुण्य रो रहा था। शोभा सन्देह में थी। चारु अन-भिज्ञ थी और सदाशिव अवसर की ताक में था कि कब मौका मिले, मैं चट्टान को मिट्टी में परिणित कर दूँ।

## बारह

अभी चारु का एम० बी० बी० एस० का प्रथम वर्ष ही चल रहा था। इस बीच वह सदाशिव और शोभा से खूब हिल मिल गई। शोभा के अन्तर्मन में चारु के प्रति द्वेष था, कि वह उसके पति को अपनी ओर आकर्षित कर रही है। लेकिन प्रकट में शोभा चारु से हँसकर बोलती और चारु इस तथ्य को नहीं समझ पाती थी।

सदाशिव अब अपनी ससुराल नित्य आया-जाया करता था। चारु उसे जीजा कहती और वह उससे स्नेह प्रदर्शित करते नहीं थकता था। उसकी मीठी-मीठी बातें चारु को भ्रम में डाले रहतीं और सब कुछ मिलाकर वह सोच लेती कि सदाशिव बहुत अच्छा आदमी है।

एक दिन जब दिन ढल रहा था आकाश पर हल्की सी सफेदी सी छाई थी और बसेरे पर जाती हुई चिड़ियाँ कलरव गान कर रही थीं तब सदाशिव अपनी ससुराल आया। चारु उसे देखते ही प्रसन्न हो उठी। उसने जल्दी से कमरे की बत्ती जलाई, क्योंकि

अभी साँझ ही हुई थी लेकिन कमरे ने अँधेरा बटोर लिया था। सदाशिव चारु के निकट आकर एक कुर्सी पर बैठ गया और बैठते ही पूछने लगा—'क्या हो रहा है चारु ? माँ नहीं दिखलाई देती हैं, कहीं गई हैं क्या ?"

चारु खिलखिला कर हँस पड़ी और हँसते-हँसते कहने लगी—यह अच्छी रही जीजाजी, माई तो सामने के ही कमरे में बैठी हैं, आपने देखा नही ? उधर से ही तो आ रहे है ?"

सदाशिव ने अचम्भे का भाव दिखलाया और उसका अन्तर्मन कहने लगा—"मुझे क्या प्रयोजन है तुम्हारी माई से ?" बातचीत का सिलसिला शुरू करना था, इसीलिए यह पूछना पड़ा। वह बोला—"हाँ, बैठी तो हैं मैंने ध्यान नहीं दिया होगा।"

चारु नीचे फर्श पर बैठी जल्दी-जल्दी सलाइयाँ चला रही थी। यह स्वेटर वह विभा के लिए बुन रही थी, रंग हरा था। सदाशिव की दृष्टि कभी चारु के मुँह पर जाकर टिक जाती, कभी हाथों पर केन्द्रित होती और वह उसकी कमलनाल सी उँगलियों को देखता ही रह जाता। एकाएक उसने पूछ दिया—"चारु ! हरा रँग कितना अच्छा होता है ? देखो न तुम्हारे हाथों में आकर कैसा निखर रहा है ? और सच बात तो यह है कि गोरी देह पर काला और हरा कपड़ा खूब फबता है।"

चारु कुछ शरमा गई उसके मस्तिष्क में एक क्षण के लिए यह बात घूम गई कि जीजा जी कैसी बातें कर रहे हैं ? फिर तत्क्षण ही उसे सन्तोष हो गया कि जीजा साली का रिश्ता जो ठहरा। वह धीरे-धीरे कहने लगी—"तारीफ करना तो कोई आपसे सीखे।"

सदाशिव हँस पड़ा और उसी मुद्रा में बोला—"चलो, सिनेमा चल रही हो। आज स्टेशन से सीधा इधर ही चला आया हूँ। तुम्हारी बहन ( शोभा ) तो बहुत ही पुराने विचारों की हैं, सिनेमा के नाम से उन्हें चिढ़ है, और मुझे खेल अकेले देखने में अच्छा नहीं लगता। आज

कोई साथी नहीं था सोचा, कि चलूँ चारु को ही हमराही बनाया जाय।"

चारु शीला बैठी मन्द-मन्द मुस्कराती रही। वह इन्कार नहीं कर पाई और उसका मौन ही सदाशिव के सम्मुख उसकी स्वीकृति बन गया। सदाशिव उठकर खड़ा हो गया और जल्दी का प्रदर्शन करता हुआ बोला—"छः बज गया है, चलो, देर हो जायगी।"

इस पर चारु दौड़ी-दौड़ी अपनी माई के पास गई। स्वीकृति लेते उसे तनिक भी देर नहीं लगी और जब बूढी सास को मालूम हुआ कि सदाशिव आया है तो वह उठकर उसके पास गई और तनिक देर रुक जाने के लिए कुछ जलपान करने का आग्रह करने लगी। लेकिन सदाशिव नही रुका वह चारु के साथ घर से निकल कर सडक पर आ गया।

अगहन का महीना था। दिन छोटा होता था। इसीलिए इस समय लगता था, कि रात हो गई है। सदाशिव ने एक ताँगा रोका; किन्तु चारु ने मना कर दिया। वह बोल उठी—"क्या करना है जीजा जी? सिनेमा हाउस करीब ही तो है।"

परस्पर बातें करते हुए दोनों सिनेमा पहुंच गये। बालकनी का टिकट लेकर जब वे अन्दर प्रविष्ट हुए, उस समय इण्डियन न्यूज की रील चल रही थी। इसके बाद चलचित्र आरम्भ हुआ और चारु का ध्यान—स्क्रीन की ओर व्यस्तता के साथ खिच गया। उसकी आँखें चित्र देख रही थीं और सदाशिव की आँखे उसे देख रही थीं। बीच-बीच में जब कोई रोमेन्टिक दृश्य आ जाता, तो वह चारु के मुख को अपना केन्द्र-बिन्दु बना कर तपाक् से बोल उठता—"मास्टर पीस! कमाल किया है कहानी लिखने वाले ने।"

चारु सुनकर केवल मुस्करा देती और सदाशिव उसकी मुस्कान पर निहाल होकर रह जाता।

इन्टरवल में दोनों ने चाय पी। सदाशिव ने आलू के चिप्स

खरीदे। उसमें से आधे से ज्यादा चारु की ओर बढ़ा दिये। वह फिर मुस्कराई और सदाशिव को ऐसा लगा कि चिड़िया दाना खा रही है। अब वह जाल में जरूर फँसेगी।

और ऐसी धारणा मन में लिये हुये सदाशिव एक युक्ति सोचने लगा, जिससे चारु से देर तक बातें कर सके। खेल समाप्त हो गया और सिनेमा हाल के बाहर आते ही सदाशिव ने एक ताँगा किया और उससे बोला—"हजरत गंज चलेंगे।" और यह कहते-कहते वह गद्दी पर जाकर बैठ गया। चारु सकुचाई सी, नीचे खड़ी थी। उसने कहा—"अच्छा, तो मैं अब चलूँ, जीजाजी।"

"अरे अभी कहाँ, चलो हजरतगंज चल रहे हैं, कॉफी हाउस में चलकर काफी पियेंगे फिर लौटते समय तुम अपने घर चली जाना।" मैं नादान महल रोड तुमको छोडता हुआ चला जाऊँगा।" सदाशिव यह कहकर जल्दी से बोल उठा—"आओ बैठो न। खड़ी क्यों हो!"

चारु धीरे-धीरे अपनी साड़ी का एक छोर ऐंठती हुई-द्विविधा और संकोच भरी वाणी में बोली—"अब चलने दीजिए बहुत देर हो जायेगी कहीं माई नाराज न होने लगें।"

"छोड़ो भी, माई नाराज होने लगेंगीं, कहीं रोज-रोज तो घूमने जाती नहीं हो। मैं साथ होऊँगा, तो वे कुछ नहीं कहेंगी; आओ बैठों, देर न करो।"

सदाशिव के इस तर्क को चारु नहीं खण्डित कर पाई। वह ताँगे पर बैठ गई और घोड़ा दुलकी चाल चलने लगा।"

इस समय ठण्ड शाम की अपेक्षा कुछ अधिक थी। नीले आकाश के सागर में चाँद तैर रहा था, तारे उसके साथी थे और चाँदनी चाँदी की तरह सड़क और मकानों पर चमक रही थी। हवा के छोटे-छोटे झोंके धरती का माथा चूम रहे थे। ताँगे पर चारु और सदाशिव में इधर-उधर की बातें हो रही थीं; लेकिन काफी हाउस में पहुंचते ही

बातचीत का रुख कुछ अजीब बन गया। कैबिन में दोनों बैठे थे। पीतल के रॉड पर नीला पर्दा झूल रहा था। वह बन्द तो था' किन्तु बीच का भाग खुला था जिससे बैरा आता-जाता था। चारु सुरमई जार्जेट की साड़ी में लिपटी बैठी थी। साड़ी कन्धे से ओढ़ी थी, सिर खुला था और लम्बी नागिन सी चोटी कमर तक लटक रही थी। उसके बाएँ हाथ में काले फीते वाली रिस्ट वाच बंधी थी और दाहिने हाथ में प्लास्टिक का इन्द्र धनुषी चूड़ा पड़ा था। नाक नंगी थी, क्योंकि जब इसने मेडीकल कालेज में प्रवेश किया तभी से नाक की कील निकाल कर रख दी थी। हरे रॉड की रोशनी उसकी गोरी देह पर पड़ रही थी और सदाशिव को इस समय वह मानिन्द अप्सरा के प्रतीत हो रही थी। काफी का घूँट गले से नीचे उतारता हुआ सदाशिव चारु से कहने लगा—"चारु! मन होता है कि रोज तुम्हारे साथ घूमने जाया करूँ, मुझे बहुत अच्छा लगता है। तुम्हारा स्वभाव बहुत सरल है, कल फिर काफी हाउस आयेंगे। बोलो आओगी न!"

चारु को सदाशिव की यह बात कुछ अटपटी सी लगी। वह अचकचा कर बोल उठी—"रोज घूमने की मेरी आदत नही है, जीजा जी! कभी-कभी की बात दूसरी है। आप आदमी हैं, आपके लिये नित्य सिनेमा जाना और होटल अटेंड करना चल सकता है; लेकिन स्त्रियों को यह बात शोभा नही देती—जो सुख और शांति नारी को मर्यादा में है, वह उसके बाहर नही।" यह कह कर चारु ने कप होठों से लगा लिया।

सदाशिव धीमी मुस्कान छोड़ते हुए बहुत ही मीठे स्वर में बोला—"चारु! तुम तो पूरी पंडित हो, मैंने तो मन की बात कही थी और तुम यह समझ बैठी कि मै तुम्हें रोज अपने साथ घूमने जाने के लिये विवश कर रहा हूँ, कितनी सरल हो तुम! इसीलिये तो मैं तुम्हारे सम्पर्क में एक बहुत बड़े सुख का अनुभव करता हूँ।"

चारु अब बुरी तरह से चौंक उठी थी। उसे जमीन, आसमान

अब एक नजर आने लगा। वह मुख पर क्रोध का भाव लाकर बोली— "अच्छा, अब उठिये जीजा जी ! देर हो रही है, माईं बिगड़ेंगीं।" यह कह कर उसने जल्दी-जल्दी काफी के घूँट उतार लिये मानो वह बिल्कुल गरम नहीं थी। वह तपास से उठकर खड़ी हुई और जाने का आयोजन कर उलझन भरे व्यस्त स्वर में सदादिव की ओर उन्मुख हो कहने लगी—"आपका प्याला तो बहुत देर से खाली रखा है। चलिये, उठिये न !"

किन्तु उठने की अपेक्षा सदाशिव बैठे ही बैठे हँस कर कहने लगे— "बैठो भी चारु ! यहाँ पर जो भी आता है, वह घण्टे दो घण्टे के पहले नहीं उठता, मैंने तुम्हे कुछ भी तो नहीं कहा; फिर यह खपगी कैसी ? और एक तो मै तुमसे हँसी-दिल्लगी करता ही नही और अगर करूँ भी तो तुम इन्कार नही कर पाओगी चारु ! जानती नहीं कितना प्यारा रिश्ता है हम दोनों का, जीजा – साली का !"

"जीजाजी ! आप वैठिये, मै जाती हूँ।" यह कहती हुई नागिन सी फुसकारती चारु वहाँ से चली गई और सदाशिव उसे बुलाता ही रह गया।

चारु बाहर आते ही एक रिक्शे पर बैठ गई। हजरतगज से रकाब गंज तक पर्याप्त व्यवधान था। चारु की समस्त शिरायें धौकनी की तरह चल रही थीं, रोष में उसका सारा बदन गरम हो उठा था। शाल हाथ ही में पकड़े वह बैठी थी। उसका रोम-रोम स्फुरण कर रहा था। फिर भला जाडा किसे लगता, जो शाल ओढ़ने की जरूरत पड़ती।

चारु की आँखें जल रही थी और वह सोच रही थी कि सदाशिव के विचार अच्छे नहीं हैं, मुझे वह आदमी पतित मालूम पड़ता है। उसकी आँखों में वासना की शराब भरी है, जिससे वह मदान्ध हो अपना लोक-परलोक सब कुछ भूल जाता है। एक क्वाँरी जवान लड़की चाहे वह डि० लिट् ही क्यों न हो, यदि किसी पुरुष के साथ इधर-उधर

डोलती फिरे तो लोग क्या कहेंगे ? यही कि यह लड़की आवारा है, बदचलन है। मैं ऐसी संज्ञा से दूर ही दूर रहना चाहती हूँ। आदमी की नीयत किस समय खराब हो जायगी, कोई नहीं जानता। इस सदाशिव को मैं देवता समझती थी और उसकी यह हरकत ! कहता था कि जी चाहता है कि रोज तुम्हारे साथ घूमने जाया करूँ। भला माईं सुनेंगी तो क्या कहेंगी। कान पकड़ती हूँ कि भविष्य में इसका साथ नहीं करूँगी ! बदनाम आदमी से दुनियाँ दूर भागती है और बद को कोई एकदम ही नही भाँप जाता है, मुझे धोखा हुआ। चारुशीला की विचार-धारा चल रही थी, घर निकट आ रहा था और सड़क के किनारे फुटपाथ पर खड़ा, ठण्ड से काँप रहा बुड्ढा, यह कहकर माँग रहा था—"है कोई अल्ला का प्यारा, दे खुदा के नाम पर ! चारु यह सुनकर एक क्षण के लिये स्थिर हुई, रिक्शे वाले को आदेश मिला और बूढ़े के कटोरे में एक इकन्नी जाकर झनझना उठी।

फिर विचार चले और रिक्शा कोई पचास कदम ही आगे गया होगा कि चारु ने देखा घर आगया है और गली की बत्ती, उसकी प्रतीक्षा में, अब तक जल रही है।

## तेरह

उस दिन से चारु सदाशिव से बहुत सतर्क रहने लगी थी। वह जब आता तो शिष्टाचार का तो पूरा-पूरा निर्वाह करती, लेकिन व्यक्तिगत बातों के लिए उसे अवसर नहीं देती, जो वह अपने मन की स्थिति उसके सामने स्पष्ट कर पाता। वह समझ गया था; कि कदम उठाते ही मंजिल चौंक गई शायद यह पूरी नहीं होगी और यदि हुई, तो कयामत वाले ही दिन होगी। किन्तु इतना सब होने पर भी सदाशिव ने अपने आवागमन में कमी नहीं की थी। यद्यपि वह ससुराल रोज नहीं जा पाता मगर दूसरे-तीसरे दिन जाता रहता था।

चारु शोभा से हँसती-बोलती कभी-कभी उसके घर भी जाती; लेकिन ऐसे मौके पर जब सदाशिव घर पर नहीं होता था। शोभा चारु से मन ही मन कुढ़ती रहती थी; पर प्रगट में सगी बहन जैसा व्यवहार करती थी।

इस भाँति दिन चल रहे थे और चारु की डाक्टरी की पढ़ाई का दूसरा वर्ष भी समाप्त प्रायः हो रहा था।

फागुन का महीना था। उस दिन चारु की छुट्टी थी। घर में बैठे-बैठे मन नहीं लग रहा था। परसों इतवार था और कल शाम को वह कानपुर जाना चाहती थी। सहसा उसे स्मरण हो आया कि विभा कहती थी मौसी अबकी बार मैं भी तुम्हारे साथ कानपुर चलूँगी, चलूँ उससे कह आऊँ कि कल के लिए तैयार रहे यह सोच चारु शोभा के घर चल दी।

वहाँ बाहर के कमरे में आराम कुर्सी के हत्थों पर हाथ रखे सदाशिव बैठा था। नौकर स्टोव पर चाय बना रहा था। विभा और शोभा दोनों पड़ोस में किसी के यहाँ गई थीं। चारु को देखते ही सदाशिव प्रसन्नता से खिल उठा और बोला—"आओ चारु ! मैं बड़ा खुशकिस्मत हूँ जो तुम स्वयं ही दर्शन देने चली आईं।"

शिष्टाचारवश सदाशिव की सोफा सेट की ओर इंगित की हुई उँगली उठी की उठी रह गई। और चारु बैठी नहीं। वह आगे बढ़कर नौकर से पूछने लगी—"क्यों रामू ! तुम्हारी मालकिन कहाँ है ?"

उत्तर में रामू तत्क्षण ही बोल उठा—"पड़ोस में मेहरोत्रा बाबू के घर गई हैं, अभी-अभी गई हैं, जाऊँ बुला लाऊँ ?"

चारु कुछ कहे इसके पूर्व ही सदाशिव रामू से डांटकर कहने लगा—"पहले मैं जो कहता हूँ वह कर !" फिर उसका मुँह चारु की ओर घूमा और कहने लगा—

"अरे मैं भी तो अभी-अभी आकर बैठा हूँ। विभा और उसकी माँ अभी थोड़ी देर हुई तब तो गई ही हैं। इसीलिए मैंने उन्हें नहीं बुलाया और आज दफ्तर के काम से मुझे इलाहबाद जाना था। यह प्रोग्राम कई दिन से था लेकिन मेरे बजाय दूसरा आदमी भेज दिया गया। शोभा जानती होगी कि मैं इलाहबाद गया हूँ। मैं तो अचानक ही आ टपका।"

सदाशिव अब कुर्सी से खड़ा हुआ और रामू के पास जाकर कहने लगा—"जा गोल्डन बेकरी से एक ताजी डबल रोटी ले आ।

उसके बाद जब तक हम लोग चाय पियेंगे तुम जाकर मालकिन को बुला लाना।" बात समाप्त करने के साथ सदाशिव ने एक रुपये का नोट रामू को थमा दिया और वह बारह तेरह साल का लड़का उछलता-कूदता तेजी के साथ कमरे से बाहर निकल गया।

गोल्डन बेकरी दूर थी और उसके लिए रामू को नादान महल रोड से नेहरू क्राम तक जाना था। सदाशिव चारु के मुख को लक्ष्य कर आग्रहपूर्वक कहने लगा—"बैठो चारु आई हो जब से खड़ी हो।"

चारु सदाशिव के सामने पड़ी एक कुर्सी पर बैठ गई और सदाशिव मन्द मुस्कान छोड़ता हुआ बोला—"तुम मुझसे खिंची-खिंची क्यों रहती हो चारु। लगता है तुमको मुझसे दुराव है।"

चारु एकदम उठकर खड़ी हो गई। वह क्रोध से जल भुन उठी और खिसियाकर कहने लगी—"आपका दिमाग तो नहीं खराब है, जीजा जी! कैसी बेतुकी बातें करते हैं? दुराव और लगाव की बीमारी आपको होगी मुझे नहीं। मैं जाती हूँ, शोभा दीदी से फिर मिल लूँगी।"

चारु थोड़ा ही आगे बढ़ पाई थी कि सदाशिव आगे आ उसका रास्ता रोक कर खड़ा हो गया और भद्दी हँसी हँसकर बोला—"वाह चारु देवी वाह! आप भी कमाल करती हैं। घर आया मेहमान बिना आदर और सत्कार किये चला जाय, यह कैसे हो सकता है? चलो बैठो। सचमुच तुम, गुस्से में बहुत अच्छी लगती हो।"

चारु बिजली की तरह तड़पकर बोली—"रास्ता छोड़ो जाने दो मुझे वर्ना...... ।"

"वर्ना तुम बहुत बुरी तरह पेश आओगी, मेरे साथ। चलो बैठो, चाय पीलो उसके बाद चाहे जितना गुस्सा कर लेना मुझे मंजूर है।"

सदाशिव की इस बात ने आग में घी डाल दिया। चारु शोले की तरह भड़क उठी। वह कतराकर बाहर जाने लगी; लेकिन तभी उस

नराधम ने कस कर उसके दोनों बाजू पकड़ लिए और पीछे कुर्सी की ओर ढकेलता हुआ ले चला।

चारु के क्रोध का पारावार न रहा। वह सिहनी सी उसके ऊपर कूद पड़ी और मार थप्पड़ों उसका मुँह लाल कर दिया। सदाशिव भी बुरी तरह खिसिया गया था।

बाहर दरवाजे पर प्लास्टिक का रंग-बिरंगा पर्दा पड़ा था। सदाशिव अमानुषिक वृत्ति पर उतर आया था। वह चाहता था कि चारु का सतीत्व लूट ले। उसके माथे में कलंक का टीका लगा दे। इसीलिए उस अबला के सम्मुख अपनी ताकत आजमाने लगा। क्रोध में आकर उसने चारु के मुँह पर घूँसा मारा। वह बिलबिला उठी और नाक पकड़ कर रह गई, तब तक सदाशिव दरवाजे के पास आया और चाहा कि किवाड़ें बन्द कर ले; लेकिन ठीक उसी समय पर्दा उठा और शोभा ने कमरे में प्रवेश किया।

रामू अभी नहीं लौटा था, और विभा मेहरोत्रा साहब के बच्चों के साथ खेलती ही रह गई थी। शोभा ने घर में आकर देखा कि चारु नाक में रूमाल लगाये बैठी है और सफेद रूमाल काफी मात्रा में खून से भीग गया है। दूसरी ओर उसने देखा सदाशिव के बाल अस्त व्यस्त हैं, मुँह तमतमाया हुआ है और उस पर उँगलियों के निशान हैं, वह इस रहस्य मय दृश्य को देखकर सदाशिव से पूछने लगी —' यह सब क्या है ? तुम्हारी बुशशर्ट कैसे फट गई, चारु कब आई, और इसकी नाक से खून क्यों बह रहा है ?"

सदाशिव ओखली के अन्दर होता हुआ भी चोट से बाहर निकल गया। वह अवसर से लाभ उठाता हुआ बोला— 'मैं क्या बताऊँ, पूछ लो न, अपनी बहन जी से ? मेरा प्रोग्राम बदल गया इलाहाबाद दूसरा आदमी भेज दिया गया था। अभी आकर बैठा ही था, कि ये आगईं। पहले तो बैठी रहीं फिर जब मैंने रामू को डबल रोटी लेने भेजा तो इसी

तुम्हारी बहन चारु ने तुम्हारा हक छीनने की कोशिश की। मैंने······।"

"शट अप ! तुम्हें शर्म नहीं आती, झूठ बोलते हुये, अपना पाप मुझ पर थोपते हो। तनिक भगवान से भी डरो और यह मत भूलो कि दुनियां में रह कर अगर इन्सान से नहीं डरते हो कम से कम भगवान से तो डरो। जबरदस्ती मैंने की थी या तुमने ! मैंने उसी दिन आपकी हरकत कॉफी हाउस में ही देख ली थी; लेकिन इतना नही जानती थी, कि आप जरूरत से ज्यादा नीच हैं ?"

चारु हाँफती हुई क्रोधावेश में कहती जा रही थी। नाक से खून आना बन्द हो गया था एक आध बूंद अगर आ जाता तो उसकी साड़ी या फर्श पर चू पड़ता।

सदाशिव अपनी पोल खुलती देख तत्क्षरा तेजी से चारु को डाँटकर बोला—"चारु ! जमीन से बातें करो जमीन से तुम आसमान पर चढ़ी जा रही हो। मेरी आदत पराई पत्तलें चाटने की नही, चलो जाने दो, अगर गलती कर ही बैठी हो तो कोई बात नही, आगे के लिए······।"

"क्या कहा कमीने नीच ! गलती मुझसे हो गई है। मैं खून पी लूंगी तेरा ! अगर तूने मुझे तनिक भी बदनाम करने की कोशिश की !" यह कह कर आक्रोश से भरी हुई चारु सदाशिव की ओर तेजी से झपटी। वह दाँत पीस रही थी और क्रोध से उसकी मुट्ठियाँ भिच रही थी। परिस्थिति बिगड़ते देख तत्क्षरा शोभा बीच में आ गई और चारु को अपने साथ सोफा सेट पर खींच ले गई। और अपने साथ बैठा कर घबड़ाये हुये स्वर में पूछने लगी—"क्या बात है चारु ! तुम लोग आपस में लड़ कैसे पड़े। मुझे बताओ, मैं भी तो जानूं कि बात कैसे आगे बढ़ गई।"

चारु कुछ जवाब दे इसके पूर्व ही सदाशिव वहाँ आकर बोल उठा—"मै बताता हूँ।"

"ओह, शट अाप !" कहकर परेशानी का भाव जताती हुई, चारु ने अपने दोनों हाथ सिर पर रख लिये।

तब शोभा दुनियांदारी का ख्याल कर पति से कहने लगी— 'तुम चुप भी रहो ! बीच में बोलने की क्या जरूरत ? चारु को अपनी बात कहने दो।"

इस पर भी सदाशिव के मुँह से आखिर निकल ही गया— "लेकिन······।"

"लेकिन-वेकिन कुछ नहीं, मैं तुम्हारे हाथ जोड़ती हूँ, अब चुप रहो।" शोभा की यह बात सदाशिव को माननी पड़ी। और चारु कहने लगी— 'दीदी ! जीजा जी ने आज मेरे साथ जबरदस्ती की है, वह मैं तुमसे कैसे बयान करूँ। लाज बचाने के लिए औरत अपनी जान दे देती है और दूसरे की ले लेती है। वह तो कहो मैंने तुम्हारा बहुत ख्याल किया दीदी, नहीं तो······।"

सदाशिव अब उठकर टहलने लगा था। अपनी किरकिरी होते देख वह दोनों हाथ मींजता हुआ कर्कश स्वर में बोला—"चारु ! अपनी जबान पर लगाम रखो। मैं······।"

शोभा उठकर खड़ी हो गई और यह कहती हुई सदाशिव के पास पहुँच गई—"तुम जाते क्यों नहीं ? मैं कहती हूँ जाओ।"

सदाशिव को बहाना मिल गया। वह बोला—कहती क्या हो, मैं जा रहा हूँ. लंच टाइम था, काम कोई ज्यादा नहीं था इसीलिए घर आ गया था मुझे काफी देर हो गई है रामू अभी तक डबल रोटी लेकर नही लौटा। पता नहीं कहाँ रह गया ?"

सदाशिव की बात अभी समाप्त हुई ही थी कि कमरे में रामू ने पैर रखा। शोभा उससे कहने लगी—"जाओ बाबू जी को टोस्ट सेक दो बड़ी देर लगा दी, उन्हें दफ्तर जाने को देर हो रही है।" यह कह कर पति की ओर देखती हुई चारु के पास चली आई और सदाशिव बेसिन

पर जा मुँह-हाथ धोने लगा। केतली का पानी भाप उगल रहा था और उस पर रखा हुआ ढक्कन कुछ ढीला होने के कारण भाप से टकरा कर बज रहा था।

× × ×

चाय पीकर सदाशिव चला गया। उसके बाद समझा-बुझाकर शोभा ने धीरे से चारु को शान्त किया। दोनों ने साथ-साथ चाय पी और बाहर बैठक में आकर बैठ गईं। घर में विभा आगई थी। वह रामू से किसी चीज के लिए झगड़ रही थी दोपहर ढलने जारही थी और तीसरा पहर आता देख, वायु में कुछ गुलाबी सरदी समाने लगी थी।

शोभा पूछ रही थी—' चारु अब बताओ कि माजरा क्या था ?"

इस पर चारु ठुड्डी पर हाथ रख कर बैठ गई और एक-एक करके अतीत की सब घटनाओं के साथ आज की भी घटना सविस्तार से वर्णन किया। शोभा यह सब सुनकर चौंक उठी और उस जड़वत मुद्रा में ही उसके मुँह से निकल गया—"तुम्हें वे काफी हाउस भी ले गये थे ? यह बात मुझे आज ही मालूम हुई। क्या बताऊं चारु, कि उनकी तबियत में वह पतलापन कैसे आगया है और क्यों नहीं जाता है ? छोड़ो, बहन, मैं तो सोचती हूँ कि आज तुम यहीं रह जाओ। रामू को भेज कर माँ को खबर करवा दूंगी कि चारु सबेरे आयेगी।"

यह सुनते ही चारु व्यस्त गले से बोल उठी—"नहीं दीदी नहीं, इसकी क्या जरूरत है ?, मैं यहाँ नहीं रहूँगीं क्योंकि मेरी आँखों में खून सवार है; अगर कोई अनर्थ हो गया तो तुम मुझे ही दोष दोगी।"

चारु की बातें सुनकर शोभा का मुँह छोटा सा रह गया। एक क्षण में ही उसने पता नहीं कितने चक्कर जमीन और आसमान के लगा डाले कि घर जाकर चारु माँ से कहेगी, माँ पिताजी को बतायेगी, यह बहुत बड़ी बदनामी होगी मेरे घर की। चारु को समझा लेने में ही गति है

और अगर वह मेरी बात न मानी; तब तो बात कानपुर भी पहुँचेगी; क्या कहेंगे राधामोहन अपने मन में ! यह सब सोचती-विचारती हुई वह नरम स्वर में करुण भाव बनाकर बोली—"चारु ! तुम्हें मेरी शपथ है, माँ को यह बात मत बतलाना, इसमें तुम्हारी भी बदनामी है और तुमसे पहले मेरी। इसीलिये कहती थी कि आज रुक जातीं। चोट लगने से तुम्हारी नाक में काफी सूजन आगई है, मैं सेंक करके इसे ठीक कर लूँगी, क्या हर्ज है, सबेरे चली जाना।

लेकिन चारु नहीं मानी, वह कहने लगी—"दीदी ! मुझे कल कानपुर जाना है, विभा ने साथ चलने को कहा था। आज छुट्टी थी, यही मैं कहने आई थी कि कल शाम को वह मुझे घर पर तैयार मिले। यह नही जानती थी कि यहाँ यह काण्ड हो जायेगा। अच्छा, अब चलती हूँ।" कह कर चारु उठ खड़ी हुई। शोभा ने उसे बहुत बैठाना चाहा; मगर वह नहीं बैठी। चलते-चलते शोभा उससे कहने लगी—"चारु, मेरी बात मानो कल कानपुर न जाओ, अगले हफ्ते चली जाना। मैं बहुत डरती हूँ बदनामी से। तभी तो कहती हूँ कि जो कुछ हुआ है, उस पर पर्दा डालने की कोशिश करो, जिससे हम सब बदनामी के मुँह में न आ सकें।"

किन्तु चारु को यह बात जैसे एक निजी स्वार्थपरता-सी मालूम हुई। उसने कुछ भी जवाब नहीं दिया और मन ही मन यह सोचती हुई वहाँ से चली गई कि पति चाहे जितना पतित हो; किन्तु पत्नी हमेशा उसके पक्ष में रहती है, कभी विमुख नहीं होती। अपनी बदनामी को ढँकने के लिये शोभा ने मुझे जो व्यक्तिगत बदनामी का भय दिखाया है, उसके कहने का ढंग कितना निराला था।

× × ×

इसके बाद बहुत बड़ा परिवर्तन आया। चारु ने अपने मामा-माई से कुछ नहीं कहा। वह उसी दिन शाम को कानपुर चली गई और

रेवा के सामने जाकर सारी ग्राप-बीती रो-रो कर सुनाई ग्रौर यह भी कहा कि कुछ भी हो भाभी, मैं ग्रब मामा के घर में नहीं रहूँगी। भइया से कहकर मेरा ग्रलग रहने का इन्तिजाम करवा दो।

रेवा ग्रौर राधामोहन दोनों ने परिस्थिति को भलीभाँति समझ लिया। रिश्तेदारी का मामला था, ग्रतः वे चुप कर गये। केवल इतना कर दिया गया कि राधामोहन ने ग्रपने मामा इन्द्रजीत को इस तरह समझा दिया कि यहाँ से कॉलेज बहुत दूर पड़ता है, इसलिये मैंने वहीं होस्टल में ही, चारु के रहने का प्रबन्ध कर दिया है। यद्यपि इन्द्रजीत ने सपत्नीक इसका विरोध किया, लेकिन राधामोहन ने ग्रपनी ही बात रखी। तब से यह क्रम चलता था कि चारु कभी-कभी ग्रपने मामा-माई से मिलने ग्रा जाती; लेकिन वह फिर शोभा के घर कभी नहीं गई। कभी-कभी विभा उसे ग्रपनी नानी के पास मिल जाती तो वह उसे प्यार करती, दुलारती थी। बचपन से ही वह विभा को चाहती थी ग्रौर फिर बच्चों से बड़ों की वैमनस्यता भी तो कोई ग्रर्थ नहीं रखती है।

## चौदह

रामकुमार और सुखरानी का सोचना सर्वथा उपयुक्त ही निकला। गाँव भर में चखचख मच गई थी कि देवकुमार की बहू शहर जाकर बिल्कुल आजाद हो गई है। अरे, कला तो कहती थी कि वह सड़कों पर मुँह खोले घूमती है। राम-राम, अपने गाँव, घर में अङ्गरेजियत नहीं चल सकती। कलियुग की बलिहारी है कि देशी मुर्गी विलायती बोली बोलने लगी। आदि-आदि ऐसी बातें अक्सर सुखरानी के कान में पड़तीं, कोई उसे सामने नहीं कहता था; लेकिन पीठ पीछे जब मुहल्ले की स्त्रियों की आपस में चठिया जुड़ती तो वे खूब कस कर रामकुमार के घर की खिल्ली उड़ाती थीं।

पुरुष वर्ग की जो स्थिति थी, जिसे रामकुमार बहुत अच्छी तरह से जानते थे। मुखिया की चौपार में या गंगू पहलवान के अखाड़े पर गाँव के निठल्लू लोगों की मजलिस बैठती, तो चर्चा यह चलती थी कि देखो, देवकुमार शहर जाते ही क्रिस्तानों के रंग-ढंग पर चलने लगा है। अपने देश की रीति कोई बाहर जाकर बदल देता है क्या ? औरत से परदा

कराता; भला इसका क्या असर पड़ेगा हमारी बहू-बेटियों पर । कान खोलकर सुन लो भइया ! औरत की नकल औरत बहुत जल्द उतारती हैं । अच्छा है, दोनों मियाँ-बीबी शहर में ही रहें; हमारे गाँव में न आयें । बेचारा रामकुमार आदमी नहीं, देवता है ! और उसकी घरवाली एक भोली गाय जैसी । लड़का पढ़-लिख क्या गया, अपने देश और कुल की मरयाद ही भूल गया ।

इस भाँति दम्पत्ति ऐसी बातों को सुनते-सुनते थक गये थे और अब उन्होंने कानों में मानो ठेठी लगा ली थी कि सुनी हुई बात भी उनके सम्मुख अनसुनी बनकर रह जाती ।

नव-रात्रो के आरम्भ होते ही प्रतिपदा वाले दिन देवकुमार, शरबती को अपने साथ मोतीपुर ले आया । सुखरानी बहुत प्रसन्न हुई । रामकुमार बेटे और पतोहू को देखकर हर्ष से फूले नहीं समाये । वह दिन और रात दोनों घुल-मिल कर बीत गये । सबेरे अचानक सुखरानी ने शरबती से प्रश्न कर दिया, वह बोली—"बहू ! कला को तो तुम जानती ही हो कि कैसी दूती है । कानपुर से जब वह आई तो मुझसे कहने लगी कि चाची तुम्हारी बहू सड़क पर मुँह खोलकर चलती है और जब देवकुमार बैंक चला जाता है तो पड़ोस की औरतों में जाकर बैठती है । क्या ऐसा किसी दिन उसने देखा था ? बहुत ही पक्की कुटनी है वह ! बोलो बहू, क्या यह सच है ! यहाँ तो सारे गाँव में हंगामा मचा हुआ है ।"

शरबती एक टक सास की ओर देख रही थी । वह सत्य से मुँह नहीं मोड़ सकी, अपराधी की भाँति पराजित स्वर में बोली—"हाँ माँ ! कुछ सच है और कुछ झूठ । एक दिन कला मेरे घर गई थी । उस दिन सावन का तीसरा सोमवार था । मैं उपवास रखते हुये भी गङ्गा जी नहीं जा पाई; क्योंकि उनका बंक खुला था और रसोई बख्त पर तैयार होनी ही थी । जानती तो हो कि राधामोहन, उनकी बहन और

उनके घर से सभी मेरे यहाँ आती जाती हैं और उनसे राधामोहन की दाँत-काटी रोटी है सो उस दिन दोपहर को रेवा दीदी आईं और मुझको जबरदस्ती अपने साथ गंगा जी लिवा ले गईं। उसी बीच कला गई थी। इसके अलावा और जो भी कुछ तुमने सुना है वह बिना बयारी का जूना है। मैं नहीं जानती थी, कि कला दिदिया ऐसी जहर बुझाई निकलेगी खूब खूबी कमाई है उन्होंने बात का बतंगड़ बनाकर। लेकिन माँ इन फिजूल की बातों से तुम अपना मन क्यों खराब करती हो ? ये बरसाती मैढक तो टर्र-टर्र करते ही रहते हैं। चोर चोरी से जाता है; मगर हेरा-फेरी से नहीं चूकता। वही हाल कला का है, बैठा बनिया क्या करे यह सोच वह अपने बाँट ही लडाने लगता है।"

सुखरानी आंगन में बैठी रुई की बातियाँ बना रही थी कल घर में उसने देवी जी की स्थापना की थी। वह कुशासन पर बैठी थी और शरबती उसके निकट टाट पर बैठी थाली में रखे दाल बीन रही थी। देवकुमार प्रातः टहलने गया था। दिन चढ रहा था; किन्तु वह अभी तक नही लौट पाया था। रामकुमार बाहर चबूतरे पर बैठे धरमू तेली और मुलई काछी का समझौता करा रहे थे। दोनों में खेत के पीछे कुछ तनातनी हो गई थी। सुखरानी ने शरबती की विस्तार भरी बातें सुनकर सन्तोष की साँस ली और उसके मुख पर दृष्टि टिका धीरे-धीरे कहने लगी—"बहू, गाँव में यही तो चलन है कि कोई किसी को फलते-फूलते नहीं देख सकता ! कला को क्या, उसे सारा गाँव जानता है कि वह हवा में गाँठें बाँधती है।" मुझे उसकी बात पर यकीन नही हुआ, सुनकर हाँ, हां कर दी। वह तो ठहरी मुँह फट इसीलिए अगर दुनियादारी न करती तो क्या लड़ने लगती ?"

दोनों सास बहू देर तक बातों में लगी रहीं उसके बाद गृह कार्य में संलग्न हो गईं। इस बीच भी उनकी बातों का क्रम कभी-कभी चल जाता था।

देवकुमार के कानों में भी यह बात पड़ी कि गाँव भर में निन्दा हो रही है कि देवकुमार की बहू शहर में परदा नहीं करती। पहले उसे रोष आया। वह मन ही मन शरबती पर बहुत खीझा फिर कुछ खिन्न-सा दिखाई देने लगा। वह चार दिन की छुट्टी लेकर गाँव में रहने आया था कि दूसरे दिन दोपहर को ही शहर जाने की तैयारी कर दी। माँ-बाप ने पूछा तो यह कह दिया कि एक जरूरी काम है, जाना जरूर पड़ेगा और शरबती को उसने कुछ भी पूछने का मौका ही नहीं दिया। वह बाहर ही बाहर चला गया उससे मिला भी नही।

× × ×

यद्यपि रेत के महल का स्थायित्व नहीं होता लेकिन फिर भी वह कुछ अस्तित्व तो रखता ही है। बात झूँठी हो या सही; लेकिन वह चर्चा का दामन- जरूर पकड़ती है चार्चा चलती है जिससे भलाई और बुराई पनपती है और चतुर सुजान लोग भी परछिद्रान्वेषण में व्यस्त हो जाते हैं। कला ने रस्सी का साँप बनाकर सारे गाँव में मदारी का खेल दिखाया था जिसकी चर्चा अब तक इधर-उधर चल रही थी। शर-बती को पहले बहुत क्रोध आया कि कला, जब उसके घर आयेगी, तो वह उससे पूछेगी कि कला दिदिया तुमने ऐसा क्यों किया? इस भाँति उससे जवाब लेकर ही रहेगी।

लेकिन जब देवकुमार चला गया तब शरबती की वह स्थिति हो गई जो उस पत्ते की होती है जो एकदम पीला पड़ गया होता है और जिसे यह भय उत्पन्न हो जाता है कि एक छोटा सा झोंका भी उसे डाल से अलग कर सकता है। वह सारे दिन मुरझाई सी पड़ी रही; किन्तु सास पर यह बात विदित नही होने दी कि देवकुमार उससे रूँठ कर चला गया है। अभी छुट्टी के दो दिन बाकी थे और कोई भी जरूरी काम नहीं था। यह तो सिर्फ एक बहाना था।

धीरे-धीरे दिन बीतने लगे। नवरात्रि समाप्त हो गये और शरद

पूनो वाले दिन कला सुखरानी के घर आई, उस समय दिन ढलने जा रहा था। सुखरानी तुलसी की आरती की तैयारी में व्यस्त थी और शरबती भी चुपचाप बैठी क्रिरोसिया चला रही थी। वह एक तकिया का गिलाफ बुन रही थी। कला उसके पास आकर बैठ गई और कहने लगी—"बहू आज शरद पूनो है मैंने अपने घर में रात को गाने बजाने का इन्तजाम किया है रात को भोग लगने के वक्त चाची के साथ तुम भी आजाना, मैं चाची से कहे देती हूँ।" यह कह कर कला सुखरानी की ओर मुखातिब होकर कहने लगी—"चाची पहले ! पहले से तो तुम आ नहीं पाओगी भोग के ही वक्त चली आना और बहू को भी लिवा लाना, भूलना मत।"

सुखरानी ने हाँ द्योतक सिर हिला दिया और कला व्यस्त मुद्रा बनाती हुई वहाँ से चल दी, तब तक शरबती ने उसे रोक लिया। वह बोली—"अरे, दिदिया ! ऐसी क्या जल्दी है, थोड़ी देर बैठ लो न !" यह कह कर उसने जाती हुई कला की धोती पकड़ ली।

कला वहीं पर खड़ी होकर बोली—"जाने दो बहू, खीर के लिये अभी मेवा काटनी है और मुए नत्था अहीर के घर भी जाना है, एक पसेरी गाय के दूध के लिये कहा था, सबेरे उसने अढ़इया भर ही दिया—देखो अब कितना देता है।" बात समाप्त होने के साथ कला ने आगे बढने की कोशिश की लेकिन शरबती ने आग्रह किया। वह अनुरोध भरे स्वर में बोली—"अरे, बैठो भी दिदिया ! घर-गृहस्थी में एक न एक धन्धे तो लगे ही रहते हैं।"

विवश कला बैठ गई। तब शरबती कहने लगी—"दिदिया ! आज तो बहुत थक गई होगी, कहाँ-कहाँ हो आई ?"

कला विचित्र प्रकार का मुँह बनाकर गर्व भरी ऐंठ में कहने लगी—अरे और कहाँ जाना है बहू, अपने बम्हनाने में सबसे कह दिया है और क्या शूद्र-साखों के घर जाती। सच में बहुत थक गई हूँ, अरे बड़ी देर लग गई लोकई महाराज के यहाँ, लड़का शहर में, मील में दिन

रात पिसता है, और यहाँ बहू अपने ससुर का पेट लिये बैठी है। आज वह आया तो पोल खुली। अपनी दुलहिन को तो उसने ऐसा मारा कि उसकी सारी देह काली कर दी। अभी-अभी धनकुन आई थी, शायद पेट गिर जायगा, और इसके पहले बाप-बेटे में खूब जूती-लात चली थी।"

सुखरानी भी इन दोनों के मध्य आकर बैठ गई जिस समय वह लोकई महराज के घर का हाल सुन कर क्षोभ प्रगट कर रही थी तभी शरवती झूँठी दुनियादारी करती हुई कहने लगी—"राम-राम दिदिया ! भला गांव वाले सुनेगे तो क्या कहेगे ? भली सुनाई दिदिया ! बेचारी बहू की छीछालेदर हो रही है।"

काहे की छीछलेदर वह राँड़ है ही हरजाई, परसाल पड़ोस के गरीदे तमोली के साथ पकड़ी गई थी उसकी नाक है ही कहाँ, जो बदनाम होगी ? मुझे तो बेचारी धनकुन ने बताया अभी कोई नहीं जानता है, बात झँपी-मुँदी है।"

कला की यह बात सुनकर शरबती लम्बे लहजे में कह गई—"बात फैलते कितनी देर लगती है दिदिया। एक तुम नहीं कहोगी तो क्या कोई जानेगा नहीं ? मुझे ही देखो जब देखो तब औरतों में खुन-खुस होती रहती है कि मै शहर में परदा नही करती हूँ भला तुम्ही बताओ दिदिया, यह बात भी क्या तुम और हम कहने गई थीं गाँव में ? ऐसे ही समझ लो।"

कला शरबती के इस मीठे व्यंग को न समझ सकी। वह गद्‌गद् होकर बोली—"हाँ बहू, बदनामी के पाँव नही होते लेकिन पर जरूर जरूर होते हैं वह हवा में उड़ती है, अच्छा अब चलूँ, बहुत देर होरही है दिया बाती की बेला आ गई है।" यह कहने के साथ कला उठ खड़ी हुई और शरबती के उत्तर की प्रतिक्षा किये बिना ही, वहाँ से चल दी।

रात को सुखरानी ने पति को बतालाया कि आज बहू ने कला को बातों ही बातों में घुमा-फिरा कर सब-कुछ कह दिया; मगर वह कुछ

समझी ही नहीं। आई थी एक नया सिगूफा लेकर कि लीकई महाराज के घर में आज ऐसा-ऐसा हो गया।

रामकुमार भी बाहर लोगों में लोकई के घर का हाल सुन चुके थे वे तत्क्षण ही बोल उठे—"बड़ी बिहाड़ी है यह कला, किसी के घर में अगर सीक भी टूटती है तो उसकी आवाज उसके कानो में पहुँच जाती है।"

सुखरानी हँस पड़ी और हँसते-हँसते कहने लगी—"मुझे और बहू को बुला गई है, सोचती हूँ चली जाऊँ भोग के समय नहीं तो वह मुँह फुला लेगी।"

"कहती क्या हो, चली जाना; लेकिन औरतों की चकल्लस में मत पड़ना परसाद लेकर अपने घर चली आना।"

इधर दम्पति में यह वार्तालाप चल रहा था और उधर शरबती सोच रही थी कि आज तक कला ही सबकी कमियाँ ढूँढ़ती चली आई है उसे कोई ऐसा नहीं मिला, जो खुद उसे बुरा कह सकता। बबूल सीधा कभी नहीं बढ़ता जब तक उसकी डाले काटी और छाँटी नहीं जाती। दुनियाँ भर की बुराई करने का जैसे उसने ठेका ले रखा है लोग पता नहीं क्यों दबते हैं उससे। लेकिन एक दिन वह जरूर आयेगा जब कला को अपने किये का फल मिलेगा अभी लोग पीठ पीछे उसकी बुराई करते है, फिर मुँह पर कहने लगेगे। मैं उस दिन की राह देखूँगी; क्योंकि दुनियाँ में बदला बुराई का भी मिलता है और भलाई का भी।

शरबती कला के प्रति ही मथोमथन में लगी थी। उजेली रात भीग रही थी। और शरद पूर्णिमा का थाली सा गोल-मटोल चन्द्रमा, अम्बर की खिड़की खोल हंस रहा था ऐसा लगता, कि वह अभी धरती पर उतर आयेगा।

## पन्द्रह

एक दिन देवकुमार विद्याधर से मिलने गया, तो इधर-उधर की बातचीत के बाद फिर अचानक घर गृहस्थी की बात चल पड़ी। विद्याधर ने बताया कि रोहन को एक ट्यूशन मिल गया है और एक जगह कुछ लिखा-पढ़ी का काम लेकिन इतने से कैसे गुजर होगी ? समय बहुत टेढ़ा आ गया है। मँहगाई दिन पर दिन बढ़ती जा रही है। मेरी बहुत तबियत ऊबती है, सोचता हूँ कि गाँव में ही जाकर क्यों न रहूँ, शहर का खर्चा आखिर कैसे पूरा होगा ?

हीरा देवकुमार की अभ्यर्थना के लिये उसके निकट आकर बैठ गई थी। साँझ हो चुकी थी। रोहन काम पर चला गया था। देवकुमार मोढ़े पर बैठा गौरपूर्वक विद्याधर की बातें सुन रहा था। वह बोला—"गाँव में क्या रखा है दादा ! गाँव में आदमी आजकल जानवरों की जिन्दगी जी रहा है। ग्राम सुधार योजनाएँ और गाँव की पंचायतें कितना गाँवों को तरक्की पर ले जा रही हैं यह तो आपको मालूम ही है गाँव में कोई भी धन्धा नहीं है एक छोटे से खेत के सहारे आप अपना परिवार पालना चाहते हैं।

तसल्ली रखिए, मैं भी कोशिश करूँगा कि रोहन को एक दो टयूशन और मिल जाय और फिर दिन ही कितने रह गये हैं एल० टी० करते ही किसी न किसी कॉलेज में उसे जगह अवश्य मिल जायगी।"

देवकुमार की बातों से विद्याधर को कुछ सन्तोष हुआ वे हीरा की ओर देखने लगे और हीरा देवकुमार का समर्थन करती हुई बोल उठी—"भइया देव, तुम ठीक कहते हो, पत्ता लादकर ही पत्थर लादा जाता है। बुरे वक्त में समाई से काम लेना जरूरी है। यही मैं इनको समझाती हूँ, कि टेढ़े दिन बने नहीं रहते, वे बदलते जरूर हैं। रोहन जितना ले आता है मैं उसी में कंजूसी करके घर का खर्च चलाऊँगी। गाँव में नाम है सिर्फ खेत का, अगर यहाँ से रुपये न भेजे जाँय तो बपुआ और बिटिया का खर्चा न चलें।"

"हाँ, यह तो है ही।" देवकुमार के मुँह से बरबस ही यह बात निकल गई, लेकिन विद्याधर को इससे पूरा-पूरा सन्तोष नहीं हुआ। वे दुखी स्वर में देवकुमार से पूछने लगे—"देवकुमार भला तुम्हीं बताओ कि नौकरी पाने के लिए तुम शहर में कितने दिन तक भटकते रहे थे। आज के जमाने में नौकरी मिल जाना साक्षात भगवान का मिल जाना है तुम कहते हो यह हो जायेगा वह हो जायेगा; मगर अंधा देखे तब पतियाय मुझे विश्वास नही होता, पता नही कल क्या होगा, यह कल के पहले नहीं जाना जा सकता।"

बातचीत का विषय बहुत गम्भीर बन गया नीरवता व्याप्त हो रही थी और उस नीरवता को लाल पतंगे मिट्टी के तेल की चिमनी के इर्द-गिर्द दीवाल पर चिपके चट-चट करके भंग कर रहे थे। देवकुमार ने एक लम्बी सांस ली और कहने लगा—"दादा, समय के मुताबिक आदमी को वैसा ही बन जाना पड़ता है। अगर पानी पीना है तो कुआँ जरूर खोदना पड़ेगा। यह तो सबके साथ होता है रोहन तरक्की करेगा उस पर मुझे पूरा-पूरा भरोसा है, वह होनहार लड़का है, गाँव जाकर रहने

का इरादा बदल दो, इससे रोहन का मन छोटा हो जायेगा। हम सबको चाहिये कि उसका हौसला बढ़ायें। वह……।"

"हाँ भइया, हौसले में आदमी सिर पर पहाड़ तक उठा कर घर लेता है और वह उसे बिल्कुल गरुआ नहीं लगता, मालूम होता है जैसे पत्ता। रोहन को कितनी चिन्ता है, घर की यह मैं जानती हूँ रात-रात भर जग कर वह पढ़ता है, दिन में इधर-उधर दौड़ता ही रहता है। मैं गाँव नहीं जाऊँगी देव भइया; मेरे बेटे का सारा हौसला ठण्डा पड़ जायेगा।" हीरा ने यह बात पुत्र-मोह में अन्धी होकर कही थी।

मातृत्व के सम्मुख वात्सल्य उमड़ आया और विद्याधर पत्नी का मन रखते हुये देवकुमार के समर्थन में कहने लगे—"हाँ, यह बात तुम बिल्कुल ठीक कहते हो देव। रोहन कभी राजी ही नहीं होता जब मैं उससे कहता हूँ कि तुम्हारी माँ को लेकर मैं गाँव में जाकर रहूँगा। सुनते ही उसका चेहरा उदास हो जाता है अब ऊपर वाले की मरजी है, जो देगा उसी में बसर करेंगे। जैसा तुम कहते हो भइया गाँव में वाकई में कुछ नहीं रखा है।"

अब सबके मन प्रफुल्लित थे और जहाँ पहले रोटी और कपड़े की समस्या चल रही थी, वहाँ अब रोहन की तारीफ के पुल बँध रहे थे। हीरा बलि-बलि जाती थी अपने लाल पर और विधाधर अपने पुत्र के लिए एक नया संसार बसा रहे थे, जिममें देवकुमार का भी सहयोग वे सहज ही प्राप्त कर रहे थे।

थोड़ी देर बाद जब देवकुमार चला गया तो दम्पत्ति में देर तक वार्ता चलती रही। इसके बाद रोहन के आते ही उससे माँ-बाप बातों में ऐसे बेसुध हो गये कि किसी को यह ध्यान ही नहीं रहा, कि रोहन ने प्रात; दस बजे खाना खाया था और अब तक वह भूखा है।

## सोलह

शोभा और चारुशीला के बीच वैमनस्यता की एक बहुत बड़ी दीवाल खड़ी हो गई थी। शोभा को चारु से यह शिकायत थी कि उसके मना करने और कसम दिलाने पर भी चारु ने कानपुर जाकर उसके पति सदाशिव की बुराई अपने भाई और भाभी से की। तभी राधामोहन ने पिताजी के घर से हटाकर उसको मेडिकल कॉलेज के होस्टल में रख दिया और माँ तथा पिताजी के सामने भी मेरी नजरें नीची हुईं कि मेरे पति ने बदनामी का काम किया और चारु दूध की धोई ही रह गई; कितनी सयानी निकली। अपने को साफ बचा गई और हमारे घर को बदनाम कर दिया।

किन्तु चारु की यह स्थिति थी कि वह शोभा से रंजिश नहीं मानती। उससे मिलती-जुलती इसलिये नहीं; क्योंकि अब एक तो उसके पास अवकाश नहीं था, दूसरे सदाशिव के कारण वह और भी नहीं जाती थी, और इसीलिये तो अपने मामा का घर छोड़ा था; क्योंकि सदाशिव बराबर वहाँ आया-जाया करता। एक बात और थी कि चारु शोभा के कुछ दिनों से

चल रहे रूखे व्यवहार का मतलब अब स्पष्ट समझ रही थी कि शोभा को मुझ पर सन्देह था। उसने कहा नहीं, मन ही मन कुढ़ती रही। उस दिन जब सदाशिव से मेरी झपट हुई तो ऐसी दुनियाँदारी कर रही थी मानो मेरी सगी बहन हो। क्या करूँगी उसके पास जाकर, जिसका मन मैला हो; उससे दूर ही दूर रहना अच्छा है।

प्रायः ऐसा होता है कि दो परिवारों में या दो मित्रों में कोई आपसी मन-मुटाव हो जाय तो लोग पुरुष और स्त्रियों से तो घृणा करते है, लेकिन प्रतिद्वन्द्वी के बच्चों को नहीं ठुकरा पाते। बच्चों को दुनियाँ प्यार करती है। चारु विभा को बहुत चाहती थी। वह उसकी बहुत मुँह लगी थी। यद्यपि अब वह शोभा के घर नहीं जाती थी; लेकिन जब कभी आठवें-दसवें दिन अपने मामा-माई के पास पहुँच जाती, तो कभी-कभी विभा उससे मिल जाती थी।

एक बार जिस दिन चारु कानपुर जा रही थी, उसी सन्ध्या को होस्टल से वह सीधी अपने मामा के घर जा पहुँची। वहाँ विभा आँगन में खेल रही थी—चारु को देखते ही उससे लिपट गई और मगन होकर, बार-बार अपनी धुन में कहने लगी—"मौसी आगई, मौसी आगई।"

शोभा की माँ इस समय रसोई में थी और मामा इन्द्रजीत कहीं घूमने गये थे। साँझ का झुटपुटा छा रहा था, आँगन की बत्ती जल रही थी, रसोई में कुछ धुँआ भर रहा था। चौकी पर बेलन सरकाती हुई, अपनी बूढ़ी नानी का ध्यान चारु की ओर आकृष्ट करती हुई उसकी धोती का पल्ला पकड़े, रसोई के दरवाजे पर खड़ी पुलकती हुई विभा कह रही थी—"नानी! देखो मौसीजी आई हैं और यह कहते-कहते वह आँगन में दौड़ गई और एक छोटा-सा सिरकियों का मूँढ़ा वहाँ लाकर डालती हुई चारु से कहने लगी—"लो, बैठो मौसी!"

चारु मूँढ़े पर बैठ गई। उसने विभा को अपने घुटनों पर बिठा

लिया। तभी शोभा की माँ कहने लगी—"आओ, बेटी चारु! आज तो शनिवार है, तुम कानपुर नहीं गईं?"

चारु तुरन्त ही बोल उठी—"अभी जारही हूँ बहुत दिनों से नहीं आई थी सोचा साढ़े सात बजे की बस से चली जाऊँगी, इस बीच आपसे मिल लूँ।"

शोभा की माँ प्रसन्नता से गद्गद् हो उठी। वह बोली—अच्छा, खाना तैयार है। तुम्हारे मामा तो कहीं घूमने गये हैं, अभी थाली लगाती हूँ, खाना खाकर जाओगी, यह अच्छा रहेगा।"

चारु माईं को कुछ जवाब दे इससे पहले ही विभा दुलराकर, उसके गले में दोनों बाँहें डाल, पूछने लगी—"मौसी! आज तुम कानपुर जा रही हो, मैं भी चलूँगी। मैं हमेशा कहा करती हूँ, पर तुम कभी नहीं लिवा जातीं; आज मैं नहीं मानूँगी—जरूर चलूँगी।"

चारु असमंजस में पड़ गई। वह एकाएक विभा को कुछ भी जवाब नहीं दे पाई। नानी की डाँट विभा पर पड़ी, जिसकी उसने मानो उपेक्षा कर दी और खिलखिलाकर हँस पड़ी।

शोभा की माँ ने कहा—"अरे, तू कहाँ जायेगी विभा! तेरे कपड़े भी तो साफ नहीं हैं और फिर घर में अपनी मां से पूछा है?"

इस पर विभा ने अपने बाल-सुलभ चंचल स्वर में जवाब दिया—"माँ से तुम पूछ लेना नानी! मैं तो जाऊँगी अपनी मौसी के साथ।" यह कह कर वह फिर एक बार चारु के गले में दोनों बाँहें डालकर झूल गई।

शोभा की माँ और चारु ने विभा को बहुत समझाया; लेकिन नानी की डाँट और मौसी का समझाना विभा की समझ में तनिकभी नहीं आया। वह अपनी जिद्द पर अड़ी रही और आखिर चारु को उसे अपने साथ कानपुर ले जाना ही पड़ा।

× × ×

रात हो गई और जब विभा अपनी नानी के घर से लौटकर नहीं आई तो शोभा ने रामू को रकाबगंज भेजा और रामू ने जब अपनी मालकिन को यह खबर जाकर सुनाई कि विभा, चारुशीला के साथ कानपुर गई है और परसों सबेरे लौटेगी तो शोभा का पारा एकदम गरम हो गया। अंगारों पर पैर रखती हुई माँ के पास पहुँची और आग-बबूला होकर बोली—"तुमने विभा को चारु के साथ क्यों भेज दिया माँ ? मुझे यह नहीं अच्छा लगता है कि बाप से बैर और पूत से दोस्ती !"

बूढ़ी माँ ने पुत्री को अनेक तरह से समझाया और यह भी कहा कि कुछ भी करो शोभा बच्चों की ज़िद्द रखनी ही पडती है। भेज दिया है परसों, चारु के साथ लौंट आयेगी, तुम नाहक दौडी आई।"

लेकिन शोभा बड़बड़ाती ही रही और बडबड़ाते-बड़बडाते चली चई।

माँ को शोभा का यह व्यवहार तनिक भी अच्छा नही लगा। वह खीझकर रह गई।

सोमवार को प्रात: आठ बजे विभा जब चारु के साथ लखनऊ वापिस आई तो चारु ने जल्दी में उसे मामा-माई के यहाँ छोड दिया और होस्टल चली गई।

वहाँ थोड़ी देर बाद तमतमाई हुई शोभा आई। आते ही उसने छोटी-सी बच्ची को रुई की तरह धुन डाला। माँ के पक्ष लेने पर उससे गरमा उठी और जब घर आई तो विभा को खूब धमकाया कि अब अगर आगे ऐसी कोई हरकत की तो अँधेरी कोठरी में बन्द कर दूँगी, न खाना दूँगी और न पानी।

इस तरह विभा रोती रही, सिसकती रही और शोभा फिर भी उसे डाँटती रही।

दूसरे दिन अवकाश मिलते ही चारुशीला रकाबगंज आई। उसके मन में सन्देह था कि कही ऐसा न हुआ हो कि शोभा ने मेरे साथ जाने

के कारण विभा को डाँटा-डपटा हो। जब माई ने सारी बातें बतलाईं कि शोभा ने विभा को बहुत पीटा है, तो चारु के आँसू आ गये। वह वहाँ अधिक देर बैठी न रह सकी, उठकर चल दी। उस दिन देर तक उसकी मनःस्थिति खराब रही। होस्टल में आकर वह चुपचाप आँखें मूँद चारपाई पर पड़ रही और सोचने लगी कि व्यर्थ में विभा को अपने साथ ले गई। न ले जाती और न उस बेचारी पर मार पड़ती। कितनी क्षुद्र बुद्धि है शोभा की, जो बच्चों को भी मतभेद सिखाती है। वास्तव में शोभा ऐसी स्त्री है, जिसे अपने माथे पर लगा हुआ काला दाग़ नहीं दिखाई देता है और दूसरे के सफाचट माथे पर उसकी आँखें स्याही का दाग़ न होते हुए भी देख लेती हैं।

इसी तरह दुनियाँ भर के विचार चारु के मस्तिष्क में चलते रहे, आज उसे बहु दुःख था कि उसके कारण विभा को प्रताड़ित होना पड़ा। वह अपने क्षोभ को जितना भुलाने का प्रयत्न करती, उतना ही वह उभड़-उभड़ आता था।

## सत्तरह

यद्यपि देवकुमार की अवस्था पच्चीच-छब्बीस साल की थी; फिर भी मनन करने करने की उसमें इतनी क्षमता थी मानो कोई प्रौढ़ हो। एक बात अगर उसके मन में खटक जाती तो फिर महीनों का पचड़ा हो जाता। आजकल वह घर में भोजन नहीं बनाता बाहर बाजार में ही खा लिया करता था। घर के भोजन और बाजारु चीजों में जमीन-आसमान का अन्तर होता है। उसका चेहरा हरदम मुरझाया-मुरझाया सा रहता था। वह शरबती के प्रति पता नहीं कितना सोचता रहता था कि उसका अन्त ही नहीं होता।

देवकुमार की उलझन एक नहीं वरन अनेकों थीं। वह शरबती को नागरिक वातावरण में ऐसा खो देना चाहता था जैसी कि चारु और रेवा थीं और गाँव में गाँव वालों के सम्मुख वह पत्नी को इस रूप में देखना चाहता था जैसे कोई नई बहू हो। अजीब आफत थी, वह चने भी चबाना चाहता था और शह-नाई भी बजाने का मन करता था। मतलब यह कि

वह सबको खुश रखना चाहता था जिसमें कहीं भी किसी को कुछ कहने और टोकने का मौका न मिले।

घर के अतिरिक्त बैंक में भी देवकुमार कभी-कभी विचारों में बुरी तरह से उलझ जाता। तब राधामोहन उसे टोक देता। एक बार उसने पूछ लिया—"देवकुमार ! आजकल तुम खाना कहाँ खाते हो ? तुम्हारे चेहरे पर कुछ फीकापन सा नजर आता है।"

देवकुमार जल्दी में जवाब दे गया—"खुद ही बना लेता हूँ, और······।" "और मुझसे तो उस दिन कहते थे सब गाँव से आये थे कि खाने-पीने की व्यवस्था विद्याधर के घर में रहेगी; क्योंकि उन सबका आग्रह है और आज ऐसा कह रहे हो ! मैं उसी दिन समझ गया था और आज वह बात स्पष्ट हो गई।" कहकर राधामोहन ने हाथ में पकड़ा हुआ होल्डर मेज पर रख दिया और देवकुमार की ओर देखता हुआ पुन: कहने लगा—"क्या बात है देव ! तुम आजकल काफी परेशान रहते हो ?"

देवकुमार दु:खी स्वर में बोला—"राधामोहन बाबू ! आप नहीं समझते कि दो नावों पर पैर रखकर चलने वाले की क्या गति होती है ? आप से मैंने कभी दुराव नहीं रखा हमेशा मन की बात कह कर सन्तोष पाया है। शरबती मेरे सामने एक समस्या बन गई है, आप जैसे सुसभ्य नागरिक उसे नगर के अनुकूल देखना चाहते हैं और गाँव की संस्कृति में स्त्री का पढ़ना लिखना उसका परदा न करना और सबके साथ हँसना बोलना बहुत बड़ा अपवाद समझा जाता है। सच कहता हूँ मित्र, इसीलिए मैंने शरबती को नहीं पढ़ाया, आज व्याह के तीन वर्ष हो गये हैं। वही अक्सर सोचा करता हूँ कि दुनियाँ की खींचा तानी में पड़कर अपने दाम्पत्य-जीवन की जड़ों में जहरीला तेजाब क्यों छिड़कूँ, लेकिन फिर भटक जाता हूँ और सोचने लगता हूँ।"

अब डेढ़ बज रहा था लंच की घण्टी बज चुकी थी। दोनों मित्र

नीचे आये और जीने के निकट ही स्थिति टी स्टाल में चले गये। चाय सामने आ गई और दोनों मित्र उसकी चुसकियाँ लेने लगे तो राधामोहन ने होठों से प्याला हटाकर प्लेट में रखते हुये शान्त मुद्रा में कहा—"देवकुमार! दुनियांदारी का चक्कर तो बहुत बड़ा है, उसमें कहाँ तक भटकोगे अपने सिद्धान्त बनाओ और उन्हीं पर चलो। दुनियां का दस्तूर है वह कुछ न कुछ कहती ही रहती है। मैं तो यहीं तक सलाह दूंगा कि अबकी बार बहू को शहर लाते ही उसको पढ़ाना शुरू कर दो। रह गई परदे की बात उसके लिए ऐसा है कि गाँव घरों में तो परदा चलता है; लेकिन शहरों में अब उसका रिवाज नहीं है। पता नहीं इन छोटी छोटी बातों को लेकर तुम अपना मन क्यों खराब करते रहते हो? आज शाम को भोजन मेरे साथ करना और कल से दोनों समय का प्रबन्ध वहीं रहा करेगा।"

देवकुमार चुपचाप सुनता रहा और राधामोहन आधा कप खाली करके फिर कहने लगा—"देवकुमार! तुम दकियानूसीपन को महत्व देना छोड़ दो, जमाना आगे बढ़ रहा है; उसके साथ चलने की कोशिश करो। पीछे लौटने का नाम जिन्दगी नहीं, जिन्दगी में जागरण जरूरी है, इसीलिये कहता हूँ कि अपने सिद्धान्त बनाओ और उन्हीं पर चलो।"

देवकुमार पर राधामोहन की बातों का प्रभाव ऐसा छा रहा था कि उसकी ओर एकटक देख रहा था। चाय समाप्त हो चुकी थी; फिर भी दोनों बैठे थे, थोड़ी देर बाद वे स्टाल से बाहर निकले और पान के बीड़े मुँह में दाब, उनको कुतरते हुये पुनः अपने स्थान पर वापस आ गये।

हाल में आकर भी राधामोहन थोड़ी देर तक देवकुमार को समझाता रहा और देवकुमार के मुँह से एक शब्द भी निकल पाया। वह केवल हाँ, द्योतक सिर हिला कर ही रह जाता था।

× × ×

उस दिन से क्रम बन गया कि देवकुमार दोनों समय भोजन राधामोहन के घर करने लगा। रेवा देवकुमार से वैसा ही स्नेह रखती थी जैसा कि भाभी का देवर के प्रति एक स्नेह भरा व्यवहार रहता है। वह देवकुमार को लाला कहती थी और देवकुमार उसे भाभी कह कर पुकारता था।

एक दिन राधामोहन को ज्वर हो गया था। वह बिस्तर का बन्दी बना लेटा था। रात का अन्धेरा बिल्कुल काला भयावना भूत सा आगन में व्याप्त हो रहा था। रसोई में वर्तन खटक रहे थे रेवा परोस रही थी और देवकुमार खा रहा था। तवे पर पड़ा पराठा सू-सू करता हुआ घी पी रहा था, अँगीठी में कोयले जलते सिन्दूर से दृष्टि गोचर हो रहे थे। वायु से और इस कमरे से जैसे कोई सम्बन्ध ही नहीं था वह बहुत ही मन्द गति से चल रही थीं शरद ऋतु आ गई थी। इसलिए मौसम गुलाबी था। हल्के पावर का बिजली का बल्व रसोई में लगा था जिसका प्रकाश फर्श और दीवालों पर ऐसा फैल रहा था मानो सोने की दीवालें हों और सोने ही का फर्श। "एक पराठा और लो लाला!" रेवा ने बड़े स्नेह से देवकुमार से कहा।

इस पर देवकुमार आदरपूर्वक संकोच भरे स्वर में दाहिना हाथ हिलाता हुआ कहने लगा—"बस, भाभी बस! अब नहीं चलेगा।"

रेवा तनिक मुस्कराई और गरम-गरम पराठा देवकुमार की थाली में छोड़ दिया।

"यह क्या भाभी! मैं.........।"

"अरे खाओ, अभी से बस करने लगे, इने-गिने तीन पराठे खाये और तुम्हारा पेट भर गया, यह आलू का भरा है। सचमुच तुम्हारी बहू आलू भर कर जितना बढ़िया पराठा बनाती है वैसा मैं कोशिश करके भी नहीं बना पाती। घर-गृहस्थी के कामों में वह बहुत कुशल है।" यह कह रेवा तनिक रुककर फिर कहने लगी—पन्द्रह-बीस दिन गये, हो

तुम बहू को लाये नहीं। अब दीवाली करीब आगई है, गाँव जाना तो उसको जरूर लिवा लाना। मुझे उसके बिना अच्छा ही नहीं लगा।"

देवकुमार अब तक आधा पराठा समाप्त कर चुका था। वह धीरे से बोला—"कार्त्तिकी पूर्णिमा को माँ और पिता जी गंगा स्नान के लिये आयेंगे तभी उनके साथ शरबती यहाँ आयेगी।"

रेवा को देवकुमार की बात कुछ अच्छी नहीं लगी लेकिन वह उसी प्रसङ्ग पर उससे तब तक बातें करती रही जब तक वह भोजन करके उठ नहीं गया।

घर आकर देवकुमार शरबती के प्रति विचारों में उलझ गया कि आदमी एक है और उसकी परख करने वाले अलग-अलग। कोई गलत बताता है और कोई उसी को सही कहता है पता नहीं दुनियाँ में कितने रङ्ग हैं और उनकी क्या परिभाषा है। रेवा शरबती की तारीफ करती है और कला उसको बदनाम करती है गाँव वाले बेपरदगी का शिकार बताते हैं और शहर उसके गुणों का गान करता है। अजीब उलझन है, जिस तरह मुझे शरबती पर गुस्सा आता है वैसे ही कभी-कभी गाँव के ढोंगी समाज पर जहाँ प्रपञ्चों का बाजार गर्म रहता है और कभी-कभी मैं स्वयं अपने ऊपर खीझ उठता हूँ कि शरबती पर मेरा क्रोध करना अकारण है। लेकिन तब अन्तर्मन बोल उठता है कि दाबा और डाँटा अपने ही को जाता है और सोना कसोटी पर उतना ही खरा उतरता है, जितनी तेज आँच देकर वह पिघलाया जाता है। शरबती कुन्दन बन सके यह मेरे लिए एक बहुत बड़े सौभाग्य की बात होगी।

लेकिन देवकुमार की यह मनःस्थिति दूसरे दिन सबेरा होते ही कुछ की कुछ हो गई और वह जब सोकर उठा तो सोच रहा था कि कमी शरबती में है; क्योंकि वह पढ़ी लिखी नहीं है। साथ ही उसके आचार-विचारों में ग्रामीणता की स्पष्ट छाप है।

# अट्ठारह

मोतीपुर गाँव एक ऐसे तालाब के किनारे बसा था जो तालाब के नाम से पुकारे जाने पर भी एक पतली झील की तरह था। उस पर जब शरद की चांदनी पड़ती तो पानी चाँदी सा चमकने लगता था। उसके इर्द-गिर्द गाँव के बीराने में यत्र-तत्र सरसों की जोड़ियाँ उस सुखद शीतल जुम्हाई में कंडे?···कँड़ा··· कँजे ? कँड़ा, करती हुई बिचरती तो लगता कि यह रात नहीं, दिन है ! यह जल नहीं, अमृत है ! और यह गाँव की धरती नहीं, स्वर्ग है !

दीवाली करीब आ गई थी। लबालब भरा हुआ ताल अब धीरे-धीरे सिमट रहा था और उसी के ठीक सामने अमराई वाले टीले पर इस रात की बेला में भी गाँव के आबाल और जवार पियरा [ पीली ] मिट्टी खोदने में व्यस्त थे। इस गाँव का दस्तूर था कि दीवाली के त्योहार पर इस टीले से पियरा मिट्टी खोद-खोद कर लोग ले जाते और उसमें गोबर मिलाकर पिंडोर से पुती हुई घरों की कच्ची दीवालों पर फेनियाँ [ पोतते ] फिरते थे। और होली पर जब तल सिकुड़ कर छोटा-सा रह जाता तो

उसकी छुहिया। पिड़ोर की की वह किस्म जिसके पोतने में उसकी अपेक्षा काफी सफेदी रहती है, खोद-खोद कर अपने पीले पुते हुये घरों को रुपे चमका देते। गांव का हर बच्चा और बूढ़ा यही कहा करता था कि दीवाली में हमारे घर सोने के हो जात हैं और होली पर चाँदी के।

सारे गाँव में लीपा-पोती का क्रम चल रहा। कल धनतेरस का का त्योहार था। रामकुमार अपना घर नहीं पुता पाये थे। उन्हें विश्वास था कि देवकुमार त्योहार के एक दिन पहले आ जायेगा तब वे एक दिन में ही दो आदमी लगाकर अपना छोटा सा घर पुतवा-लिपवा चक्क कर देंगे। लेकिन आज तीसरे पहर उन्हें जो पत्र मिला उसमें लिखा था कि मैं दीवाली पर घर नहीं आ सकूँगा, एक जरूरी काम से बाहर जारहा हूँ बैंक का मामला है, पता नहीं कब छुट्टी मिले।

सुखरानी वर्ष दिन के त्योहार पर मन को मलिन नहीं करना चाहती थी इसीलिए सबके सामने उसके आंसू सकुचे रहे और एकान्त पाते ही वह मुक्त हो कर बहने लगे। माँ के आँसुओं ने धीरे-धीरे अपने शोक पर तसल्ली पा ली थी और पिता का हृदय, मोम बन कर' पिघलते-पिघलते समाई का सहयोग पा, शान्त हो गया था। लेकिन शरबती पत्नी थी और पति के न आने का कारण वह भली भाँति समझती थी। उसे अपने पर क्षोभ हुआ कि एक मात्र कारण वही है, जिससे उसका मन कुछ बिचक गया है। बात छोटी सी थी और यहाँ गाँव में कला ने राई का पहाड़ बना दिया है, इसके लिए मैं क्या करूँ? कहने वाले का मुँह कोई नही बन्द कर पाता, मारने वाले के उठे हुये हाथ को सभी पकड़ लेते हैं। वे दीवाली पर नहीं आयेंगे, व्याह के बाद यह पहला मौका हैं माँ और पिताजी क्या कहेंगे, उनका मन मुझ से कहीं ज्यादा दुख रहा होगा। लेकिन वे असलियत जानते नहीं, इससे कोसों दूर हैं, और मैं यह बतलाकर उनके मन को ठेस नहीं पहुँचाना चाहती कि उनका लड़का

मुझ पर नाराज है गाँव में लोग मेरी हँसी उड़ाते हैं कि मैं परदा नहीं करती, इसीलिए घर नहीं आया है।

रामकुमार पहर रात गये तालाब के किनारे से धीरे-धीरे घर आये। सुखरानी बरोठे में खड़ी बाहर की ओर देख रही थी शायद वह झब्बू की तलाश में थी और शरबती अपनी तिद्वारी में बैठी हुई विचार मग्न थी।

उस रात रामकुमार ने भोजन नहीं किया। सुखरानी भी भूखी पड़ रही और शरबती से उसने बहुत कहा; लेकिन उसने गम खा लिया और आँसू पी लिये थे उसे क्षुधा थी ही नही।

× × ×

दीवाली बीत गयी पूरे घर के लिए त्योहार फीका-फीका सा रहा और अगले सप्ताह रामकुमार को देवकुमार का दूसरा पत्र मिला जिसमें लिखा था कि मैं कानपुर वापस आ गया हूँ। आप कार्तिकी स्नान पर शहर आयेंगे ही और इसके अलावा मुझे अभी मौका भी नहीं इसीलिए नहीं आया।

पत्र की चर्चा घर में कई दिन तक चलती रही। दम्पति में कोई विशेष बात नही हुई उस सम्बन्ध में; किन्तु शरबती का सन्तुलन अब तक स्थिर नहीं हो पाया था। वह सोचा करती थी कि माँ और पिताजी के साथ मैं शहर जाऊँगी, तब उनसे पूछूँगी कि इतना बड़ा त्यौहार था तुम गाँव क्यों नहीं आये ? वे रूठे कब तक रहेंगे, मैं उनकी नाराजी दूर करके ही रहूँगी। औरत अगर चाहे तो आदमी से क्या नहीं करा सकती। मैं उनकी खुशामद करूँगी, सेवा करूँगी और उनके दुतकारने पर भी हँसती रहूँगी, वे मानेंगे कैसे नहीं ! हम औरतों को मनाना खूब आता है, बड़ा अच्छा है अगर कार्तिकी का नहान पड़ता तो मैं शहर न जा पाती, क्योंकि जो आदमी दीवाली जैसे बड़े त्योहार पर गाँव नही आया, फिर भला वह मुझे लेने कैसे आ सकता था।

शरबती के अन्तर्द्वन्द्व में शायद ही कभी बाधा पड़ी हो, अन्यथा वह अहर्निश अपनी उधेड़-बुन में ही व्यस्त रहती। जिस दिन देवोत्थानी एकादशी थी और आँगन में पूरी हुई ऐपन की चौक पर पाँच गन्नों के अगौड़े तोड़े गये, उसी दिन दोपहर को सब की शहर जाने की तैयारी हो गई। रामकुमार की धर्म में अधिक रुचि थी और सुखरानी थी पुरानी रूढ़ियों की नारी, जो परम्परा को जिन्दगी की लकीर समझती थी। दम्पत्ति ने पचभिखा [ पाँच दिन का स्नान ] नहाने की योजना बनाई थी और शरबती से जब सास ने कहा—"तैयारी करो बहू! चार बजे तक हम लोगों को स्टेशन पर पहुँच जाना है।" तो शरबती में एक नया जीवन जग गया, उसकी स्फूर्ति ताजी हो गई और तत्परता के साथ वह आयोजन करने में जुट गई।

दोपहर ढलते-ढलते गाँव से एक बैलगाड़ी चली जिस पर तूली रंग का ओहार [ आवरण ] पड़ा था। गाड़ीवान के पीछे सिर पर अण्डी का साफा बाँधे वृद्ध रामकुमार बैठे थे और परदे से झाक रही थी सुखरानी। वह पति से कह रही थी कि साँझ तक हम लोग कम्पू पहुँच जायेगे। आज की बुड़की गंगा मैया में लग जायेगी।

और तभी सुखरानी के पीछे बैठी शरबती की चूड़ियाँ टुन-टुना उठी। ससुर का लिहाज करती हुई वह धीरे से सास के कान में फुसफुसाकर बोली—"अरे माँ! कहो न पिताजी से, गाड़ीवान को कोंचे रहें—स्टेशन पूरे डेढ़ मील दूर है, अगर तनिक भी देर होगई, तो गाड़ी नही मिलेगी।"

बहू की बात का समर्थन सुखरानी ने इस प्रकार किया कि रामकुमार उसकी बात सुनकर गाड़ी वाले पर कुछ खीझ से उठे। वे बोले—"कैसे हैं तुम्हारे बैल, पैर उठा-उठाकर रखते हैं, हमें जल्दी पहुंचना है नहीं तो गाड़ी छूट जायेगी।"

इस पर अरई लगी और चाबुक सपासप बैलों की पीठ पर बजने लगे। वे कच्चे गलियारे में धूल उड़ाते हुए दौड़ने लगे। इस समय उनके गले में बँधी घण्टियाँ जोर-जोर से बज रही थी।

घण्टियों के साथ-साथ गाड़ी वाला एक ग्रामीण धुन में गुनगुनाने का उपक्रम करने लगा। बैल अपने मालिक की गुनगुनाहट का अर्थ समझ और भी तेजी से भाग पड़े। इस समय वह अपनी दौड़ में वायुयान को भी मात देने की कोशिश में थे—बैलों की पीठ पर थपथपाहट का हाथ पड़ते ही बैलों की रगों में तेजी दौड़ने लगती। शरबती ने अब सन्तोष की श्वाँस ली।

## उन्नीस

शहर पहुँच, उसी रात को एकान्त पा शरबती ने देवकुमार से पूछा—"तुम दीवाली पर गाँव क्यों नहीं आये ? मैं जानती हूँ कि जिस वजह से तुमने आना ठीक नहीं समझा। बेकार की बदनामी से मुझे तो डर नहीं लगता, और तुम आदमी होकर इतना क्यों डरते हो।"

देवकुमार चिढ़ उठा। वह झल्ला कर कहने लगा—"फिजूल की बातें न करो शरबती ! तुम्हें शरम नहीं होगी–मुझे तो है, त्योहार पर गाँव जाता, वहाँ दोस्त-मित्र मिलते तब क्या जानती हो कि यह चर्चा नहीं चलती कि देवकुमार की बहू शहर में परदा नहीं करती।"

शरबती ऐसी बातें सबके मुँह से सुनते-सुनते उकता गई थी। वह ऊब कर बोली—"मेरी समझ में नहीं आता है कि तुम उस बात के इतना पीछे क्यों पड़ गये हो। मैं तो यह जानती हूँ कि जब आदमी सही रास्ते पर चल रहा हो और उसे अपने ऊपर विश्वास हो, तो उसे किसी के कहने-सुनने की परवाह नहीं करनी चाहिये। यों तो हाथी राह पर चलता

रहता है और कुत्ते भौंकते रहते हैं, झूँठी निन्दा करने वालों से डरना चाहिये ही नहीं, हवा के भी भला कहीं पैर होते हैं।" यह कहते-कहते शरबती के गुलाबी अधरों पर एक मन्द स्मित की क्षीण रेखा दौड़ गई। नेत्र पति की ओर उठे और नेत्रोन्मीलन की भावना लाज में परिणित हो गई। उसका सिर थोड़ा-सा लाज-भार से नत हो गया।

और देवकुमार मौन साधे; कमर पर दोनों हाथ बाँधे--कमरे में इधर-उधर टहलता हुआ यह सोचने लगा कि शरबती बात तो समझदारी की करती है; लेकिन एक बार थोड़ी-सी किरकिरी हो जाने पर दूसरों के लिये मनुष्य इंगित पात्र तो हो ही जाता है। बहुत प्रयत्न करता हूँ, किन्तु मेरे मन की उलझन कभी शांति नहीं हो पाती। ऐसा लगता है कि एक अकेली शरबती के ही कारण मुझे हर जगह नीचा देखना पड़ता है। समझ में नहीं आता! कि क्या करूँ? अगर शरबती के लिये शिक्षा का प्रबन्ध करता हूँ तो वह नागरिकता में रँग जांयगी, और अगर गाँव की परम्परा पर चलता हूँ तो वह निपट गँवारिन बन जायेगी; जैसी हीरा है। अधवयसी होने पर भी शहर में सात हाथ का घूँघट काढ कर चलती है। आखिर मै जब इस समस्या पर इतना सोचता हूँ तो शरबती को भी अपने प्रति कुछ न कुछ जरूर करना चाहिये। लेकिन वह इन सब बातों को हँसी-खेल समझती है, मुझे ऐसी गूढ़ पत्नी नहीं चाहिये। शरबती में वह गुण नहीं, जो मेरी उलझनों को सुलझा सकें। वह स्वयं एक पहेली है और कब तक बूझता रहूँ मैं उसे?

शरबती जहाँ की तहाँ बैठी थी। वह पति की स्थिति को देख रही थी। देवकुमार खोया-खोया सा कभी छत्त की ओर देखने लगता, कभी दीवालों और किवाड़ों को; और जब शरबती पर उसकी दृष्टि पड़ती तो न जाने क्यों एकदम चौंक-सा जाता था।

शरबती धीरे-धीरे उठकर खड़ी हुई और धीर पद-क्षेप के साथ पति के निकट जा, मृदु-स्वर में कहने लगी—"अच्छा, अब कुछ नहीं

पूछूँगी में। रात ज्यादा हो रही है—चलो, सो जाओ ! मैं पैर दबाये देती हूँ, नीद जल्दी आ जायेगी।"

देवकुमार ने जवाब नहीं दिया। चुपचाप टहलता रहा। शरबती ने उसे हाथ पकड़कर बैठाया और अनुरोध भरे स्वर में बोली—"सो जाओ न, तुम्हे मेरी कसम है ! बेकार की बातें सोच-सोचकर अपना मन न खराब किया करो।"

देवकुमार बिस्तर पर लेट गया और शरबती उसके पैर दबाने लगी। पहले उसका मन हुआ कि शरबती को झिड़क दे; लेकिन परेशानी की मुद्रा में पलकें धीरे-धीरे मुँदने लगी थीं, वाह्यरूप में वह सोने का अभिनय करना चाहता था, अतः मौन रहा। और शरबती अपने देवता के चरण चापती रही।

× × ×

कार्तिकी स्नान पर गाँव मोतीपुर से गंगाधर और कला भी आई थी। नहान वाले दिन दोनो परिवारों की अचानक सरसैया घाट पर भेंट होगई। गंगाधर, रामकुमार से मिलकर बहुत प्रसन्न हुए और शिकायत के स्वर में कहने लगे कि अकेले ही चले आये आप, मुझे नही बताया ? मै भी साथ चला आता तो पचभिखा नहा लेता।

रामकुमार ने गगाधर का बडप्पन रखा। दोनो वृद्धो में दुनियाँ-दारी की बहुत सी बाते हुई। रामकुमार ने जब विद्याधर का एक हाथ देखा तो उनकी आँखों में आँसू आगये और वे समवेदना भरी वाणी में सहानुभूति प्रकट करने लगे।

रोहन ने रामकुमार और सुखरानी के चरण स्पर्श किये। उधर शरबती भी घूँघट डाले हीरा और कला के पाँव लगी। सभी में उछाह था, सभी प्रसन्न थे। आगे-आगे चल रही थी पुरुष-मण्डली, जिसमें बेशुमार हो रही भीड़ की चर्चा चल रही थी और पीछे था स्त्री-समुदाय,

जिसमें कला सबकी सरगना बन मेले और नहान का वर्णन कर रही थी। किन्तु देवकुमार अब भी सोच रहा था कि कुछ नहीं—जैसा देश हो, आदमी अगर वैसा वेश बनाकर नही रहेगा तो उनका निर्वाह कभी नहीं हो सकता। मेरे पीछे यह गाँव का समाज है; जो शरद के वातावरण में आकर भी अपना कलेवर नहीं बदल सका। शरबती इसी वर्ग की नारी है और इस समय ऐसा लगा रहा है कि कोई कुलीन बहू अपनी सास और पड़ोसिनों के साथ, मर्यादा के साथ पथ पर पॉव धर रही है। अगर इसी को चारु अथवा रेवा की संज्ञा दे दी जाय तो अन्ध-विश्वास की चादर फट जायेगी। शिक्षा, सभ्यता और संस्कृति से पिछड़े हुए भारतीय गाँव का कायाकल्प हो जायेगा, लेकिन जब तक दकियानूसीपन जिन्दा है—इन्सान आगे नहीं बढ़ सकता। जितने मुँह हैं, उतनी ही बातें होने का मतलब यह होता है कि अपनी-अपनी सीमा में ही मनुष्य सीमित रह जाता है, निर्माण और संशोधन–दोनों ही उसके सम्मुख उपेक्षा की वस्तु बन जाते हैं; तभी पतन के पाँव आगे बढ़ते हैं और वह विवश होकर रह जाता है। आज के युग में सामाजिकता, नैतिकता और आदर्शों का कुछ भी मूल्य नहीं। कोई किसी से संतुष्ट रह ही नहीं पाता, पता नही यह कौन सा दैवी अभिशाप है।

इस तरह देवकुमार के विचारों का अन्त नहीं हुआ। घुमनी मोहाल में विद्याधर का परिवार रुक गया और पँचकूँचे की गलियों में आकर भी देवकुमार की विचारधारा नहीं टूटी। अब उसका क्रम यह था कि अच्छा हुआ, आज तो कला बहुत प्रसन्न रही शरबती से। जो साँप काटता है, अगर वही आकर अपना विष चूस ले, तो काटे हुए प्राणी की जान बच जाती है। इसी तरह जिस कला ने गाँव में जाकर शरबती के प्रति कीचड़ उछाला है, विष वमन किया है—अगर वही उसकी वहाँ तारीफ करने लगे

तो गाँव वाले इस बात को भूल सकते हैं कि शरबती शहर में परदा नहीं करती है ।

घर आ गया । देवकुमार के विचारों का तारतम्य टूट गया । ठण्डी सर्दीली हवा कुछ तेज होकर बहने लगी थी, उसका एक बड़ा सा झोंका आया और देवकुमार को छूकर चला गया, तब सहसा उसे यह अनुभूति हुई कि मैं जो कुछ सोच रहा था, वह हवा में उड़ गया है और समस्या अभी अधूरी की अधूरी ही है ।

## बीस

लगभग एक सप्ताह रामकुमार पत्नी सहित कानपुर में रहे। इस बीच विद्याधर के घर से काफी आवागमन रहा। दिन में अगर सबेरे गंगाधर रोहन के साथ या विद्याधर को लेकर रामकुमार के पास आते तो शाम को रामकुमार भी पुत्र के साथ जाकर उनके घर में देर तक बैठते। सुखरानी शरबती के साथ हीरा और कला के पास जाती और कला भी व्यवहारिकता का खूब प्रदर्शन करती थी। दोनों परिवार ऐसे घुल-मिल रहे थे लगता था कि यह सभी सदस्य एक ही परिवार प्रणाली में बंधे हैं।

जिस दिन रामकुमार और सुखरानी की गाँव जाने की योजना थी उसी दिन कला और गंगाधर भी उनके साथ गाँव के लिये रवाना हो गये।

शरद ऋतु का रङ्ग निखर रहा था। काँस फूल रहे थे, नदियों और तालाबों में सिमिटाव आता जा रहा था। इसीलिये सकुच कर दिन भी छोटा सा रह गया। अब प्रातः उठते-उठते ही आठ बज जाता और दस बजे जब भोजन करके देवकुमार बैंक चला जाता

तब शरबती बर्तन मलने बैठती तो उसे यह बोध होने लगता कि अभी सबेरा हुआ है और वह रात की टहल कर रही है।

ऐसे ही जब दिन की पलकें मुँद जातीं और छः बजे ही घर के कमरे में लगता, कि रात हो गई है देवकुमार उसके बाद घर आता। शरबती उसकी अगवानी लेती; लेकिन उसका मुँह फूल जाता था।

इस तरह दाम्पति की गति विधि चल रही थी। धीरे-धीरे शरबती पति की ओर से बहुत चिन्तित हो उठी। आखिर एक दिन उसने पूछ ही लिया—"क्या बात है; आजकल तुम्हारे चेहरे पर हँसी कभी आती ही नही। न जाने पिछले चार-पाँच महीने से तुम्हें क्या हो गया है, हमेशा खोये-खोये से बने रहते हो?" अच्छी बात भी तुमसे कहती हूँ उस पर चिढ़ उठते हो, अगर इसका कारण मैं हूँ तो मुझे मेरा कसूर बताओ और जो चाहो सजा दो, मगर अपने मन को खुश रखो।"

देवकुमार शरबती की बातों को एक कान से सुनकर दूसरे कान से निकाल देना चाहता था। किन्तु परिस्थिति गम्भीर थी, वह ऐसा नहीं कर पाया। शरबती उठकर उसके सामने खड़ी हो गई। अक्सर बात कहते क्षण उसकी आँखों में आँसू झाँकने लगते थे, लेकिन इस समय उसका आनन पर गाम्भीर्यपूर्ण मुद्रा थी और स्वर भी सहज था, एकदम सरल और सीधा। वह कई क्षण तक उसी मुद्रा में खड़ी रही देवकुमार मौन रहा, तब वह स्वर में तनिक तत्परता भर कर बोली—"तुम्हे बताना ही पड़ेगा, आज मैंने तय कर लिया है, कि तुमसे पूछ कर ही रहूँगी।"

देवकुमार व्यंग्यात्मक हँसी हँसता हुआ स्वर को रेढ आगे बढा कर बोला—"काश! तुम जैसा कहती हो वैसा बन पाती तो मैं तुम्हारी हर बात का जवाब देता।"

शरबती ने इस बात को बुरा नहीं माना। वह अपने पर संयम

पाकर मुस्कराती हुई मृदु स्वर में बोली—"तुम कैसी बनाना चाहते हो मुझे ? स्त्री को पति जैसा बनाना चाहता है वह वैसी ही बनती है। भला बताओ, आज तक मैंने तुम्हारी किसी बात को टाला है ? मैं तुम्हारी छाया हूँ, जहाँ जाओगे वहाँ साथ रहूँगी, जो कहोगे करूँगी। मैं······।"

"क्या बक-बक करने लगी हो, मुझे तुम्हारी बातें नहीं सुहातीं। इसीलिए मैं तुमसे बात नही करता हूँ तुम्हारी जगह पर अगर कोई पढ़ी लिखी समझदार लड़की होती, जिसे यह तमीज होती कि गाँव में कैसे रहा जाता है और शहर में कैसे तो आज को मुझे झींखना नहीं पड़ता। तुम न सुआ हो और न बगुला। तुम्हें देखकर शहर वाले गँवार कहेंगे और गाँव वाले तो निन्दा करते ही हैं। फिर तुम्हीं बताओ, तुम मेरी जिन्दगी में एक उलझन नहीं तो और क्या हो ?"

पति के मुँह से यह सुनते ही शरबती चिहुंककर रह गई। वह सन्नाटे में आ गई और दोनों कानों पर हाथ रखकर लम्बे स्वर में बोल उठी—"मैं उलझन हूँ।"

"हाँ, तुम उलझन हो। जब से तुम्हारे साथ व्याह हुआ तभी से मुझे सोचने की जरूरत पड़ी। और तुम हो, कि जहाँ पर थी वहीं खड़ीं हो, तनिक भी आगे नहीं बढीं।" देवकुमार यह कह कर आँगन से कमरे में चला आया और फर्श पर बिछी चटाई पर बैठ गया। शरबती भी उसके पीछे-पीछे आगई।

आज इतवार था। इस समय ठीक दोपहर थी। कमरे के रोशन-दान से हल्की फीकी धूप आकर सामने की दीवाल पर लोट रही थी। कमरे में निस्तब्धता छाई थी। वातावरण को झंकृत करती हुई शरबती की वाणी फूटी। देवकुमार ने सुना वह कह रही थी—"मेरी शुरू से पढ़ने की इच्छा रही, गाँव में नहीं पढ़ पाई तो व्याह हो जाने पर सोचने लगी थी कि तुम मुझे जरूर पढ़ाओगे, लेकिन यह कहने की मैं हिम्मत नहीं कर सकी और अब आज से बिल्कुल पक्का विचार कर लिया है कि

में पढ़ूँगी । अगर तुम नहीं पढ़ाओगे तो दोपहर को थोड़ी देर के लिए रेवा दीदी के पास चली जाया करूँगी ।"

"क्यों नहीं जाओगी, पर खुल गये हैं परिन्दा आजाद हो गया है तभी तो कला गाँव भर में कहती फिरती है कि देवकुमार की बहू बड़ी घुमक्कड़ है ।"

शरबती यह सुनते ही क्रोध से लाल हो उठी और ताव में आ कहने लगी—"ऐसी तैसी कला की मैं तुमसे पूछकर जाऊँगी, यह कोई चोरी नही है ।"

"चोरी कौन कहता है, मैं तो इसे सीना जोरी कहूँगा; क्योंकि तुमने पहले ही तय कर लिया कि मैं तुमको नहीं पढ़ाऊँगा और तुम रेवा के पास पढ़ने जाओगी ।" देवकुमार का मुँह यह कहते क्षण घृणा से विकृत हो उठा ।

शरबती अपने पर खीझ उठी । उसका क्रोध न जाने कहाँ विलीन हो गया । वह सुबक-सुबक कर रोने लगी और रोते-रोते बोली—"तुम बड़े निठुर हो, न तो कुछ बताते हो और न कुछ करने ही देते हो, मुझसे तुम्हें नफरत है, तो मेरा गला घोंट दो, सारा झँझट खत्म हो जाये ।"

शरबती रोती रही, देवकुमार कुछ क्षण तक वहाँ बैठा रहा । फिर कोट पहनता हुआ घर से बाहर निकल गया और शरबती किंकर्त्तव्य-विमूढ़सी बैठी रही । उसने जाने वाले को रोका नहीं ।

× × ×

उस दिन की घटना से शरबती में एक नया परिवर्तन आ गया था । पढ़ने-लिखने की समस्या तो पीछे छूट गई । अब उसने देवकुमार के सम्मुख एक नई समस्या खड़ी कर दी ।

अब शरबती घर के बाहर कदम नहीं निकालती थी । कोई चाहे जितना कहे वह बिल्कुल परवाह नहीं करती यहाँ तक कि स्वयं देवकुमार के कहने पर भी वह उसके साथ घर से बाहर नहीं जाती । रेवा और

चारु शीला को बहुत बड़ी शिकायत थी कि शरबती उनके घर नहीं जाती। अक्सर रेवा देवकुमार से पूछ देतीं कि लाला तुमने क्या सिखा दिया है बहू को, वह मेरे घर आती ही नहीं जब भी कहो तो यही कहने लगती है कि अभी बहुत काम पड़ा है, आज जाने दो, कल आऊँगी।

देवकुमार रेवा की बातों का कुछ भी जवाब नहीं दे पाता। वह मन ही मन कुण्ठित हो जाता; किन्तु प्रकट में हँस कर टाल देता था।

देवकुमार और शरबती के बीच दिन पर दिन एक दूरी सी आती जा रही थी। दोनों ही नहीं सोच पाते थे; कि यह क्या हो रहा है और इसका परिणाम क्या होगा ?

## इक्कीस

एक दिन बैंक में राधामोहन ने देवकुमार को टोक दिया। प्रसंग शरबती का था और प्रश्न इस प्रकार था—"क्यों देव ! आजकल मैं एक नई बात देख रहा हूँ। घर में तुम्हारी भाभी कहती थी और मैं भी अनुभव करता हूँ कि दो-तीन महीने होगये, तुम्हारी बहू मेरे घर नहीं आई। इसके अलावा भी शायद वह अब कहीं नहीं जाती है। तुमने कुछ कहा है उससे, या गाँव में कोई बात चली थी, आखिर ऐसा क्यों है ?"

उस समय दोनों मित्र काम से थक चुके थे। क्लॉक की छोटी सुई पाँच और छः के बीच में थी। काम निपट चुका था और अब छः बजने की प्रतीक्षा थी। माघ का महीना था। देवकुमार कुर्सी से उठ खड़ा हुआ और उस पर टँगा हुआ नीला चेस्टर उठाकर पहनता हुआ बोला—"क्या बताऊँ राधामोहन बाबू ! मेरी जिन्दगी एक सूनी मंजिल है, मुझे साथी दुरुस्त नहीं मिला। यह बात हर एक से कहने की नहीं है, इसीलिये मैं चुप रहता हूँ। जानते तो होगे, हमारे गाँव के विद्याधर घुमनी मोहाल में रहते हैं; उसकी बहन कला ने गाँव में जाकर सबसे यह कहा-सुना कि

देवकुमार की बहू शहर में परदा नहीं करती। शरबती ने गाँव में इसकी चर्चा सुनी थी, तभी से वह स्वयं अपने आप घर में बन्द होकर रह गई। उसको किस साँचे में ढालूँ, मेरी समझ में नहीं आता। आप ही बताइये, ऐसी परिस्थितियों से गुजरता हुआ मनुष्य खुश कैसे रह सकता है?"

राधामोहन के सामने देवकुमार ने अपना अन्तर खोलकर रख दिया था। वह इस तथ्य को समझ गया और तनिक हँसकर आत्मीयता भरे स्वर में कहने लगा—"अब मेरी भी सुन लो देव! मैंने एक दिन तुमसे कहा था कि अपने कुछ सिद्धांत बना लो और उन पर चलो, फिर तुम्हारी जिन्दगी आत्म-विश्वास और सुख-संतोष से भर जायेगी। वैसे ही आज कहता हूँ कि आदमी आगे बढता है, पीछे नहीं लौटता। गाँव के समाज का इतना भय करोगे तो कैसे काम चलेगा? अपनी पत्नी को अपने अनुकूल बनाने की कोशिश करो, दुनियाँ की ओर न देखो। उस बेचारी का क्या दोष, उसके प्रति झीखने की अपेक्षा तुम्हें अपने पर झीखना चाहिये कि तुम्हारे अन्दर की पुरानी लकीर का फकीर रूढ़िवादी मनुष्य न तो संयम ही कर पाता है और न कुछ नई राहें ही चुन पाता है, तुम भटक रहे हो देव! अपने को सम्हालो।"

देवकुमार बैठ गया था। वह एकटक राधामोहन की ओर देखता रहा। उस समय वह गाम्भीर्य में डूब रहा था, राधामोहन अपनी बात कहे जा रहा था—"तुम मेरे दोस्त हो देवकुमार! और हम लोगों की दोस्ती भाई चारे की ही नहीं, बल्कि अपनत्व भरी है। तुम मेरा लिहाज करते हो और मै तुमसे स्नेह! तुम्हारा दाम्पत्य जीवन यदि दुखमयी रहा तो मुझे सन्तोष कभी नहीं होगा। घर पर कोई मास्टरनी लगा लो, सबसे पहले बहू की पढ़ाई जरूरी है और उसके बाद यह आवश्यक है कि तुम उसके साथ अच्छा व्यवहार करो। स्त्री को घृणा की दृष्टि से देखना ही उसकी आत्मा का हनन कर देता है। तुम्हें उत्साह बढ़ाना चाहिये न कि उसकी उपेक्षा।"

जब तक छः नही बज गये, राधामोहन कुछ न कुछ बोलता रहा और देवकुमार चुपचाप सुनता रहा। रास्ते भर उसके मस्तिष्क में उलझन रही और घर आते ही वह शरबती पर बिगड़ कर बोला—"तुम क्यों आगई यहाँ, मेरी नाक में दम कर रखी है, अच्छा होता अगर हमेशा गाँव में ही रहतीं।"

शरबती हक्का-बक्का सी हो, पति की ओर देखती हुई बोली—"क्या बात हो गई, कोई गलती मुझसे हो गई क्या ? आते ही बिगड़ने लगे, आखिर बात क्या है ?"

"बात—बात कुछ नही, मैं तुमसे बहुत तंग आगया हूँ शरबती ! तुम रोज नये-नये नाटक करती हो और आँखें मेरी नीची होती हैं। मैं............।"

"तुम्हारीं आँखें नीची होती हैं; क्या कह रहे हो यह ? मुझे बताओ मैं भी तो सुनूं कि कौन सी चूक मुझसे हुई है ?" शरबती हैरानी के स्वर में जल्दी-जल्दी यह सब कह गई। उसके हृदय की धड़कन तीव्र हो गई थी। बदन में घबड़ाहट वश कुछ कम्पन जैसी स्थिति उत्पन्न हो गई थी।

देवकुमार चुपचाप कुर्सी खींचकर बैठ गया और कहने लगा—"पता नही, तुम्हें कौन सी सनक सवार हो गई है, तुमने घर से बाहर न निकलने की जैसे कसम ही खाली है। रेवा भाभी अक्सर टोकती हैं और आज राधामोहन भी पूछ रहे थे। भला बताओ मै सबको क्या जवाब दूं। न तुम गाँव के मतलब की हो और न शहर के। सोचता हूँ मौनी अमावस्या पर माँ शहर जा रही हैं, उनके साथ तुम्हें मोतीपुर भेज दूं; क्योंकि तुमने मेरा जीना दूभर कर रखा है।"

इतना सुनते ही शरबती रोने लगी। वह पति के निकट पहुँच उसके पाँव पकड़कर बोली—"ऐसा न करो, मैं तुम्हारे बिना नही रह सकूँगी, मुझे अपने से दूर न करो।"

शरबती रोती रही और देवकुमार बड़बड़ाता रहा। साँझ, रात में बदलती रही और दम्पत्ति अपने-अपने व्यापार में व्यस्त थे। ऐसा लगता था कि दोनों ही बहुत हैरान थे, उलझनें उनके मस्तिष्क में ज्वार-भाटे का रूप ले रही थीं—एक तरफ क्रोध और दूसरी तरफ भय ने अबला को साथी बनाया और क्रोध ने पुरुष को। शरबती का दुःख पानी बनकर बह रहा था और देवकुमार का गुस्सा बड़बड़ाहट के रूप में हल्का पड़ता जा रहा था।

थोड़ी देर बाद देवकुमार जब आँगन में उठकर आया तो नीला आसमान स्याह प्रतीत हो रहा था। दिये की भाँति तारे टिमटिमा रहे थे। हवा खूब सर्दी भरी थी, वह पीछे मुड़कर अपना अलवान लेने के लिये कमरे में आया कि बाहर थोड़ा सा टहल आये-चित्त शात हो जायेगा। इतने में उसने देखा कि शरबती उसके पीछे आकर खड़ी होगई है और कह रही है—"चलो, जाते कहाँ हो ! छोटी-छोटी बातों से मन न खराब किया करो। मैंने सब तैयारी कर रखी है, अभी अँगीठी जलाती हूँ, तब तक कपड़े बदल डालो। लाओ, अलवान मुझे दो।" यह कहकर उसने पति के हाथ से अलवान ले लिया और उसको एक तरफ रख; मुस्कराती हुई उसका कोट उतारने लगी।

## बाईस

रोहन की परीक्षा आरम्भ होने के दो दिन पहले ही कला कानपुर आ गई। वह उसी दिन तीसरे पहर शरबती के घर गई; क्योंकि सुखरानी ने लड़के और बहू को सन्देशा भेजा था कि आमों की फसल आ रही है। इसी महीने आठ-दस दिन के लिए दोनों गाँव चले आयें, शहर में अच्छे देशी आम कहाँ खाने को मिलते हैं।

बैशाख का महीना था। गर्मी जेठ जैसी पड़ रही थी। कला के आते ही शरबती ने पंखा खोलकर उसके पास रख दिया, फिर सुराही के ठण्डे पानी में शक्कर का शरबत बना, उसमें नीबू निचोड़ कर ले आई।

कला ने पहले थोड़ी दुनियांदारी की और संकोच का प्रदर्शन किया। फिर ही-ही करके हँसती हुई शरबत का गिलास समाप्त कर दिया।

शरबती सन्देशा सुन चुकी थी और अब कला ने कहना शुरू कर दिया था कि परसों से मेरे रोहन का इम्तिहान शुरू होगा। मैं तो देवी-देवता मनाती हूँ बहू, कि वह पास हो जाय और हमारे अन्धेरे घर को

उजाले से भर दे। बड़ा होनहार है मेरा भतीजा, पढ़ने में मन खूब लगाता है। मुझसे नहीं रहा गया तभी यह सोचकर भागी चली आई कि इम्तिहान के दिनों में भौजी ( भाभी ) ठीक तरह से रोहन की देख-भाल नहीं कर सकेगी, मैं रहूँगी तो उसको हर बात का आराम रहेगा। और सच्ची बात तो यह है बहू कि हमारे घर का सारा दारमदार रोहन पर ही है। वह हमारे सहारे की लकड़ी है, मै तपेश्वरी महारानी का परसाद चढ़ाऊँगी, जब हमारा रोहन पास हो जायेगा।

इस पर शरबती ने भी रोहन के पक्ष में बहुत सी बातें कीं। इसके बाद कला ने दूसरा रूप बदला। वह कहने लगी—'अरे बहू अपना गाँव अब वैसा नहीं रह गया जैसा पहले था। जानती हो, वहाँ लोग क्या कहते थे।"

"क्या कहते थे लोग दिदिया !" शरबती चौंककर पूछने लगी।

कला अजीब प्रकार का मुँह बनाकर बोल उठी—"बहू ! न फूटी सही जाती है और न आँजी। अगर तुम यहाँ न रहो तो देवकुमार को खाना बनाने में कितनी तकलीफ हो और वहाँ गाँव में बूढ़ी-टेढ़ी कहती हैं कि देवकुमार को देखो, घर में माँ हमेशा बीमार रहती है, खाँसी और सांस के मारे बेचारी से चूल्हे के पास नहीं बैठा जाता। कभी-कभी तो बाप को रोटियाँ सेंकनी पड़ती हैं; लेकिन उसकी बहू क्या गले का हार है। कतिकी की गई होली में आई और आठ दिन रह कर चली गई। अरे महीना पन्द्रह दिन तो रहती। बेचारी बुढ़वा-बुढ़ई अपने हाथ रोटियाँ सेंकते हैं और लड़का-बहू शहर में चैन की बंशी बजाते हैं।"

यह कहकर कला तनिक रुकी और फिर खाँसकर गला साफ करती हुई बोली—"ऐसी ही बातें हैं गाँव की। मैं तो सुनती हूँ लेकिन दूसरे कान से निकाल देती हूँ।"

शरबती चुपचाप सुन रही थी। वह समझ गई कि कला एक नया पचड़ा लाई है। ये बातें इसने गाँव में भी सबसे कही सुनी होंगीं।

यहाँ मुझे इस ढङ्ग से समझा रही है जैसे मेरी बहुत बड़ी भलाई चाहने वाली है।

ऐसा सोचते क्षण शरबती को एक शरारत सूझी। वह धीरे से बोली—"दिदिया! वह मसल भूल गई कि काजी क्यों दुबले हैं शहर के अन्देशे में। यह तो दुनियाँ है लोग कुछ न कुछ बकते ही रहते हैं।"

यद्यपि शरबती ने कला पर मीठा व्यंग्य किया था। लेकिन वह नहीं समझ पाई और कोरा कोरा अपनत्व दिखाती हुई बोली—"हाँ बहू और क्या? मुझसे जिसने कहा उसको मैंने खूब फटकारा। वही लोकई महाराज की बहू बहुत चिबिड़-चिबिड़ करती थी जब मैंने उसके सामने उसका कच्चा चिट्ठा खोलकर रख दिया, तो खुशामद करने लगी, हाथ जोड़ने लगी और बहुत ही चिरौरी की, कि कला दिदिया किसी से कहना मत।"

शरबती तनिक हँस दी और उसी मुद्रा में कहने लगी—"अच्छा किया दिदिया। तुमसे वह न डरती तो फिर जाती कहाँ? क्योंकि उसका पाप तो तुमसे छिपा नहीं है और झूँठे से तो भगवान भी डरते हैं।"

अब कला कुछ चौंक गई। वह समझ गई कि शरबती उसकी हँसी उड़ा रही है। वह मुँह का भाव बदल कर बोली—"तुमने क्या कहा बहू, मैं समझी नही?"

सुनते ही शरबती तत्परता के साथ बोल उठी—"यही कि लोकई महाराज की बहू कितनी झूँठी है, भगवान से भी नहीं डरती।"

अब स्थिति और भी अधिक स्पष्ट हो गई थी। कला भली भाँति समझ गई कि शरबती ने उस पर छिपी चोट की है। पहले कुछ कहा, अब कुछ और कह रही है जैसे मैं बुद्धू हूँ कुछ समझती ही नहीं।

लेकिन मन स्थिति खराब होने पर भी कला ने प्रकट में बड़ी कुशलता से काम लिया। उसने शरबती की हाँ में हाँ मिला दी और जब थोड़ी देर और बैठकर वह चलने को उद्यत हुई, तो शरबती उसे

आग्रह करके बार-बार बैठा लेती, किन्तु कला को यह बिल्कुल अच्छा नही लगता था।

थोड़ी देर बाद जब कला शरबती के घर से वापस लौट रही थी तो उसका मन कह रहा था कि यह मजाल देवकुमार की बहू की! जो मुझ पर छींटे कसे। तनिक भी हया-शर्म नहीं है उसको। बेड़ी बहनी है, बुराई से तो डरती ही नहीं। मैंने तो एक चलन की बात कही थी, उसको बुरा लगा तभी घुमा-फिराकर मुझ पर ताना कसते हुये बोली—कि झूँठों से तो भगवान भी डरते हैं और जब बाद में पूछा तो फौरन बदल गई। बड़ी चालाक बनती है। मेरा नाम कला नहीं, अगर गाँव भर में थू-थू न करवा दी इसकी! कल की छोकड़ी मुझे उल्लू बनाती है।

कला नङ्गे पैर थी। साँझ होने पर भी अभी सड़क तप रही थी और उसकी गर्मी से अधिक उसके मस्तिष्क में उलझन थी। वह जल्दी-जल्दी कदम उठा रही थी और उससे भी प्रबल वेग से उसके मानस-जगत में विचारों की दौड़ भाग मच रही थी।

## तेईस

रोहन की परिक्षा चल रही थी और इन्हीं दिनों चारु का भी परिक्षा समय आ लगा था । रेवा चारु को बहुत स्नेह करती थी । वह पिछली परीक्षाओं में भी बराबर उसके साथ रही थी । यह उसकी अन्तिम परीक्षा थी । अतः रेवा पति के साथ लखनऊ चली आई ।

राधामोहन पत्नी को छोड़ कर चले गये । वह होस्टल में ही चारु के कमरे में ठहरी थी । एक दिन वह उसके साथ माई से भेंट करने गई तो वहाँ शोभा बैठी मिली । देखते ही शोभा उसके गले से लिपट गई और शिकायत भरे स्वर में कहने लगी—"वाह भाभी ! इतने दिनों में आई हो और मुझसे नहीं मिलीं । मुझे उसी दिन मालूम हो गया था कि तुम आई हो । राधामोहन भइया तुम्हारे ननदोई को स्टेशन पर मिले थे ।"

आँगन में चारपाई बिछी थी । बूढ़ी माई उस पर बैठी थी रेवा उनके निकट जा बैठ गई और शोभा से बातें करने लगी ।

विभा अपनी मौसी चारुशीला के साथ एक ओर

चौकी पर बैठ गई और चारु उसकी बलायें लेने लगी।

देर तक रेवा माई और शोभा से बातें करती रही। इस बीच न शोभा बोली चारु से और न वह उससे। जब शोभा ने बहुत आग्रह किया और रेवा को उसने घर ले जाने के लिए और विवश कर लिया तो चारु भाभी और माई के सम्मुख यह बहाना करके वहाँ से चल दी कि पढ़ना काफी है। मैं होस्टल जाती हूँ; कल का पर्चा बहुत कठिन है।

शोभा रेवा को लेकर अपने घर पहुँची, तब रात हो आई थी। सदाशिव घूमने जाने की तैयारी कर रहा था, पत्नी और पुत्री की प्रतीक्षा में अब तक घर में रुका था। सहसा सामने रेवा को देख कर वह चौंक उठा और आगे बढ़कर नमस्ते करता हुआ बोला—"भाभी तुम! मेरे बड़े भाग्य जो आज दर्शन हो गये। आओ बैठो।" कहकर उसने सोफा सेट की ओर इंगित किया।

रेवा बैठ गई और चारु भी उसके निकट ही आसीन हो गई। सदाशिव तनिक परे हट एक इजी चेयर पर आराम में पैर फैला बैठ गया। पंखा पूरी रफ्तार से नाच रहा था। सदाशिव और रेवा में वार्ता देख शोभा वहाँ से उठ गई और रेवा के लिये स्वयं जाकर लस्सी बनाने लगी।

रामू बर्फ लेने गया था। विभा अपनी माँ के पास बैठी थी। कमरे में श्वेत रॉड की दूधिया रोशनी फैल रही थी। बात चीत के सिल-सिले में धोके से सदाशिव के मुँह से चारुशीला का नाम निकल गया किन्तु तत्क्षण ही प्रसंग बदल कर वह दूसरी बात करने लगा। रेवा समझ गई कि चोर की दाढ़ी में तिनका होता है और कसूरवार की आँखें कभी सामने नहीं होतीं। सदाशिव अपने किये पर लज्जित है तभी वह चारु के नाम से चौंकता है!

शोभा अपने हाथों में लस्सी से भरे दो गिलास लिये वहाँ आ

पहुँची। बात चीत का प्रवाह रुका। आपस में हठ प्रतियोगिता चलने लगी। रेवा कह रही थी—"लो शोभा तुम भी पिओ और शोभा संकोच कर रही थी। आखिर उसे रामू से कहना ही पड़ा कि एक गिलास और बना ला।"

अब शोभा भी बात चीत में अपना सहयोग प्रदान करने लगी सहसा उसने रेवा से पूछ लिया—"भाभी चारु का व्याह कब करोगी; बहुत सयानी हो गई है ?"

रेवा सहज स्वर में कहने लगी—"अभी जब तन डाक्टरी पास नहीं कर लेगी, व्याह कैसे हो सकता है। इसके बाद ही विचार किया जायेगा।"

"लेकिन भाभी ! जमाना बहुत खराब है और फिर इतने बड़े शहर में वह अकेली रहती है। पिताजी के घर में रहती थी, तो उनकी जिम्मेदारी थी। होस्टल में लड़कियाँ आजादी से रहती हैं, मैं यह नहीं कहती कि चारु में कोई बुराई है; लेकिन इतना जरूर कहूँगी कि वह स्वभाव की बड़ी तेज है। जानती तो हो अपने ननदोई को कितने मिलन सार हैं, संकोच तो जैसे इन्हें आता ही नहीं। उस दिन मैं घर में नहीं थी, चारु आई और ये उसे आग्रह करके बैठाने लगे। इतने ही में वह तिनग गई और बात का बतंगड़ बना दिया। सच कहती हूँ भाभी, मैं तो उससे बहुत डरती हूँ। तुम हर साल आती रही और मैने तुमसे नहीं कहा, लेकिन आज बात मुँह से निकल गई। इसलिए मैं उससे बात करते भी डरती हूँ।"

रेवा गम्भीर स्वभाव की स्त्री थी। उसे उलझना और मामले को तूल अर्ज देना बिल्कुल पसन्द नहीं था। उसने शोभा का मन रखने के लिए मुँह देखने पन की बात कह दी। वह बोली—"आज के लड़के लड़कियों में बुद्धि तो जैसे है ही नहीं शोभा। तुम्हें नाराज नहीं होना चाहिये। चारु से बड़ी होने के नाते उसे माँफ कर देना चाहिये।"

इस पर शोभा सूखी हँसी हँस पड़ी और कृत्रिम आत्मीयता का प्रदर्शन करती हुई बोली—"कैसी बातें करती हो भाभी ! चारु को मैं कोई गैर समझती हूँ क्या ?"

पत्नी के समर्थन में सदाशिव भी बोल उठा—'अरे भाभी ! दुनियां का दस्तूर है कि जब कोई छोटा बराबर का हो जाता है तो अपना बड़प्पन रखने के लिए उससे दबना पड़ता है। कोई अपनों को छोड़ थोड़े ही देता है चारु में अभी बचपना है।"

रात के नौ बज गये और तीनों की बात चीत समाप्त होने ही नहीं आ रही थी। रेवा जाने की जल्दी कर रही थी। वह अकेले रामू के साथ होस्टल जाना चाहती थी; लेकिन, सदाशिव और शोभा को यह अच्छा नहीं लगा। स्वयं सदाशिव उसे होस्टल तक पहुँचा गया और रेवा ने जब कमरे में प्रवेश किया तो वह किसी गहरे विचार में डूबी बैठी थी। कमरे का पंखा खूब तेजी से चल रहा था जिससे उसकी श्वेत रेशमी साड़ी का पल्ला उड़ रहा था।

## चौबीस

जिस तरह अनुभवहीन व्यक्ति अपने भले बुरे की पहचान नहीं कर पाता, वैसे ही असन्तुलित आदमी भी दिन को रात और रात को दिन कहने लगता है। देवकुमार के साथ यही अपवाद था। वह कुशल पारखी नहीं था ऐसी बात नहीं उसमें क्षमता भी थी दूरदर्शिता भी, लेकिन पुरानी रूढ़ियाँ मकड़ी का जाला बन, उसके मानस प्रदेश पर छा गई थीं, जिससे वह शरबती को हेय दृष्टि से देखने लगा।

राधामोहन देवकुमार की मन: स्थिति को भली भाँति समझता था। अत: वह उसे कभी-कभी छेड़ देता। जब से रेवा लखनऊ गई थी तभी से देवकुमार के विशेष आग्रह पर वह भोजन उसी के घर पर करता था। इस बीच अक्सर उसकी शरबती से बातें होतीं जिनमें वह पाता था कि शरबती कुलीन खानदान की लड़की है, उसके विचारों में कुलीनता है। वह आँसू पी सकती है, आहों से खेल सकती है और अपनी मर्यादा का बहुत बड़ा ध्यान रखती है।

एक रात को जब राधामोहन भोजन करने देवकुमार के घर पहुंचा तो वह कहीं बाहर गया हुआ

था। शरबती अँगीठी के पास बैठी कढ़ाई में दूध छान रही थी। राधामोहन को देखते ही उसने चारपाई बिछा दी और शिष्ट स्वर में बोली—"आइये बैठिये। वे दरजी के यहाँ गये हैं, आते ही होंगे।"

फिर जब राधामोहन बैठ गया तो वह पुनः कहने लगी—"खाना देर से तैयार रखा है, आठ बज गये हैं; चलिये आपको परोस दूँ।"

राधामोहन को शरबती की सरलता पर हँसी आगई। वह धीरे से बोला—"ऐसी क्या जल्दी है बहू, आ जाने दो, देव को।"

तब शरबती राधामोहन के निकट फर्श पर बैठ गई और उत्सुक होकर पूछने लगी—"कैसे परचे हो रहे हैं चारु के, कुछ खबर मिली। मुझे तो पूरा विश्वास है कि चारु बीबी पास हो जायगी।"

राधामोहन ने संक्षिप्त सा उत्तर दिया। उसने कहा—"उम्मीद तो मैं भी यही करता हूं।" फिर एकाएक उसके मुँह से निकल गया—"घर में बैठे बैठे तुम्हारी तबियत नहीं ऊबती बहू। सुना है आजकल तुमने सभी जगह का आना-जाना बन्द कर रखा है, क्या बात है? देव से मैंने कई बार पूछा। उसने मुझे यह बताया कि विद्याधर की बहन ने गाँव में जाकर सबसे यह कहा है कि देवकुमार की बहू शहर में परदा नहीं करती क्या इसीलिये तुमने ऐसा किया है?"

आँगन के कोने में स्टूल पर रखा मूविंग टेबिल फैन दोनों को हवा दे रहा था। रात चाँदनी थी और अम्बर में हीरे जगमगा रहे थे वायु अपने रेशमी तारों पर पेंगे-पेंगे भर-भर कर झूल रही थी। शरबती के मुख पर चाँदनी पड़ रही थी। वह छोटा सा घूँघट, जो केवल मत्थे तक ही सीमित था, डाले थी। पता नहीं उसे कितनी श्रद्धा थी रेवा और राधा मोहन से। वह दम्पति को अपने घर का ही एक अङ्ग समझती थी। वह संकोच भरे स्वर में धीरे २ बोली—"राधामोहन बाबू! मेरी हालत तो वह है कि न जिन्दा में हूँ न मुर्दा में। किसी की बुराई करना मुझे आता नहीं। मैं उस रास्ते को ही छोड़े देती हूँ जिसे सही होने पर भी

लोग गलत कहने लगते हैं। और सीधी सी बात तो यह है कि घर गृहस्थी में रहकर सभी को खुश रखना पड़ता है। ऐसे में अगर कोई निन्दा भी करता है तो मुझे बुरा नहीं लगता। आप ही बताइये कि आखिर में घर से निकलना न बन्द करती तो और क्या करती?"

राधामोहन सुनकर गम्भीर हो गया और लम्बी सांस छोड़कर बोला—"ठीक कहती हो बहू, लेकिन मन को मारना भी सबसे बड़ा पाप है। छोटी २ बातों को इतना महत्व क्यों देती हो? मैं तुम्हें बताता हूं सुनो, जब गाँव में रहो तो वहाँ के रीति-रिवाज अपनालो और शहर में, शहर के रिवाज पर चलो। फिर तुम्हें कोई कुछ नहीं कहेगा और कहेगा भी कैसे, मौका ही नहीं मिलेगा।"

शरबती हाँ द्योतक सिर हिलाकर रह गई और राधामोहन फिर कहने लगा—"देवकुमार की भी तन्दुरुस्ती इधर कुछ गिरी हुई नज़र आती है। वहाँ गाँव वालों के कहने-सुनने से बहुत डरता है और यही कारण है कि तुम दोनों हमेशा उलझन में बने रहते हो। अपने घर को बनाना सीखो बहू, दुनियाँ बनता किसका देखती हैं, उसे तो बिगड़ने पर हँसने का मौका मिले, यही चाहती है। गाँव में सास-ससुर जैसा बताएँ वैसा करो और शहर में इस बात का ध्यान रखो कि देव तुमसे कभी नाराज न होने पाये। हिम्मत करो, साहस से ाम लो, घबड़ाकर चुप बैठ जाने से कुछ नहीं होता।"

शरबती को राधामोहन की बातें बहुत भली लग रही थीं। वह मृदु स्वर में बोली—"मैं यही कहती हूँ, लेकिन इस पर भी शान्ति नही मिलती और अब आगे से ज्यादा सावधान रहूँगी। क्योंकि सास-ससुर और सगे-सम्बन्धी सभी को खुश रखना है। मैं·········।"

शरबती की बात जहाँ की तहाँ पर ही रुक गई। देवकुमार आ गया था और आते ही राधामोहन को बैठा देख वह विनयी स्वर में

कहने लगा––"आपको देर तो नहीं हुई, मैंने बहुत जल्दी की; परन्तु दर्जी ने नाप लेने में बहुत देर कर दी।"

"नहीं, नहीं, अभी तो आकर बैठा हूँ।" राधामोहन ने तत्काल जवाब दिया और उठकर देवकुमार के साथ उसके कमरे में चला गया।

थोड़ी देर बाद जब राधामोहन, देवकुमार के घर से भोजन करके वापस लौटा तो वह रास्ते भर शरबती के विषय में ही सोचता रहा और जब तक नींद नहीं आगई उसका मनन चलता रहा कि शरबती बहुत सीधी है, वह जितनी सुन्दर है उतनी ही सुशील भी। उसमें कूट-कूट कर गुण भरे हैं। देवकुमार जिद्दी आदमी है, वह देवी को दासी बनाकर रखना चाहता है। पुरानी रूढ़ियाँ उसे इस बात के लिये मजबूर कर रही हैं, कितनी शालीनता, कितना संयम और कितनी संमाई है–शरबती में। आज की बातचीत में मैंने पाया कि देवकुमार उसकी निन्दा कर सकता है और कहता है; लेकिन वह उसके प्रति शिकायत का एक शब्द भी किसी से नहीं कह सकती। समझ में नहीं आता कि देवकुमार अपनी आँखों पर पुरानी परम्परा का चश्मा क्यों लगाये है, जिससे वह हीरा को कोयला समझने लगा है। काश! इन दोनों का दाम्पत्य जीवन, सुख के प्रवाह में बह सके, तो मुझे बहुत हर्ष होगा।

# पच्चीस

राधामोहन की बातों का प्रभाव शरबती पर पूर्णांशों में पड़ा और उसने भरसक प्रयत्न किया कि पति की उदासी दूर कर सके; लेकिन देवकुमार उसकी हर बात को एक बकवास समझता था और उसके प्रत्येक काम में उसे फूहड़पन नजर आता। शरबती उससे जितना हँसती-बोलती उतना ही वह चिढ़ता रहता था। प्रोत्साहन आदमी को आगे बढ़ाता है और हतोत्साहित करने पर उसकी आत्मा का हनन हो जाता है। आखिर शरबती के साथ केवल यही युक्ति रह गई थी कि वह अधिकांश पति के सामने मौन ही रहती और उस समय भी जवाब नहीं देती जब वह उन पर क्रोध करता था, बिगड़ता था। आवश्यकता से अधिक वह बोलती ही नहीं थी।

देवकुमार शरबती के इस रवैय्ये को भी अच्छा नहीं समझता था। अक्सर उसका अन्तर्मन उससे कहा करता कि अब शरबती मगरूर हो गई है। उस निर्दयी ने नारी की पीर कभी नहीं पहिचानी। अपने मन की करता रहा। और निष्कर्ष यह निकला, कि

दम्पति के बीच जो थोड़ी सी दूरी थी वह और अधिक बढ़ गई।

× × ×

रोहन की परीक्षा समाप्त हो गई थी। कला गांव जाना चाहती थी लेकिन इसलिए रुक गई थी कि रोहन की सालगिरह होनी थी। एक दिन—तीसरे पहर हीरा शरबती के घर गई। उस समय वहाँ देवकुमार भी मौजूद था। आज छुट्टी थी, इसलिए वह घर में लेटा हुआ एक पुस्तक पढ़ रहा था। शरबती पलंगपोश पर डी० एम० सी० से फूल काढ़ रही थी। वह आँगन में बैठी थी और आँगन की धूप दीवाल के एक कोने पर चढ़ रही थी। हीरा ने घर में प्रवेश करते ही शरबती की मीठी भर्त्सना करते हुये कहा—"बड़ी गरम हवा चल रही है, तुम आँगन में क्यों बैठी हो दुलहिन ?" शरबती उठकर खड़ी हो गई और लपक कर हीरा के पांव लगती हुई बोली—"जीजी ! भीतर भी उमस है और पंखे की हवा तो लपट जैसी लगती है। जी ऊबा तो बाहर आकर बैठ गई।" यह कह वह उसको पति के कमरे में लिवा गई। देवकुमार उठ कर बैठ गया और हीरा के बैठने के लिए शरबती ने उसकी ओर कुर्सी बढ़ा दी।

किन्तु गाँव की कट्टर मर्य्यादा की पालक हीरा कुर्सी पर नहीं बैठी। वह फर्श पर बिछे बोरे पर बैठ गई और देवकुमार से पूछने लगी—"कहो, अच्छे तो हो भइया ! बहुत दिनों से घर नहीं आये ?" यह कह कर हीरा शरबती की ओर उन्मुख हुई और तत्क्षण ही कहने लगी—"और तुम्हारी दुलहिन तो भइया, कभी हमारे घर आती ही नहीं।"

इस पर शरबती तनिक मुस्करा दी और देवकुमार हीरा का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करते हुए कहने लगा—"भाभी ! सब तुम्हारी कृपा है। हाँ इधर में करीब आठ-दस दिन से नहीं पहुंच पाया।

शरबती दोनों को बातों में लगा देख हीरा के लिए जलपान का सामान लेने दूसरे कमरे में चली गई और देवकुमार ने पंखे की स्पीड

और तेज कर दी तभी हीरा कहने लगी—"अच्छा तो सुनो, कल रोहन का जन्म दिन है, दोनों समय खाना वहीं खाना और दुलहिन को छटनियाँ खींचने के लिए मैं सुहागिल ( सुहागिन ) न्यौते जाती हूँ। सबेरे ही रोहन को भेज दूँगी, उसके साथ चली आयेगी।"

"बहुत अच्छा भाभी ! तुम रोहन को क्यों भेजोगी, मैं खुद ही बैंक जाने से पहले भेज जाऊँगा।"

देवकुमार की यह बात कमरे में प्रवेश करती हुई शरबती ने भी सुनी। वह कुछ समझ नहीं पाई और जब हीरा के सम्मुख नमकीन सेव और शकरपारे की तश्तरी रखी, तो वह अपनी बात दुहराने लगी जो उसने पहले देवकुमार से कही थी।

शरबती हीरा को कुछ जवाब दे, इसके पूर्व ही देवकुमार इस भय से बोल उठा कि अभी से शरबती कोई बहाना न कर दे। वह हीरा से कहने लगा—"तो बस ठीक रहा भाभी मैं बैंक जाने से पहले ही तुम्हारी देवरानी को तुम्हारे घर छोड़ता जाऊँगा।"

शरबती निचला होंठ दाँत से काटने लगी। वह पति की चालाकी समझ गई और हीरा से उस प्रसंग की बात न करके इधर-उधर की बातें करने लगी।

जब हीरा चली गई और शरबती अकेली रह गई तो देवकुमार उससे कहने लगा—"सुना तुमने, रोहन की माँ क्या कह गई है ?"

"सुन लिया।"

शरबती के इस छोटे से उत्तर से देवकुमार को सन्तोष नहीं हुआ। वह अभी से उलझन में नहीं पड़ना चाहता था इसीलिए शान्त रहा और जल्दी-जल्दी किताब के पन्ने पलटने लगा।

शरबती के हाथ में सुई थी। वह काढ़ने में व्यस्त थी और देवकुमार किताब के पन्ने पलटता हुआ सोच रहा था कि अगर सबेरे भी शरबती अपनी जिद पर अड़ी रही वह विद्याधर के घर न गई तो क्या

होगा ? कुछ भी हो मैं मुलाहिजा नहीं करूँगा। मैं जो कहूँगा उसे करना पड़ेगा और करेगी कैसे नहीं। जब सीधी अँगुलियों से घी नहीं निकलेगा तो अँगुलियाँ टेढ़ी करनी पड़ेंगी। मैं उसके साथ सख्ती का व्यवहार करूँगा।"

पंखा सर्र बाँधे चल रहा था जिससे पलंग की चादर हिल रही थी और देवकुमार के काले घुँघराले बाल लहरा-लहरा कर रह जाते। और शरबती बैठी थी उसी बोरे पर जिस पर पहले हीरा बैठी थी। उसकी दृष्टि फ्रेम पर थी।

## छब्बीस

देर तक देवकुमार किताब में उलझा रहा, फिर सर से पाँव तक चादर तान कर लेट रहा। शरबती तीसरा पहर बीतता देख उठ खड़ी हुई उसने सुई रख दी और बाहर आँगन में आ, कचोड़ियों के भिगोई उरद की दाल पीसने लगी।

जब दिन छिप गया और उजाले का स्थान अँधेरा लेने लगा तो शरबती ने पति के पास जा, धीरे से उसकी चादर हटाते हुये कहा—"अरे उठो, देखो शाम हो गई।"

देवकुमर उठ कर बैठ गया। वह सोया ही कब था, आँखें मूँदे लेटा था। विचारों की आँधी उसके मतिष्क में चल रही थी, जिससे परेशान हो उठा। वह उठकर नल पर गया मुँह हाथ धोया और अभी बालों पर कंघी ही कर रहा था कि मुस्कराते हुये राधामोहन ने घर में प्रवेश किया। वह देवकुमार के निकट आकर कहने लगा—"देव! चारु और तुम्हारी भाभी चार बजे की बस से आ गई हैं। मैने कहा तुम्हें बता आऊँ; इसी लिये चला आया।"

"अच्छा!" यह कर देवकुमार शरबती के पास

जा पहुंचा और कहने लगा—"लखनऊ से चारु और भाभी आगई हैं, चल रही हो ?"

राधामोहन देवकुमार के पीछे जाकर खड़ा हो गया था और शरबती कह रही थी —"अभी कैसे जा सकती हूँ, रसोई बनानी है । मैं कल दोपहर को जाऊँगी तुम हो आओ ।"

इस पर देवकुमार ने जोर दिया । वह शासित स्वर में बोला— "खाना बाद में बन जायेगा, तुम अभी चलो । मैं भी चल रहा हूँ ।"

"कह तो दिया कि अभी नहीं जा सकूंगी, तुम तो समझते नहीं हो । अभी बहुत काम पड़ा है ।"

शरबती की बात सुन कर देवकुमार खीज उठा और झल्लाकर बोला—"छोड़ो काम को, मं कहता हूँ वह सुनो । कपड़े बदलो और चलो ।"

मैं नहीं जा पाऊँगी, तुम मेरे पीछे क्यों पड़े हो ? "यह कह कर तमतमाती हुई शरबती वहाँ से चली गई । राधामोहन ने लक्ष्य किया कि इस समय शरबती की भौहों में बल पड़ रहे थे और आक्रोश से उसका चेहरा एकदम लाल हो गया था ।"

तत्पश्चात राधामोहन ने देवकुमार की ओर निगाह उठाई । तब उसने देखा कि उसकी आँखों से अङ्गारे बरस रहे हैं और क्रोध का इतना आधिक्य है उसमें कि नथुने जोर-जोर से फड़क रहे हैं । वह निकट जा, मित्र के कन्धे पर हाथ रख कर बोला—"चलो देव, बहू इस समय फुरसत में नहीं है, वह फिर चली जायगी ।"

देवकुमार राधामोहन को कुछ भी जवाब नहीं दे सका । वह चुपचाप उसके साथ चल दिया और शरबती अँगीठी में कोयले डाले उसको धौंकने में व्यस्त रही । उसने इस ओर ध्यान भी नहीं दिया ।

देवकुमार और राधामोहन दोनों पथ पर चले जा रहे थे । उभय पक्ष मौन थे । राधामोहन सोच रहा था कि देवकुमार का दकियानूसी-

पन शरबती को आगे नहीं बढ़ने देता है। तभी उसने बहाना करके टाल दिया, मेरे घर नहीं आई। अच्छा है; अगर अब भी देवकुमार की आँखें न खुलीं तो कब खुलेंगी ?

और देवकुमार काले नाग की तरह भीतर ही भीतर फुफकार रहा था कि वापस जाकर शरबती का एक भी कर्म बाकी नहीं रखूँगा। राधामोहन के सामने उसने मेरी तौहीन की है, अधिक अच्छा तो यह रहेगा कि अब मै दो-चार दिन में इसको गाँव ही छोड़ आऊँ क्योंकि शहर में आकर इसका दिमाग सातवें आसमान पर चढ़ गया है।

रात का रंग निखर रहा था। सड़कों के इर्द-गिर्द दुकानों पर बिजली के बल्ब जगमगा रहे थे। सड़कों पर भीड़ बढ़ चुकी थी। जन-कोलाहल से वातावरण मुखरित हो रहा था; किन्तु देवकुमार के मन में उलझन थी, वह अशान्त था और सोच रहा था, मैं बदनसीब इन्सान हूँ, तभी मुझे शरबती जैसी स्त्री मिली जो जिन्दगी में आकर एक समस्या बन गई है।

## सत्ताईस

घर आकर देवकुमार शरबती पर बहुत लाल-पीला हुआ; किन्तु उसने तनिक भी परवाह नहीं की। वह अभ्यस्त हो गई थी पति का क्रोध सहने की। देव-कुमार बड़बड़ाता रहा और वह चुपचाप सुनती रही। फिर जब वह चुप हुआ तो पास जाकर धीरे से बोली—"चलो, खाना खालो। मिल आये रेवा दीदी और चारु से, क्या कहती थीं ?"

"कहती थीं तुम्हारा सिर ! जाओ, बकबक न करो, अपना काम देखो। न जाने कौन से पाप किये थे उस जन्म में, जो तुम जैसी मूर्ख, गँवार स्त्री मिली। न तुम्हें मौत है और न मुझे। मैं············।"

"हाय राम ! यह क्या कहते हो तुम ?" शर-बती ने यह कहने के साथ ही पति के मुँह पर हाथ रख दिया और फिर कुछ भयभीत स्वर में जल्दी-जल्दी कहने लगी—"न जाने आजकल तुम्हें क्या हो गया है, हमेशा उखड़ी २ बातें किया करते हो और यह तो मैं जानती हूँ कि इस जिन्दगी में तुम मुझसे हँसकर कभी नहीं बोलोगे ? खैर छोड़ो, यह तो अपना २ भाग्य है, चलो खाना तैयार है, देर करने से क्या फायदा ?"

वकुमार सीधा होकर चारपाई पर लेट गया और खीझ भरे स्वर में बोला—"मुझे भूख नहीं है शरबती, तुम जाओ।"

"वाह, तुम्हारी भूख, यह मैं कैसे मानलूँ कि तुम्हें भूख नहीं है। चलो, उठो, उठते क्यों नहीं ?" यह कहने के साथ उसने उसका हाथ पकड़कर अपनी ओर खींचा।

किन्तु देवकुमार ने देह एकदम ढीली कर दी। शरबती अपना-सा मुँह लेकर रह गई। वह रुआसी होकर बोली—"उठते क्यों नहीं, हैरान करते हो, आजकल पता नहीं कितनी ज़िद और कितना गुस्सा आगया है तुममें। जब देखो तब तुम्हारी भौहें तनी ही रहती हैं।"

लेकिन देवकुमार पर शरबती की बातों का तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ा। उसने करवट बदल ली और मुँह घुमा कर लेट रहा। शरबती उसकी अनुनय में व्यस्त थी और वह खीजता रहा, सोचता रहा।

देवकुमार के मन में यह बात उसको कचोट उठी कि यदि मैं इस समय भोजन नहीं करता हूँ और शरबती को नाराज कर देता हूँ तो बहुत सम्भव है कि वह सबेरे विद्याधर के घर न जाये और मुझे शर्मिदा होना पड़े। अतः अपनी बात बनाने के लिये इस समय मुझे उसका मन रखना पड़ेगा। यही सोच कर वह उठा और हाथ पैर धो रसोई में पहुंच गया।

× × ×

जिस समय पो फठ रही थी और रात के कूँच के नक्कारों पर मुर्गों की बाँग; मस्जिदों की अजान और मन्दिरों के टनटनाते हुये घण्टे बज रहे थे, तभी देवकुमार की आँख खुल गई। उठते ही वह फिर सोचने लगा कि गृहस्थी का जुआ अकेला आदमी नहीं खीच सकता। इसके लिये उसे स्त्री का भी सहारा लेना पड़ता है। कभी पत्नी रूँठती है तो पति मनाता है और ऐसे ही रूँठे हुये पति को स्त्री मनाती है; लेकिन जब दोनों ओर से तनाव पैदा हो जाता है तो समस्या बहुत जटिल हो

आती है। यही परिस्थिति मेरे साथ भी जुड़ी है। अगर आज शरबती विद्याधर के घर न गई तो मैं उससे दूर ही दूर रहने की कोशिश करूँगा और उसे पत्नी नहीं निर्वासिता समझ लूँगा।

थोड़ी देर बाद सबेरा मुखरित हुआ। प्राची की लाली चाँदी की चमक में बदल गई और सुनहली किरणें घर के आँगन में आकर खेलने लगीं। शरबती दैनिक कार्यों में व्यस्त थी और देवकुमार भी नित्य-कर्म से निवृत्त हो, जलपान कर, दैनिक समाचार पत्र ले बैठ गया। जब उसने देखा कि शरबती खाना बनाने जा रही है तो रसोई द्वार पर आकर उससे बोला—"यह क्या कर रही हो, तुम्हें चलना नहीं है विद्याधर के घर क्या ?"

"चलना क्यों नहीं है, मैं तो यह जानती हूँ कि दो बजे के पहले खाना वहाँ नहीं मिलेगा, काम-काज में अक्सर यही होता है। इसीलिये सोचती हूँ कि कुछ छोड़ा सा बना लूँ—तुम खाकर बैंक चले जाओ, दोपहर को वहाँ कैसे पहुँच पाओगे, फुरसत तो तुम्हें रात को ही मिलेगी।"

"फिर तुम कब जाओगी ?"

देवकुमार के इस प्रश्न पर शरबती मुस्करा उठी और व्यस्त स्वर में कहने लगी—"अरे, अभी वहाँ क्या रखा है, ग्यारह बजे तक चली जाऊँगी। रोहन की माँ कह गई थीं कि वे रोहन को भेजेंगी।"

देवकुमार यह सुनकर किसी गहरे विचार में डूब गया। उसकी समझ में नहीं आरहा था कि शरबती जो कुछ कह रही है वह ठीक है। क्या वह अपने कहे अनुसार ही सब काम करेगी, मुझे विश्वास नहीं होता। इतने में उसको स्मरण हो आया कि उसने हीरा से कहा था कि मैं बैंक जाते समय शरबती को तुम्हारे घर छोड़ता जाऊँगा। तभी वह तपाक से बोल उठा—"मैंने कल तुम्हारे सामने ही तो रोहन की माँ से कहा था कि भाभी रोहन को भेजने की कोई जरूरत नहीं, मैं

बैंक जाने के पहले तुम्हारी देवरानी को तुम्हारे घर छोड़ जाऊँगा। नाश्ता कर ही चुका हूँ, रह गई दोपहर के खाने की बात सो डेढ़ बजे लंच के समय उनके घर जाकर खाना खा लूँगा। यह काम छोड़ो और चलने की तैयारी करो।"

यह सुनते ही शरबती बोल उठी—"अरे, दोपहर की धूप में क्या जाओगे और फिर दूसरी बात यह है कि मान लो तुम गये और वहाँ खाना तैयार न मिला तब भी तो लौटना ही पड़ेगा। देर कितनी लगती है, मैं अभी सब काम निपटाती हूँ।"

देवकुमार अब समझा कर हार गया था। इसलिये क्रुद्ध होकर कहने लगा—"मैं दुनियाँ भर की बातें नही जानता, तैयारी करो—मैं तुम्हें विद्याधर के घर छोड़कर तब बैंक जाऊँगा।"

शरबती ने जवाब नही दिया। वह चूल्हा फूँकने में व्यस्त होगई। उसको चुप और काम में लगी देख, देवकुमार ने तेज गले से कहा—"क्या तमाशा बना रखा है शरबती! मैं कहता हूँ चूल्हा न जलाओ; उठो, तैयरी करो–आठ बज रहे हैं।"

शरबती फिर भी मौन रही। देवकुमार को उसका मौन बहुत खल रहा था, वह खीझा हुआ तो था ही, अब गुस्से में भरकर बोला—"अच्छा, नहीं मानती हो तो मैं चला, खाना बनाकर तुम्ही खा लेना।" यह कहने के साथ देवकुमार वहाँ से जाने को उद्यत हुआ। फुँकनी फर्श पर रख, शरबती लपक कर उसके पास आगई और भय-त्रस्त स्वर में बोली—"बात तो सुनो, जाते कहाँ हो?" और यह कहते-कहते उसने पति के कुरते का पल्ला पकड़ लिया।

देवकुमार आक्रोश से भरा हुआ वहीं पर खड़ा रहा और शरबती दीन वाणी में कहने लगी—"तुम तो मिनटों में नाराज होते हो। अरे, किसी के घर का क्या भरोसा, खाना मिलते-मिलते कहो दो बजें और कहो चार। और फिर दोपहर को तुम वहाँ पहुँच ही कैसे पाओगे?

मैं कहती हूँ बिल्कुल देर नहीं लगेगी, तब तक कोई किताब-इताब ही देखो।"

देवकुमार पर शरबती की बातों का कुछ भी असर नहीं हुआ। वह तनकर कहने लगा—"मैं एक बात पूछता हूँ, उसका जवाब दो—तुम विद्याधर के घर मेरे साथ अभी चल रही हो या नहीं!"

"कह तो दिया, मैं रोहन के साथ चली जाऊँगी, जब उन लोगों ने सुहागिल की जगह न्योता है, तो रोहन को जरूर भेजेंगे।"

देवकुमार यह सुनते ही झल्ला उठा। उसने शरबती को कुछ भी जवाब नहीं दिया। उसके हाथ से बलात् कुरता छुड़ाकर तेजी के साथ घर से बाहर निकल गया। शरबती उसके पीछे चौखट तक भागी; लेकिन नारी अपनी मर्यादा की सीमा में रह गई और पुरुष घरौंदे के बाहर निकल गया।

जब शरबती चौखट से वापस लौटी और आँगन में आकर खड़ी हुई, उसकी आँखों से दो बड़े-बड़े आँसू चू पड़े और मुँह से एक लम्बी सांस निकल गई।

## अट्ठाईस

देवकुमार खीझा हुआ घर से निकला था। वह सीधा निकटवर्ती पुस्तकालय में जाकर बैठ गया और मन रमाने के लिये एक मासिक पत्र खोलकर पढ़ने लगा। उसकी निगाह पत्र पर थी; लेकिन मन में एक उलझन सी मच रही थी कि शरबती में जो बात पहले नहीं थी वह अब न जाने कैसे आगई है। पहले मैं जो कहता था, वह फौरन ही करने लगती थी; किन्तु अब तर्क करती है और अपने मन से चलती है और किसी के घर की बात दूसरी थी; मगर विद्याधर के घर उसको जरूर जाना चाहिये, क्योंकि गाँव घर का मामला है, आपसदारी में फर्क आ जायेगा। उससे क्या उलझता इसीलिये चला आया। अब देखूं कि वह रोहन के साथ जाती है या नहीं?

पुस्तकालय में सार्वजनिक वाचनालय की व्यवस्था बहुत अच्छी थी। पंक्तिबद्ध लम्बी मेजों के इर्द-गिर्द कुर्सियाँ पड़ी थीं। मेजों पर उर्दू-हिन्दी और अंगरेजी के मासिक, पाक्षिक, साप्ताहिक और दैनिक पत्र-पत्रिकाएँ रखी थीं। बिजली के कई पंखे छत्त में

लटके नाच रहे थे। शीशे के रंग-बिरंगे देखने में बहुत ही भले लगने वाले पेपरवेट पत्रों पर सुव्यवस्थित ढंग से रखे थे। प्रातः का समय था, अब साढ़े आठ बज रहे थे। पाठकों के आवागमन का क्रम चल रहा था। किन्तु देवकुमार देर तक बैठा रहा। साढ़े नौ बज गये और वह यही करता रहा कि एक पत्रिका बन्द करके रख देता तत्काल ही दूसरी के पन्ने पलटने लगता और फिर तीसरी का नम्बर आ जाता था।

जब साढ़े नौ का अद्धा बजा, तब देवकुमार की निगाह सामने दीवाल पर लगे क्लॉक की ओर गई। वैसे ही वह अपनी बायीं कलाई पर बंधी रिस्टवाच की सुइयों को देखने लगा। अब उसकी उलझन यहाँ तक बढ़ गई कि द्विविधा और असमंजस में पड़कर सोचने लगा कि बैंक जाने का समय हो रहा है, आज मन की स्थिति अच्छी नहीं है, जिस तरह बड़ी देर से खपतुल हवास-सा बना यहाँ बैठा हूँ अगर यही स्थिति वहाँ भी रही तो एकाउन्टेन्ट की लाल-पीली आँखें देखनी पड़ेंगी और एजेण्ट तो खूब खरी-खरी सुनायेगा। क्या करूँ, जाऊँ या न जाऊँ?

घड़ी की सुई आगे बढ़ रही थी। देवकुमार किंकर्त्तव्यविमूढ़-सा मेज पर कुहनी टेके बैठा था। सहसा उसकी प्रज्ञा जागी और दूसरे क्षण ही वह पुस्तकालय की सीढ़ियों से नीचे उतरता दिखाई दिया।

मार्ग में हवा झकोरे भर रही थी। सड़क पर धुन्ध छा रही थी, सूरज तेजी के साथ चमक रहा था और गरम हवा देवकुमार के असन्तुलित चित्त को और भी अधिक उलझा रही थी। उसके कलेजे में सिरहन हो रही थी।

आफिस पहुँचने पर थोड़ी देर तक देवकुमार की राधामोहन से बातें हुईं, जिनमें उसने दोपहर को लंच के समय विद्याधर के घर जाने की अपनी योजना उसे बतलाई। राधामोहन अनुभवी व्यक्ति था। उसने मित्र को आश्वासन दिया कि एक प्रार्थना-पत्र दो-तीन घण्टे के अवकाश के लिये लिखकर मुझे दिये जाना, अगर तुम्हें लौटने में देर लगी तो मैं

उसे चपरासी के हाथ एजेण्ट के पास भेज दूंगा। इससे देवकुमार को तसल्ली हुई और वह व्यग्रता के साथ डेढ़ बजने की प्रतीक्षा करने लगा।

लंच होने के कुछ समय पूर्व ही प्रार्थना-पत्र लिख दिया गया और वह राधामोहन के संरक्षण में पहुँच गया। देवकुमार जब विद्याधर के घर की ओर चला तो सहसा उसके अन्तरिक्ष ने उसे चौंका सा दिया। उसका अन्तःकरण कहने लगा कि कहीं ऐसा तो नहीं मै विद्याधर के घर पहुँच जाऊं और शरबती अभी वहाँ गई ही न हो। उसी क्षण उसके पाँव अपने घर की ओर घूम गये और वह गति में वेग भरकर चलने लगा।

देवकुमार जब घर पहुँचा तो दूर से ही किवाड़ें खुले देखकर उसका माथा ठनका और क्रोध की सीमा इतनी बढ़ गई कि उसकी आँखों से चिनगारियाँ निकलने लगीं। उसके मुँह से अस्फुट स्वर में निकल गया—"बड़ी नीच औरत है, शरबती ! आखिर गई नहीं।"

लेकिन अन्दर प्रविष्ट होते ही उसका सारा गुस्सा काफूर हो गया, क्योंकि रेवा और चारुशीला दोनों बैठी थीं और शरबती उनसे बातें कर रही थी।

## उन्नीस

देवकुमार शरबती से नाराज होकर घर से चला गया था। शरबती देर तक रोती रही कि न जाने उन्हें क्या हो गया है, मैं अच्छी भी बात कहती हूँ, वे बुरा मान जाते हैं और चिढ़ जाते हैं। अगर ऐसा ही तुनकमिजाजी स्वभाव उनका पहले से होता तो अब तक निर्वाह कैसे होता ?

फिर जब आँगन का फर्श तवा सा जलने लगा तब वह अन्दर आई। रसोई बनाने की आवश्यकता ही नहीं रह गई थी। औंधे मुँह चारपाई की शरण में जा पड़ रही और अपने अतीत के दिन याद करने लगी। बचपन किस तरह हँसी-खेल में बीत गया, गाँव में स्कूल नहीं था और वह पढ़ना चाहती थी। बाप था नहीं और माँ आश्रित थी परिवार के लोगों पर। अधूरी लालसा लिए हुए वह एक दिन दुलहिन बन गई तब फिर कल्पना ने उड़ानें भरीं और कामनाएँ उमंगें बन मचल उठीं कि उसका पति बी० ए० पास है वह उसे जरूर पढ़ायेगा। लेकिन बालू की दीवाल बिना पानी-बूँद के ढह गई। देवकुमार उसे स्त्री नहीं न जाने क्या बनाकर रखना चाहता था। जिसके

लिए वह ऐसा अनुभव करती थी, कि मैं एक खरीदी हुई बाँदी हूँ। मेरी अपनी मर्जी कुछ नहीं, यहाँ का तो यह दस्तूर है कि उल्टी भी चलो और सीधी भी। जो आदमी कहे वह करती रहो। बहुत परेशान हो गई हूँ, मैं पता नहीं क्या होने वाला है; क्योंकि एक पचड़ा खत्म नहीं होने पाता और दूसरा मसला सामने आ जाता है।

कमरे में अच्छी-खासी उमर थी। पंखा बन्द था और शरबती अब उठकर बैठ गई थी। शिद्दत की गर्मी का अनुभव उसे हो ही नहीं रहा था। वह इतनी हैरान और खोई-खोई सी थी जैसे उसका कुछ खो गया, है उसे ढूँढ़ रही है।

शरबती चिन्ता मग्न बैठी थी तभी आँगन में किसी की आवाज सुनाई दी—"चाची जी ! चाची जी !!"

आवाज रोहन की थी और शरबती उसका कण्ठ स्वर पहिचानते ही कमरे की चौखट पर आ गई और स्नेह पूर्वक बोली—"आओ रोहन बैठो।'

रोहन उसके पीछे-पीछे चलता हुआ बोला—"अभी तक आप तैयार नहीं हुई, घर में बुआ बहुत बड़बड़ा रही हैं कि इतनी देर होगई और अभी तक आप नहीं पहुँचीं। शायद चाचा जी ने माँ से कहा था कि वे बैंक जाते समय आपको भेजते जायेंगे।"

बात करते-करते रोहन बैठ गया और शरबती पंखा खोल उसके निकट आ, दुनियादारी करती हुई कहने लगी—"रोहन भइया, घर-गृहस्थी में तमाम झंझट लगे रहते हैं आज सबेरे से ही पेट ऐसा खराब हुआ कि बार बार दौड़ना पड़ता है, तुम्हारे चाचा को जल्दी थी इसीलिए सोचा कि तुम्हारे साथ चली जाऊँगी। कल जीजी ( हीरा ) कह गईं थीं कि मैं रोहन को भेज दूँगी, अभी·········।"

"नमस्ते, भाभी !,' यह कहती हुई चारु शरबती के पास आ रही थी और उसके पीछे थी रेवा। दोनों शरबती के निकट आकर बैठ

गई और शरबती रोहन की ओर उन्मुख हो, कहने लगी—'रोहन तुम जाओ। मैं अभी थोड़ी देर में आती हूँ, चारु और दीदी आ गई हैं, मैं अकेली ही आ जाऊँगी।"

"अच्छा !" कहता हुआ रोहन उठ खड़ा हुआ और चलते-चलते कहता गया—"जल्दी करियेगा चाची जी; क्योंकि और औरतें बहुत देर से बैठी हैं, आपकी ही राह देखी जा रही है।"

"हाँ; हाँ देर नहीं होगी।" कह कर शरबती ने चारु की ओर देखा और कुछ कहना चाहती ही थी कि चारु शिकायत भरे स्वर में मीठा उलाहना देती हुई बोली—'वाह भाभी वाह ! अब तो तुम गुलरी का फूल हो गई हो, दर्शन ही नहीं देती। मैंने सोचा कि मेरी भाभी साहिबा तो आयेगी नहीं और भेंट करनी ही है इसीलिए चली आई।" यह कहकर वह खुल-खुलकर हँस पड़ी। शरबती कुछ लजा गई, किन्तु फिर भी उसके अधरों के बीच हँसी की रेखा दौड़ गई।

तब मुस्कराती हुई रेवा कहने लगी—"हां, है तो ऐसा ही। आजकल हमारी बहूरानी कहीं आती-जाती नहीं हैं।" सहसा रेवा को रोहन का स्मरण हो आया और वह पूछ बैठी—"यह लड़का विद्याधर का ही तो था न बहुत दिनों से देखा नहीं अब काफी सयाना हो गया है। क्या काम है वहाँ। तुम जा रही हो न ?"

"हाँ, आज उसकी सालगिरह है, छटनियाँ खीचने के लिये सुहागिलों में मैं भी न्यौती गई हूँ। वही बुलाने आया था, चली जाऊँगी।" यह कह कर शरबती पुनः अपनी सफाई देती हुई कहने लगी—'दीदी ! ऐसा नहीं कि मैं तुम्हारे घर आती नहीं, रात को रसोई बनानी थी, इसलिये नहीं आ पाई और इस समय रोहन के घर जाना है। इसके बाद जरूर आती।"

रेवा शरबती की बातें चुपचाप सुनती रही और मन्द-मन्द मुस्कराती रही, जिसमें उसका गाम्भीर्य और बड़प्पन स्पष्ट झलक रहा था।

लेकिन चारुशीला खुले स्वभाव की थी वह बात कहने में कभी नहीं चूकती। छूटते ही बोल उठी—"हाँ, हाँ, क्यों नहीं भाभी; जैसे मैं कुछ जानती ही नहीं हूँ। भाभी बता सकती हैं?" यह कहकर उसने रेवा की ओर देखा। फिर शरबती के मुख पर दृष्टि टिका कर कहने लगी—"भला तुम कितने दिन से मेरे घर नहीं गई हो। आज मुझे खुशी भी हो रही है और अचम्भा भी लग रहा है कि तुम विद्याधर के घर जा रही हो?"

शरबती बात का खरा उत्तर तो नहीं दे पाई। थोड़ी देर के लिए उसकी मुस्कान जैसे विलीन हो गई। फिर भी वह जबरदस्ती की हँसी हँसती हुई दाँत निपोरकर बोली—"चारु बीबी, यह बात नहीं जहाँ काम होता है, वहाँ जाना ही पड़ता है और यों आने-जाने की बात दूसरी है। कभी मन होता है तो फुरसत नहीं मिलती और जब फुरसत मिलती है तो कोई न कोई झँझट लग जाता है।"

चारु कुछ कहे इसके पूर्व ही शरबती उठकर खड़ी हो गई और जाने का आयोजन करती हुई बोली—"अभी आई।"

दूसरे कमरे से शरबती जलपान का सामान ले आई थी। दो काँच की तश्तरियों में चाँदी के वर्क लगे चार-चार पेड़े रखे थे। यह पेड़े शरबती ने स्वयं बनाये थे और खोआ भी घर में ही औटाया था।

चारु और रेवा जलपान कर रही थीं, शरबती से उनका वार्तालाप चल रहा था तभी अचानक देवकुमार घर आ पहुंचा।

शरबती पति को देखते ही काठ हो गई। उसका कलेजा धक्-धक् करने लगा कि ये एकदम कैसे आ गये शायद इन्हें विश्वास नहीं हुआ होगा कि मैं जाऊँगी और देवकुमार की भी यह स्थिति थी कि वह पत्नी पर बिगड़ने की अपेक्षा रेवा के निकट कुर्सी खींचकर बैठ गया और आखिर उसके मुँह से निकल ही पड़ा—"अरे, अभी तक तुम गई नहीं?"

यद्यपि देवकुमार ने प्रश्न शरबती से किया था; किन्तु जवाब रेवा ने दिया। वह कहने लगी—"बहू तो जा ही रही थी, मैं जब आई तब रोहन बैठा था, मेरी वजह से थोड़ी देर रुक गई।"

इसके बाद रेवा शरबती की ओर देखकर कहने लगी—"अच्छा, अब चलती हूँ बहू तुम अब जाने की तैयारी करो।"

चारु और रेवा उठकर खड़ी ही हुई थीं कि आँगन से ही बड़-बड़ाती हुई कला कमरे में आ गई और शरबती उसके पाँव लगने आई तो वह आशीष देना तो भूल गई, और दुनियाँदारी भरी भर्त्सना करके कहने लगी—"अरे; दुलहिन तुम अब तक घर में बैठी हो वहाँ और सुहागिलें बैठी है; बहुत बोलउए लेती हो।"

'मैं आ ही रही थी दिदिया ! रेवा दीदी आगई इसलिए बैठ गई, धूप में आई हो बैठो नाहक हैरान हुईं, मे तो आ ही जाती।" यह कह कर शरबती उसको सम्मानपूर्वक चारपाई पर बिठला आई और वह वहाँ से जा ही रही थी कि कला बोल उठी—"हाँ, हाँ, आ क्यों नहीं जाती। सबेरे से आ रही हो वह मैं देख रही हूँ सब समझती हूँ बहू तुम और सब जगह जा सकती हो; लेकिन हमारे घर अकेले आने में तुम्हें डर लगता है।" यह कहने के साथ ही कला की दृष्टि देवकुमार की ओर उठ गई। वह कहने लगी—"देव भइया ! आज तुम बैंक नहीं गये क्या ?"

"गया क्यों नहीं था, अभी-अभी आ रहा हूँ, मैं......।"

"अच्छा ! तो अब समझी कि तुम लोगों ने पहले से ही सोच रखा होगा कि जब तुम बैंक से आओगे तभी मियाँ-बीबी हमारे घर जाओगे। अच्छा, अच्छा, चलो देर न करो, बहुत देर हो गई।" कला ने देवकुमार को आगे बोलने नहीं दिया। उसे जल्दी हो रही थी; क्योंकि दोपहर की बेला भी धीरे-धीरे ढलने पर आती जा रही थी।

शरबती ने इस अवसर पर चातुर्य्य से काम लिया। उसके विवेक ने उसे सजग कर दिया कि कला मुँहफट औरत है, यहाँ पर चारुशीला

ग्रौर रेवा बैठी हैं, वह जब तक बैठेगी उसकी जबान कतरनी सी चलती रहेगी। यह सोच शरबती दूसरे कमरे में जा कपड़े बदलने लगी।

रेवा ग्रौर चारु कला को ग्राया देख, तनिक रुक गई थीं। शरबती के ग्राते ही वे चल दीं। देवकुमार बाहर ग्राकर खड़ा हो गया ग्रौर उसके बाद ही शरबती ग्रौर कला चौखट से बाहर निकलीं।

धूप खूब तेज थी। कला नंगे पाँव थी, उसके पैर जल रहे थे, फिर भी वह ग्रपनी ग्रादत से मजबूर थी। वह रास्ते भर देवकुमार ग्रौर शरबती को ग्रपना ग्रठरंगा सुनाती रही। उसके प्रश्न ग्रौर उसकी टीकाएँ ऐसी बेजोड़ थीं कि दम्पति उसका मुँह देखकर रह जाते। लेकिन होंठ पर से होंठ नहीं उठा पाते थे।

एक बार बीच में देवकुमार ने कला को एक छोटा सा जवाब दिया। उसने कहा—"दिदिया। ग्रब बेकार ग्रपना मन खराब करती हो। मैं तो इस बात का ग्रादी हूँ कि चाहे देर में हो; लेकिन काम होना चाहिए। देर जरूर हो गई है; लेकिन.........।"

"लेकिन को छोड़ो, देव। तुम भी लड़कों जैसी बातें करते हो। तुम्हारी तरह चला जाय तो यही हो कि मेहमान को भूख लगी हो सबेरे ग्रौर खाना उसे रात को मिले। ग्रभी तुम लड़के हो, दुनियाँ के रीति-रिवाज नहीं जानते।"

कला की ये बातें सुनकर देवकुमार चुप हो गया। किन्तु शरबती को कुछ हँसी ग्रा गई, जिसको उसने भरसक दाबने का प्रयत्न किया; क्योंकि उस हँसी में कला के प्रति उपहास था।

ग्रौर कला ने शरबती की मुख मुद्रा देख ली। वह तत्क्षण ही बोल उठी—"हँसती क्या हो दुलहिन ! ग्रभी तुमने दुनियाँ देखी कहाँ है ? ग्रगर तुम्हें तनिक भी लोक-व्यवहार ग्राता होता तो ग्रपनी हँसी नहीं करातीं सभी सुहागिलें तुम्हारे नाम को झींख रहीं होंगी।"

अब शरबती भी मौन होगई। कला की जबान चलती रही, घर आ गया लेकिन फिर भी वह कुछ न कुछ बोलती ही रही।

जब कला अन्दर जाने लगी तो देवकुमार आगे बढ़ उससे कहने लगा—"अच्छा दिदिया! अब मैं जाता हूँ, रात को ही आऊँगा; क्योंकि अभी तो तुम बता रही हो कि सुहागिलों ने ही नहीं खाया है; मुझे देर हो रही है, आधा घण्टे की छुट्टी थी और करीब-करीब घण्टा होने जा रहा है।" यह कहकर उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही देवकुमार चल दिया और कला शरबती के साथ आँगन में जा खड़ी होगई।

× × ×

रात को जब देवकुमार विद्याधर के घर से भोजन करके लौटा तो वह रास्ते भर शरबती से कुछ नहीं बोला। लेकिन घर मे आते ही बड़बड़ाना शुरू कर दिया; क्योंकि जब वह खा रहा था तब भी कला शरबती के ही प्रसंग पर ही बातें करती रही थी।

देवकुमार ने कहा—"शरबती तुम्हारे कारण ही मुझे आज कला की बातें सुननी पड़ी, पता नहीं तुम्हें क्या हो गया है, हमेशा कहने वाला ही काम करती हो? अच्छा है जो मन आये करो, क्योंकि मेरे कहने सुनने का तुम पर कोई असर नही होता है।"

शरबती अपराधी की भाँति धीरे-धीरे अपनी सफाई देने लगी। वह बोली—"हाँ,सारा कसूर तो मेरा ही है मैंने तुम्हारे भले के लिये ही कहा था कि बैंक जाने के पहले कुछ पेट में पहुँच जायेगा; लेकिन अपनी जिद की, खाना नहीं बनाने दिया। दिन भर भूखे रहे, मुझे भी हैरान किया और आप तो परेशान रहे ही।"

देवकुमार शरबती का मुँह ताकता रह गया। उसके मुँह से एक भी शब्द नहीं निकल सका और शरबती तनिक चुप रहकर फिर कहने लगी—"तुम से तो कला ने अभी जो कुछ भी कहा हम लोगों के सामने ही कहा; लेकिन दोपहर को भरी औरतों में मेरी ऐसी फजीहत हुई जिसे

देखो वही कुछ न कुछ कह रही थी कि बड़े मनौने लेती हूँ, बहुत देर कर दी, भला यह भी कोई बात है, दूसरी औरतों का भी तो ख्याल रखना चाहिये था। एक तनिक हँसोड़ थी। वह बोली कि रास्ते में प्रेत लगते हैं बेचारी डरती होगी तभी अकेली नहीं आई। ऐसे पता नहीं वे सब क्या क्या बकती रही और मै जैसे बहरी बन गई थी, कि सुनकर भी कुछ नही समझ पा रही थी। तुम कहते हो मेरे कारण तुम्हारी तौहीन हुई; लेकिन अगर बुरा न मानो तो यह कहती हूँ कि सब तुम्हारे कारण हुआ। दोपहर को लू-लपट में भटकते रहे, चार बाते खुद सुनी और मुझे भी सुनवायी, बहुत कटते हो विद्याधर के घर को और वे लोग तुम्हारा तनिक भी ख्याल नहीं करते। उनकी बहन और उनकी स्त्री दोनों ने बातों बातों में मेरा ऐसा अपमान किया कि बस मै ही जानती हूँ।

शरबती देर तक इसी तरह खड़ी रही। देवकुमार कहीं पर भी उसका विरोध नहीं कर सका। वह चुपचाप चारपाई पर जाकर लेट गया और सोचने लगा कि शरबती ठीक कहती है विद्याधर के घर में किसी को आदमी की कदर करना नहीं आता। आज कैसा मनहूस दिन था, सबेरे से लेकर अब तक उलझन ही उलझन रही। शरबती का भी कहना ठीक है कि अगर मैने जिद न की होती तो किसी को भी हैरानी न होती। शरबती पर मुझे क्रोध तो अवश्य आता है, लेकिन जब गहराई से विचार करता हूँ तो उसे सर्वथा निर्दोष पाता हूँ। बहम आदमी का सबसे बडा दुश्मन है मै भी आगे-पीछे इसका शिकार बन जाता हूँ, पता नही मन की स्थिति हमेशा एक सी क्यों नहीं रहती? कभी हँसी, कभी गुस्सा कभी तेजी और कभी नर्मी, ऐसे ही मनुष्य में परिवर्तन होता रहता है और उसका मन अस्थिरता का दास बन जाता है। मुझे भी हमेशा एक आत्मग्लानि की अनुभूति होती रहती है जिसका कारण सबसे पहला मैं यह समझ लेता हूँ कि मुझे योग्य पत्नी नही मिली।

देवकुमार की विचारधारा चल रही थी। शरबती दूध का गिलास लेकर चारपाई के पास आकर खड़ी होगई और अतीव मृदु-स्वर में बोली—"लो, दूध पी लो, आज बहुत देर होगई।"

देवकुमार के विचारों का तारतम्य टूट गया, जिसके प्रति वह सोच रहा था, अब वह प्रत्यक्ष सामने खड़ी थी। वह उठकर बैठ गया और मुस्कराकर कहने लगा—"वैसे ही में कब जल्दी सोता हूँ, लाओ।" कह कर उसने हाथ बढ़ाकर गिलास ले लिया और दूध पीने लगा।

शरबती का मन देवकुमार की मुस्कराहट को देखकर नाच उठा। ओह! पत्नी, पति की एक सरल सी मुस्कराहट पर अपनी जान की बाजी लगा सकती है। यह तो भारतीय नारी का सबसे बड़ा भूषण है।

आज देवकुमार का मन न जाने किस सरस विचार में खो गया कि उसे शरबती पर स्नेह की मात्रा अपने आप उमड़ती दिखाई देने लगी।

रात को जब तक देवकुमार को नींद न आगई वह शरबती के बारे में ही सोचता रहा।

## तीस

राधामोहन और रेवा का स्वप्न पूरा हो गया। चारु उत्तीर्ण हो गई थी। इसी उपलक्ष्य में राधामोहन ने अपने इष्टमित्रों को एक प्रीतिभोज दिया। उस दिन शरबती प्रातः से लेकर आधी रात तक रेवा के साथ घर के काम काज में व्यस्त रही। देवकुमार को इससे बड़ा सन्तोष हुआ। आज शरबती भी बेहद खुश थी।

चारु का मन शरबती के पास खूब लगता था और दोनों घरों की दूरी भी मामूली ही थी अतः वह अक्सर शरबती के पास पहुंच जाती थी।

राधामोहन चारु के प्रति अब अहर्निश यह सोचता रहता कि इस वर्ष उसका व्याह कर देना आवश्यक है। किन्तु वह डिस्पेंसरी खोलने को कहती, प्रैक्टिस करेगी समझ में नहीं आता है कि क्या करूं; क्योंकि अपनी भाभी के पूछने पर वह कह देती है कि मैं अभी व्याह नहीं करूंगी, प्रैक्टिस करूंगी। इसका एक यही रास्ता है कि पहले हम लोगों को उसकी बात माननी चाहिये; तभी तो उसे हमारी बात मानने के लिये मजबूर होना पड़ेगा।

अपने निश्चयानुसार राधामोहन ने चारु के लिये डिस्पेंसरी खोलने को मालरोड पर एक दूकान ले ली। फर्नीचर बनने लगा और दो सप्ताह के अन्तर्गत ही डिस्पेंसरी की 'ओपनिंग सेरमनी' भी हो गई। दूकान अच्छे मौके की थी—इस कारण मरीजों का पहिले दिन से ही अच्छा जमघट रहने लगा।

चारु अब हाथ में स्टैथोस्कोप (आला) लेकर चलती थी। उसके पीछे-पीछे उसकी नर्स उसका बैग लेकर चलती। यह देखकर उसकी भाभी और भाई हर्ष से फूले नहीं समाते थे। अक्सर रेवा हँसी में 'मिस' कह देती—"आइये डाक्टरनी जी! दुनियाँ भर का इलाज करती हो और मेरे पेट के दर्द की दवा तुम्हारे पास नहीं है।"

तब चारु, भाई के सामने ही खुल-खुलकर हँस पड़ती और एक अनुभवी लेडी डाक्टर की तरह विश्वास दिलाती हुई बोल उठती—"भाभी! तुम तो हथेली पर सरसों जमाना चाहती हो। कल दिन भर दवा पी ही नहीं, उसके लिये मैंने जब दूसरा तरीका निकाला कि इंजेक्शन लगा दूँ, तो तुमने यह कहकर टाल दिया कि आज परेवा है; यकीन रखो भाभी, मैं तुम्हारी यह व्याधि दूर करके ही रहूँगी।"

अक्सर घर में इसी प्रकार चुहल होती रहती। अषाढ़ आरम्भ हो गया था और राधामोहन को ऐसा लग रहा था कि सहागल का केवल एक महीना रह गया। मालूम होता है यह साल भी निकल जायेगा और चारु का ब्याह नहीं होगा। अपनी इस उलझन को लेकर एक दिन राधामोहन ने यह निश्चय किया कि वह चारु से स्वयं बात करेगा क्योंकि रेवा के पूछने पर उसने हर बार यही जवाब दिया कि अभी मै ब्याह नहीं करूँगी। मैं जन-सेवा करना चाहती हूँ, ब्याह उसमें बाधक हो सकता है।

रात के नौ बजे थे। राधामोहन बड़ी बेसब्री से प्रतीक्षा कर रहा था कि चारु आये; फिर जब सब लोग फुरसत से बैठें तो मैं उससे

पूछूँ कि वह ब्याह करने के पक्ष में क्यों नही है ? आसमान बिल्कुल नीला था, तारे चमक रहे थे, घड़ी ने नौ बजाये। राधामोहन आँगन में आगया और कमर पर हाथ बाँधकर टहलने लगा।

थोड़ी देर बाद दरवाजे पर एक ताँगा रुका। चारु और नर्स दोनों अन्दर प्रविष्ट हुई और राधामोहन का क्रम पूर्ववत् चलता रहा।

भोजनादि से निवृत होकर जब चारु भाई के पास आकर बैठी और अपनी दिन भर की रिपोर्ट सुनाने लगी कि आज मैंने एक कारबंकल ( पीठ का फोड़ा ) का आपरेशन किया और एक स्त्री की हालत इतनी नाजुक थी कि डिलीवरी के बाद ब्लीडिंग बन्द ही नहीं हो रही थी; भगवान का शुक्र है कि मैंने दो इन्जेक्शन लगाये अब उसकी हालत में सुधार हो रहा है। तब राधामोहन उसकी सारी बातें सुन कर एकाएक स्नेह-विगलित वाणी में पूछने लगा—"चारु ! आज मैं तुमसे कुछ पूछना चाहता हूँ क्या शान्ती से सोच कर बताओगी ?"

चारु चौंककर भाई के मुँह की ओर देखने लगी। और अचकचाये स्वर में उसके मुँह से निकल गया—"क्या बात है भइया ! क्या पूछना चहते हो ?"

राधामोहन की दृष्टि फर्श को देख रही थी और वह कह रहा था

तुम विवाह करने से इन्कार क्यों करती हो ? अपनी भाभी से हमेशा यही कहती रहती हो, मुझे बताओ, क्योंकि मेरे सामने तुम्हारे दो कर्त्तव्य थे पहला पूरा हो गया तुम डाक्टरी पास हो गई हो और अब मुझे तुम्हारे हाथ पीले कर देने चाहिये।"

चारु के आनन पर उदासी छा गई। वह मरे हुये स्वर में बोली—"मुझे मजबूर न करो भइया, मैं अभी ब्याह नहीं करूँगी। मेरा डाक्टरी पढ़ना व्यर्थ जायेगा, मैं पैसा कमाने के लिये प्रैक्टिस नही कर रही हूँ, परोपकार की भावना मुझे दासत्व में नहीं बँधने देगी। मैं दासी नहीं बन पाऊँगी, मुझे बन्धन में मत बाँधो, मुझे सेवा कार्य करने दो।"

यह कहते-कहते चारु कुछ रुआँसी हो आई और राधामोहन आश्वासन भरे स्वर में कहने लगा—"तुम्हारे सेवा कार्य में तनिक भी बाधा नहीं पड़ेगी चारु विवाह जीवन का एक आवश्यक अङ्ग है, और मैं नही चाहता हूँ कि किसी को कहने का मौका मिले कि मेरी बहन अविवाहिता है। मैं इसी शहर में वर खोजूँगा और तुम्हारी हर सहूलियत का ध्यान रखते हुये पूरी-पूरी कोशिश करुँगा कि तुम्हारी प्रैक्टिस दिन दूनी रात चौगुनी बढ़े, शहर में तुम्हारा नाम हो। चारु अपने विचार बदल दो, कल में कुछ जगह गया था एक जगह बात चीत पक्की हो जाने की पूरी-पूरी आशा है। इसीलिये आज तुमसे पूछ रहा हूँ कि अब तुम्हारी अस्वीकृति का कोई कारण नहीं रह जाता है।"

"कुछ भी हो भइया। मैं गुस्ताखी नहीं कर रही हूँ, मेरी अन्तरात्मा साक्षी ही नहीं देती है कि मैं विवाह बन्धन में बंधू। फिर आप ही बतायें यह सम्भव कैसे हो सकता है ?"

रेवा अभी तक चुप थी। चारु की यह बात सुन कर बोल उठी—"चारु ! जिद नहीं करनी चाहिये, यह बहुत भद्दा लगेगा जो तुम विवाह नहीं करोगी। पता नहीं तुम्हें यह भय क्यों हो गया है कि विवाह होने के बाद तुम आजाद नहीं रह सकोगी, और तुम्हें डाक्टरी करने में विघ्न पड़ेगे इसके लिये पूरी कोशिश की जायेगी कि वर भी डाक्टर हो जब दोनों के धन्धे एक होगे तो दोनों की आजादी कायम रहेगी।"

आँगन में छोटा सा लकड़ी का तख्त पड़ा था। सब लोग उसी पर बैठे थे। वातावरण एकदम शान्त था। नीरवता को अन्दर कमरे में लगे हुये क्लॉक की टिक-टिक भङ्ग कर रही थी। पत्नी के समर्थन में राधामोहन तत्काल ही बोल उठा—"हाँ चारु ! तुम्हारी भाभी का कहना दुरुस्त है, मैं ऐसा ही करूँगा, कोई बात नहीं इस साल की सहा-

लगें निकल गई अगली सहालगों तक मैं ऐसा योग्य वर खोज लूंगा । मैं......... ।"

"नहीं भइया ! नहीं !! ऐसा न करो, मैं अपने निश्चय को नहीं बदल सकती आपका और भाभी का कहना ठीक है; लेकिन मेरी अन्तर्शक्ति साथ नहीं दे रही है, मैं शादी नहीं करूँगी भाभी !" यह कह कर चारु ने अपनी भाभी के कन्धे पर सिर रख दिया और धीरे २ सिसकने लगी ।

स्नेहपूर्वक चारु के सिर पर हाथ फेरती हुई, दूसरे हाथ से उसका मुख ऊपर उठा, रेवा कहने लगी—"रोती क्यों है पगली, मैं जानती हूँ कि इस समय तुम्हारा चाव क्या है ? डाक्टरी में तुम्हारा मन खूब लग रहा है, इसीलिये तुम शादी का नाम सुनते ही चौंक जाती हो, कोई बात नहीं—हम लोग तुम्हारा मन नहीं दुखायेंगे !"

राधामोहन गुमसुम बैठा, दोनों की ओर देख रहा था और स्नेह पाकर चारु की सिसकियाँ वेग में बदल गई थीं, आँसुओं से उसका कपोल-प्रदेश तर हो रहा था । रेवा ने अपनी साड़ी के आँचल से उसके आँसू पोंछे और मुख चूम बलाएँ लेती हुई बोली—"मेरी शादी के समय तुम बच्ची थीं चारु ! मैंने ननद के रूप में नहीं, हमेशा तुमको अपनी बेटी माना है, अपने अधिकारों की माँग तुम मुझसे करो और मैं उपेक्षा करूँ । न रोओ चारु ! अभी बहुत समय पड़ा है अगली सहालगों के लिये । इस बीच तुम्हारी प्रैक्टिस काफी अच्छी चलने लगेगी, तुम्हारे मन को सन्तोष हो जायेगा । इतने समय में खूब सोच-विचार लो कि हम लोगों का कहना और तुमको समझाना न्याय-संगत है या एक दबाव मात्र ?"

राधामोहन वहाँ से उठकर अपने कमरे में चला गया और चारु को भाभी की बातों से कुछ सान्त्वना मिल गई थी कि चलो कुछ दिनों के लिये तो मुहलत मिली । रेवा उसे समझाती रही और वह चुपचाप सुनती रही ।

जब चारु अपने बिस्तर पर जाकर लेटी, उस समय वह सोच रही थी कि पुरुषों से अधिक शान्ति स्त्रियों में होती है। रेवा भाभी कितनी कुशल गृहणी हैं, जो शान्तिपूर्वक हर काम को निपटाना जानती हैं। पता नहीं, उनसे कितनी श्रद्धा है मुझे! वे एक साथ ही भाभी हैं, माँ हैं और हैं मेरी संरक्षिका। काश! ऐसी ही स्त्रियाँ घर-घर में हों; तो किसी भी परिवार में कोई अभाव नहीं रह सकता। सभी में सुख और संतोष की लहर दौड़ सकती है।

## इक्तीस

पूर्णिमा की रजत शीतल जुन्हाई अभी राका में परिणत नहीं हो पाई थी। चातक के सदृश विद्याधर उस स्वाँती के बूँद के प्यासे थे, जो उनके लिए अमृत से भी बढ़कर था। रोहन पास हो गया; किन्तु भटकने पर भी उसे कहीं नौकरी नहीं मिल रही थी जिस स्कूल और कॉलेज में वह प्रयत्न करता वहाँ 'नो वेकेंसी का ही नोट उसको उत्तर के रूप में मिलता था। वह खूब भटका। जुलाई का महीना समाप्त हो गया और रोहन असफलता का ही शिकार बना रहा।

तब निराशा ने अपने थके कदम इधर उधर उठाना आरम्भ कर दिया। नौबत यहाँ तक आ पहुँची कि प्राइवेट नौकरियों के लिये भी रोहन ने भरसक प्रयत्न किया; मगर सभी जगह उसे बेगाने मिले, कोई भी अपना नहीं था। एम्प्लायमेंट एक्सचेंज से भी वह कोई फायदा नहीं उठा सका, क्योंकि स्थिति यह थी कि एक खाली जगह के लिये दर्जनों लोग इन्टरव्यू के लिये बुलाये जाते और मजे की बात यह कि जगह वही पाता, जो किसी की सिफारिश लेकर आया था अथवा किसी अधिकारी का सम्बन्धी था। और ऐसे

ही जिसके साथ कोई न कोई सिफारिशी छाया थी वही कामयाब होता वाकी बड़े-बड़े ग्रेजुयट अपनी डिग्रियों को झोंकते थे। रोहन ने इन सब बातों से निष्कर्ष निकाला कि आजकल गुण और योग्यता इतनी सस्ती हो गई है कि दुनियाँ उसका मूल्य मिट्टी के बराबर आँकती है और जिसके साथ कोई भी तिकड़म है वह मिट्टी होते हुये भी, सोचने के भाव बिकने लगता है। वह हैरान हो उठा और सोचने लगा, क्या करूँ बुद्धि काम नहीं दे रही है कितना बड़ा अपवाद जुड़ा है हम भारतीयों के साथ कि हमारे माँ-बाप हमको यह सोचकर पढ़ाते हैं कि डिग्री पाते ही लड़के को नौकरी मिल जायेगी। सोचने की बात है कि जब हर व्यक्ति नौकरी करना चाहेगा, तो नौकरियों का अकाल जरूर पड़ेगा। देश की बढ़ रही बेकारी का यह एक बहुत बड़ा कारण है। जनता अधिकांश गरीब है रोजगार के लिये पैसा चाहिये और पैसे पर पूँजीपतियों का जन्म-सिद्ध अधिकार है। फिर भला निम्न मध्यवर्ग के पास वह कैसे टिक सकता है, कैसे पहुँच सकता है! काश! आज को मै भी एक अमीर बाप का बेटा होता तो दर-दर नौकरी के लिये भटकने की अपेक्षा कोई छोटा-मोटा धन्धा करके बैठ जाता। नौकरी इस युग में अभिशाप बन गई है।

इस भाँति रोहन अहर्निश उधेड़-बुन में व्यस्त रहता और उससे भी कहीं अधिक गई बीती हालत थी हीरा और विद्याधर की। वे पुत्र की मंगल कामना करते-करते थक गये थे। लेकिन सौभाग्य का सूरज अभी निकला ही नही था; क्योंकि संसार के सफेद पर्दे पर असित मेघ आछन्न थे।

सबसे बड़े सन्तोष की बात यह थी कि विद्याधर अपने अन्तर्द्वन्द्व को पी जाते। किन्तु हीरा का ठहरा नारी हृदय, वह पति के सामने अपनी अस्थिरता स्पष्ट कर देती। और कभी-कभी अधीर होकर कहने

लगती कि देखो सब कहते हैं कि पढ़े-लिखों को नौकरियों की क्या कमी; लेकिन आज जब हम पर बीत रही है तो खिसियाकर यह कहना पड़ता है कि आजकल का जमाना पढने-लिखने का नहीं है। अपने रोहन को अगर कोई दस्तकारी सिखाई गई होती, तो शाम तक गुजर बसर भर को जरूर कमा लेता।

पत्नी की ऐसी बातें सुनकर विद्याधर के मुँह से एक लम्बी सांस निकल जाती और वे गम्भीर होकर कहने लगते कि रोहन की माँ कहीं रोहन के सामने ऐसी बातें मत छेड़ देना अभी वह लड़का है, जिम्मेदारी महसूस कर रहा है यह बहुत अच्छा लक्षण है; हीन बातें सुनकर उसका हौसला पस्त हो जायेगा।

बस इसी तथ्य को लेकर जब दिन भर का थका-मांदा रोहन घर आता और आते ही अपनी मजबूरियों की कहानी सुनाने लगता तो हीरा उसे बढ़ावा देती। वह कहती कोई बात नहीं हिम्मत मत हारो रोहन, तुम्हें नौकरी जरूर मिलेगी और बाप विद्याधर पुत्र को स्नेह से सींच देते। उस समय उनका कहना इस तरह का होता—रोहन ! जो काम जितनी देर में होता है वह उतना ही अच्छा होता है, तुम तो पढ़े-लिखे हो भइया ! मैं निपट गँवार था फिर भी मुझे नौकरी मिल गई थी।

रोहन को माँ-बाप की बातों से ढाढ़स तो जरूर मिलता; लेकिन आत्म सन्तोष के नाम पर वह सर्वथा रिक्त था।

सावन अपनी रिमझिम की झड़ी लेकर मल्हार गाने लगा था। बूँदों की शहनाई बज रही थी मौसम मचल रहा था और बरसाती वायु सनसनाती हुई बोलने लगी थी। असफलता का ग्रास बना रोहन अपनी उधेड़-बुन में लगा था तभी तो इतना अच्छा मौसम उसे बिल्कुल नहीं रुच रहा था। प्रातः वह नित्य नियमपूर्वक पुस्तकालय जाता। हिन्दी

और अंग्रेजी के दैनिक पत्र देखता और उनमें 'वान्टस' (आवश्यकता है) के कालम ही पढ़ा करता और इसी आधार पर वह दिन में दो-एक जगह प्रार्थना पत्र भेजता था और जो स्थानीय जगहें होती वहाँ स्वयं जाकर तपास करता था।

दिन पर दिन बीतते रहे, मगर रोहन को कामयाबी नहीं मिली। अन्त में जब वह बहुत ही निराश हो गया तो डूबते हुये इन्सान को एक छोटे से तिनके का सहारा मिला। पुलिस डिपार्टमेन्ट में इंस्पेक्टर की जगह खाली थी उसका प्रार्थना पत्र स्वीकार कर लिया गया और परीक्षण में भी वह सर्वथा उतीर्ण ही रहा। वह खुशी से फूला नहीं समा रहा था।

लेकिन विद्याधर ने जब सुना कि रोहन दरोगा होने जा रहा है, तो वे एकाएक कुछ भी नही बोले, मौन होकर रह गये। हीरा बहुत प्रसन्न थी। दिन छिप गया था। आकाश, बिल्कुल स्वच्छ था। कमरे में उमस थी। विद्याधर एक ओर बैठे थे और उनके पास ही बैठा था रोहन। हीरा दोनों पर पंखा झल रही थी वह पुलक भरे स्वर में पति की ओर देखती हुई कहने लगी—'देखा! मैं कहती थी न, कि मेरा रोहन कोई बहुत बड़ी नौकरी करेगा, जब वह थानेदार बन जायेगा और गाँव मोतीपुर आयेगा तो लोग उसके मुँह की ओर देखेंगे, बस अब हमारी गरीबी दूर हो गई। बड़ी अच्छी नौकरी है इसमें रोहन को नाम भी मिलेगा, इज्जत होगी और पैसा तो उसके पीछे-पीछे फिरेगा। क्या रखा है मास्टरी में! दिन भर बेचारे का माथा खाली होता रहता।"

यह सुनकर विद्याधर एक बोझिल हँसी हँसकर गरुये स्वर में बोले—"बस कह चुकीं तुम? मुझे नाम, पैसा, और इज्जत कुछ नहीं चाहिए। यह नौकरी मे रोहन को नही करने दूँगा। मै······।"

"क्या कहते हो? यह नौकरी नही करने दोगे रोहन को! फिर···।

हीरा को जवाब देने के लिये अभी विद्याधर ने मुँह खोला ही

था कि सकते की हालत में आ, रोहन पूछने लगा—"क्यों, क्या बात है पिताजी ? यह नौकरी आपको पसन्द नहीं है क्या !"

विद्याधर गम्भीरतापूर्वक मुस्करा दिये और पुत्र को समझाते हुये बोले—"रोहन ! तुम हमारे अकेले लड़के हो इसलिये मैं चाहता हूँ कि पुलिस लाइन में न जाओ। यह डिपार्टमेण्ट ऐसा है कि तुम चाहे जितनी नेकनीयती से काम करो; लेकिन लोग फिर भी तुम्हें बदनाम करेंगे, मुँह पर जी हुजूर कह कर पीठ पीछे गालियाँ देंगे, तुमको कोसेंगे और साथ ही तुम्हारे परिवार को भी अपनी बद्दुआ देने से नहीं छोड़ेंगे। जानते हो ऐसा क्यों होता है ?"

रोहन समझदार होने पर भी बाप के सम्मुख अनभिज्ञ बन गया। वह जिज्ञासावश उनका मुँह ताकने लगा और विद्याधर कहने लगे—एक मछली सारे तालाब को गन्दा कर देती है और फिर सौ कौवों के बीच एक बगुला पहुंच जाता है तो वह बगुला नहीं कहा जा सकता। लोग उसे सफेद पालिश पुता काला कौआ ही समझते हैं। कम तनख्वाहों पर काम करने वाले पुलिस के आदमी अपनी जरूरतें किस तरह पूरी करते हैं यह तो तुम जानते ही होगे। अब तुम बच्चे नहीं हो। मैं ऐसी कमाई नहीं चाहता जो दूसरों का मन दुखाकर, भय दिखाकर या तिकड़म से जबर्दस्ती पैदा की जाय। आजकल क्या गाँव और क्या शहर सब जगह पब्लिक पुलिस की निन्दा कर रही है; क्योंकि रियाया के साथ पुलिस का व्यवहार अच्छा नहीं है। रोहन कोई कम तनख्वाह की छोटी-सी नौकरी तुम्हें मिल जाय चाहे वह सरकारी हो या और कोई मुझे उसमें सन्तोष रहेगा। यह नौकरी करने की कोई जरूरत नहीं।"

रोहन ने बाप के सामने तर्क नहीं किया। सीधे सादे, सरल शब्दों में उसने बहुत जोर दिया और हीरा ने भी पुत्र का ही समर्थन किया, किन्तु विद्याधर ने रोहन को स्वीकृति नही दी। वे बोले—"रोहन

तुम अभी कड़ुवा बोलना भी नहीं जानते हो, गालियाँ देना भी अभी तुमने नहीं सीखा तो फिर बताओ पुलिस में नौकरी करके मुलजिम पर डण्डे बरसा पाओगे ?"

रोहन अपने पर दृढ रहकर बोला—"कानून यह नही कहता है, पिताजी कि पुलिस अपराधी पर हाथ उठाये और दण्ड दे, कसूरवार को गाली देना और पीटना इसके लिए तो कानून में कहीं भी गुञ्जाइश नहीं न जाने पुलिस वाले ऐसा क्यों करते हैं ? आखिर फिर अदालतें किसलिये हैं ? मैं नौकरी जरूर करूँगा; लेकिन ये ओछे काम मुझसे नहीं होंगे।"

"तो तुम पुलिस की नौकरी नहीं कर सकते। अगर मुकदमे कम हुये और मुलजिमों के साथ तुमने रियायत की तो वहाँ तुम्हारी दाल नही गलेगी; और तुम इसी अपराध में नौकरी से अलग हो जाओगे। वहाँ का दस्तूर है कि जो भी मुलजिम बनकर आये उसकी कसकर खूब पिटाई हो और मिसिल भेजते समय उसमें लिख दिया जाय कि दरम्यान गिरफ्तारी भागने पर मुलजिम के चोटें आईं और अदालतें यह मान लेती हैं। बस, अब और क्या बताऊँ तुम भी एक अरसे से शहर में रहते हो पुलिस का रवैया देखते हो, भला कौन खुश है इससे ! इसलिये अपना इरादा बदल दो, इसमें कोई सार नही है।"

रोहन तब विवश होगया और दुखी होकर कहने लगा—"न जाने ऐसा क्यों है कि जिन्हें हम रक्षक समझते हैं वे भक्षक बन बैठते हैं, इगलैंड, फ्रांस, जर्मनी, रूस आदि देशों की पुलिस अपने में एकदम अनूठी है। लन्दन में जाकर अगर आप कॉस्टेबिल से किसी जगह का पता पूछें तो वह आपको केवल पता ही नहीं बतायेगा बल्कि उस स्थान तक आपको पहुँचा देगा। क्या यहाँ ऐसा नही हो सकता ?"

"हो क्यों नहीं सकता है, हवा हमेशा एक सी ही नहीं बहती है तुम अपना काम करो इस चक्कर में न पड़ो।"

विद्याधर की यह बात सुनकर रोहन अब वहाँ बैठा नहीं रह सका। वह अपने कमरे में चला आया और चारपाई पर बैठ ठुड्डी पर हाथ रख सोचने लगा—"मुझे पिता जी का कहना मानना ही होगा उनका अनुभव पक चुका है, उन्होंने दुनियाँ देखी है वे सबसे पहले मेरा हित देखेंगे और मुझे भी उनके ही आदेशों पर चलना श्रेयस्कर है; क्योंकि मैं इकलौता हूँ और वे अब अपङ्ग हो गये हैं, उनका मान रखना और सेवा सत्कार करना ही मेरा धर्म है।

## बत्तीस

चारुशीला का मन अपनी प्रैक्टिस में खूब लगता था। वह तन-मन से अपने कर्त्तव्य का पालन कर रही थी। यही कारण था कि उसके दवाखाने में आने वाले बीमारों की संख्या दिन पर दिन बढ़ती जा रही थी। लगन से किये हुये कार्य हमेशा फलीभूत होते हैं यह आदिकाल से चली आ रही परम्परा की पुकार है।

चारु की डिस्पेंसरी के पड़ोस में ही एक दाँतों के डाक्टर आकर आबाद हो गये थे, नाम था हरीश-कुमार। हरीश साँवले रंग, मध्यम कद और चौड़ी छाती वाला छब्बीस-सत्ताईस वर्ष का युवक था। पैंट बुशशर्ट उसके बदन पर पर ऐसी फिट आती कि लगता था यह कोई अभिनेता है जो कोई उच्चकोटि की भूमिका अभिनीत करने के लिये सज्जायुक्त होकर रंगमंच पर आया है। ऐसी ही थी उसकी बत्तीसी जो देखने वालों को अच्छी लगती थी। वह हँसमुख व्यक्ति था, गुस्सा करते हुये उसे शायद ही किसी ने देखा हो। वह डेन्टिस्ट था और चारु थी फ़िज़ीसियन। दोनों की वृत्ति जन सेवा और परोपकार की थी।

दोनों का प्रथम परिचय ही मैत्री में परिणित हो गया, तत्पश्चात् प्रगाढ़ता और घनिष्ठता उसमें अपना-अपना योग प्रदान करने लगीं।

इस प्रकार चारु और डाक्टर हरीश में अच्छी पटती थी। चारु के पास कार नहीं थी। वह शीघ्र इसके लिये प्रबन्ध करने जा रही थी; क्योंकि राधामोहन चाहता था कि उसकी बहन लेडी डाक्टर है, उसे ताँगे पर नहीं—कार पर चलना चाहिये। हरीश के पास अपनी निज की मोटर थी। धीरे-धीरे अब यह होने लगा कि डिस्पेसरी बन्द करके हरीश चारु को अपनी कार पर बैठाकर उसके घर छोड़ आता जबकि उसका घर आर्य नगर में था।

धीरे-धीरे चारु अपने मन में यह अनुभव करने लगी कि जब वह हरीश के सामने होती है तो उसका मन मोह से कुलाचे मारता रहता है और अकेले में यह अनुभूति होती है कि जैसे उसके हाथों के तोते उड़ गये हैं। वह उनकी तलाश कर रही है।

एक दिन जब दोपहर को पानी खूब तेजी से बरस रहा था और हरीश की कार सड़क पर भरे पानी को चीरती, छप-छप करती आगे बढ रही थी तो सहसा हरीश ने पूछा—"क्यों चारु ! आपने मुझे यह नहीं बतलाया कि आप विवाह क्यों नही करना चाहती है। एक दिन राधामोहन बाबू मुझसे कह रहे थे कि आपने शादी न करने का निश्चय कर रक्खा है। क्या यह वास्तव में सही है ?"

"कुछ अंशों में सही भी गलत हो जाता है हरीश बाबू ! इस प्रसंग को न छेड़िये, नहीं तो व्यर्थ के लिये मेरा अच्छा-भला मन खराब हो जायेगा।" चारु ने छूटते ही इस तरह बात का जवाब दिया। उसकी मुद्रा उदास होगई थी। हरीश ने यह देख लिया। वह धीरे से हँसकर बोला—"चारु देवी ! आप आयु में मुझसे छोटी हैं और यह बात हर आदमी मानता है कि अवस्था के साथ-साथ अनुभव पकता चला जाता है। आपको अपने भइया और भाभी का मन रखना चाहिये।

उनका आशीर्वाद आपको ऊँचा उठायेगा। आपको उन लोगों की बात मान लेनी चाहिये।"

चारु कुछ नहीं बोली। उसे इस समय ऐसा लगा रहा था कि उसका शरीर तो उसके साथ है; लेकिन आत्मा हरीश के चोले में प्रविष्ट हो बोल रही है। हरीश भी मौन था। उसके दोनों हाथ स्टीयरिंग व्हील पर घूम रहे थे। उसकी दृष्टि सामने थी; किन्तु फिर भी कनखियों से वह बार-बार चारु की ओर निहार लेता था। चारु भी गौरपूर्वक उसके मुख की ओर देख रही थी। सहसा दृष्टि टकरा गई—आँखें चार होते ही हरीश सामने पथ की ओर देखने लगा और चारु शरमा गई, वह संकोच से गड़ सी गई थी।

इसके बाद अक्सर ऐसे अवसर आते जब चारु, हरीश को अपने अधिक से अधिक निकट पाती थी। राधामोहन और रेवा को इन दोनों की मैत्री पसन्द थी। दम्पत्ति सोच रहे थे कि डाक्टर हरीश कान्यकुब्ज ब्राह्मण है, यदि चारु का मन इससे मिल जाय तो सोने में सुहागा हो जाय।

और था भी ऐसा ही। चारु का स्वाभाविक आकर्षण दिन पर दिन हरीश की ओर बढ़ता जा रहा था। वह स्वयं नहीं सोच पाती थी कि ऐसा क्यों है।

डाक्टर हरीश के परिवार में कोई नहीं था केवल एक वृद्ध पिता थे जो गत वर्ष ईश्वर के दरबार में चले गये। निज का घर था। घर में एक बूढा नौकर था बदलू जिसने हरीश को अपने हाथों में खेलाया। आज कल खाना भी वही बनाता। वह नौकर की तरह हरीश की सेवा भी करता था और बाप की तरह लाड़ भी पहले जब हरीश के पिता जीवित थे तो वे पुत्र से अनुरोध करते रहते कि बेटा ब्याह कर लो। मेरे सामने घर में बहू आ जाय तो अच्छा है; क्योंकि मेरी भी अब चला-चली की बेला है। तब हरीश हँस कर शरमाता हुआ यह कह

कर टाल देता कि ऐसी जल्दी क्या है पिताजी, फिर देखा जायेगा। और यही जवाब अब वह बदलू को भी देता था।

एक दिन हरीश के साथ चारु उसके घर आई और उसके बाद वह अक्सर आने-जाने लगी। बदलू की बूढ़ी नजर तथ्य को पहचान गई कि हरीश और चारु में प्रेम पनप रहा है। बुड्ढा बहुत प्रसन्न हुआ और आखिर एक दिन उसने हरीश के मन की थाह ले ही ली।

रात का समय था। हरीश मसहरी पर मच्छरदानी लगाये सोने का उपक्रम कर रहा था कि बूढ़ा बदलू ब्राह्मी आँवला की बोतल लेकर उसके पास पहुँचा और सिर में तेल की मालिश करता हुआ बोला—"बबुआ एक बात पूछूँ, बताओगे ?"

"क्यों नहीं बदलू दादा ! एक क्या तुम हजार बात पूछो अभी बताता हूँ। कहो क्या बात है ?" हरीश यह कहने साथ हंस पड़ा।

और बदलू कहने लगा—"ये चारुशीला डाक्टरनी क्या अभी तक कुँआरी ही हैं। मैंने उनके पैरों में बिछुये और माँग में सिंदूर कभी नहीं देखा।"

"हाँ उनका अभी विवाह नही हुआ है।" यह कह कर हरीश बदलू से पूछने लगा—"बदलू दादा ! तुमने यह क्यों पूछा ? क्या···?"

हरीश की बात बीच में ही काट कर बदलू व्यस्त गले से कहने लगा—"कुछ नहीं बबुआ। कुछ नहीं। मुझे तो ताज्जुब हो रहा है कि आखिर आजकल के लड़के-लड़कियों को हो क्या गया है। व्याह न करने की बीमारी सबको लग गई है। राम ! राम ! कैसे बेड़ा पार लगेगा।"

हरीश हँस पड़ा। वह शून्य की ओर देखने लगा। उसकी नीली चुनरी पर रुपहले सल्मे-सितारे टँक रहे थे। चाँद हँस रहा था। उसके मुँह से चाँदी के फूल झर रहे थे। भीनी-भीनी मस्त बयार में मच्छर

दानी की जालीवाली चादर धीरे-धीरे हिल रही थी देर तक बदलू इधर उधर की बातें करता रहा। फिर जब रात ज्यादा हो गई तो उठ कर अपनी चारपाई पर जा सीधा होकर लेट रहा।

थोड़ी देर बाद बदलू नींद में खुर्राटे भरने लगा। लेकिन हरीश की पलकें खुली थीं। वे मुंदने का का नाम ही नहीं ले रही थीं। उसकी आँखों के सामने कल्पना का एक नया संसार बस रहा था कि काश! चारु उसकी जीवन-संगिन बन जाय तो उसके लिये स्वर्ग धरती पर उतर आयेगा। जब तक नींद नहीं आई वह चारु के विषय में ही सोचता रहा। और प्रातः जब सो कर उठा तो रात को देखे हुये सुखद स्वप्न का स्मरण करता रहा, जिसमें उसने देखा था कि वह नदी में पड़ी एक चाँदी की नाव पर बैठा पतवार चला रहा है और चारु खुल-खुल हँसती हुई जल-क्रीड़ा कर रही है। बार-बार वह पानी के छींटे उसके मुंह पर मार देती है। कैसा अद्भुत व्यापार था वह। यह स्मरण आते ही हरीश एक अप्रत्याशित सुख में विभोर हो गया। उसके मुंह से एक ठंडी संतोष की साँस निकल पड़ी।

## तेतीस

डाक्टर हरीश के सम्पर्क में आ चारुशीला अपने में एक अभिनव स्फूर्ति का अनुभव करने लगी थी। उसे लगता था कि उसका जीवन पुष्प खिल उठा है और अब उसके जीवन में कोई भी अभाव नहीं रह गया है। अक्सर वह सोचा करती कि डाक्टर हरीश में न जाने कौन सा जादू है जो बरबस ही मुझे अपनी ओर खींचे लिये जा रहा है। कभी-कभी वह ऐसा भी विचारने लगती कि यदि ऐसा ही जीवन साथी मुझे मिल जाय तो मैं विवाहित रहकर भी स्वतंत्र रूप से अपने प्रत्येक कार्य का संचालन कर सकती हूँ। ऐसा लगता है कि भविष्य की गोद में कोई अनोखी सौगात छिपी है, जो मुझे मिलने वाली है। हरीश ने तो मेरा जीवन ही एकदम बदल दिया है। वह मेरी जीवन वीणा का संगीत बन गया है।

मरीजों से निवृति पाकर चारु हरीश की डिस्पसरी में चली जाती और घंटों उससे बातें करती रहती। हरीश भी प्रायः अवकाश पाते ही उसके सम्मुख आ उपस्थित होता था। दोनों प्रेम के पवित्र बन्धन में बँध चुके थे। हरीश चारु के अभाव में अपने

को सर्वथा अपूर्ण पाता था। और चारु की यह स्थिति थी कि वह हरीश को देवता समझ बैठी थी। अधिक से अधिक समय वह उसके साथ व्यतीत करती।

इस भाँति दिन आगे बढ रहे थे। सावन बीत चला था और भादों के आगमन का सँदेशा लेकर सडी गरमी धरती पर उतर आई थी। जिससे दिन में कई बार आसमान पर काले बादल घुमड आते और बडे-बडे बूँदों में थोडी देर के लिये बरसात हो जाती। चारु एक दिन जिस समय हरीश के दवाखाने में बैठी उससे बातें कर रही थी। तभी हीरा और रोहन ने डिस्पेंसरी में प्रवेश किया।

हीरा की दाढ में दर्द था। वह पीडा से कराह रही थी। रोहन ने अपने मित्रों के मुँह से डाक्टर हरीश की चर्चा सुनी थी कि हरीश बाबू एक अच्छे डेन्टिस्ट हैं। अतः वह माँ की दाढ उखड़वाने के लिये उसको यहाँ लाया था।

चारु रोहन को देखते ही पहचानकर बोली—"कहो रोहन कैसे आये ?

"माँ की दाढ में दर्द है उसकी जड़ बहुत कमजोर हो गई है। डगडग हिलती है। सोचता हूँ कि उसे उखडवा दूँ।" यह कहकर वह हरीश की ओर उन्मुख हुआ और विनयी स्वर में कहने लगा—"डाक्टर साहब ! देखिए आपकी क्या राय है ? ये कल से बहुत हैरान है।"

तब डाक्टर हरीश कोच पर बैठी कराहती हीरा के निकट आया और दाढ का परीक्षण करते हुए बोला—"ऐसी बात नहीं है, उखड़वाने की कोई जरूरत नहीं, जड़ में मैं दवा भर दूँगा, आराम हो जायेगा और दर्द के लिए दो पुड़िया देता हूँ। अभी दाढ़ उखाड़ने से आँखों की रोशनी पर आँच आने का डर है और सीधी सी बात तो यह है कि कच्चे दाँत कभी नहीं उखड़वाने चाहिए।" यह कहकर हरीश अपने कार्य में व्यस्त हो गया और चारु टुकुर-टुकुर उसकी गतिविध को निहारती रही।

ग्यारह बज गये थे। बरसाती धूप बाहर चिलक रही थी और उसकी चिलकन का स्पष्ट आभास पंखे की वायु में प्रतीत हो रहा था। ए० पी० सी० की एक पुड़िया हलक से उतारने के बाद हीरा को कुछ राहत मिली। उसका कराहना बन्द हो गया। तब धीरे-धीरे उसकी दृष्टि चारु की ओर अग्रसर हुई और सहज स्वर में शिष्टता का प्रदर्शन करती हुई वह बोली—"कहो बिटिया चारु। सब अच्छी तरह से तो हैं बहुत दिन हो गये तुम्हारी भाभी को नहीं देखा। कैसा रहता है उनके पेट का दर्द ?"

'उसके लिए न पूछो माँ जी ! इस जिन्दगी में वह भला उनका साथ क्यों छोड़ेगा ? मैंने बहुत कोशिश की; लेकिन पुरानी बीमारी तो जैसे अपने पाँव ही जमा लेती है।"

अभी चारु इतना ही कह पाई थी कि हरीश रोहन से कहने लगा—"अच्छा हो, अगर आप इनके एक इंजेक्शन लगवादें।"

इन्जेक्शन का नाम सुनते ही हीरा चौंक उठी और घबड़ाहट के स्वर में कहने लगी—"नहीं, डाक्टर साहब ! मैं जक्शन नहीं लगवाऊंगी एक तो उतने पैसे नहीं हैं दूसरे मुझे अँग्रेजी दवाइयों से डर लगता है। हमारे गाँव में नस्तर कोई नहीं लगवाता। मैं······।"

डाक्टर हरीश सहज मुस्कान भरे स्वर में बोला—"आप डरती हैं माँ जी ! सुई लग जाने से आपको पूरा-पूरा आराम मिल जायेगा और पैसे कोई ज्यादा नहीं सिर्फ दो रुपये होंगे एक सुई के।"

हीरा असमंजस द्विवधा और संकोच तीनों की गिरफ्त में आगई। वह व्यस्त गले से बोली—"डाक्टर साहब हमारी गरीबी की कहानी आपको मालूम नहीं, रोहन का बाप अपाहिज हो गया है। जब से मील में उनका हाथ कटा, घर में रोटियों के लाले पड़े हैं। रोहन ने इस साल अल० टी० पास किया है दिन भर भटकता है; मगर नौकरी जैसे उसकी

तकदीर में लिखी ही नहीं है खाने को तो जुटता नहीं, सुई के लिए रुपये कहाँ से आये ।"

वातावरण एकदम शान्त था । दोपहर हो जाने के कारण मरीजों का आवागमन अवरुद्ध सा हो गया था, केवल सीलिंग फैन की सरसराहट उस नीरवता को भङ्ग कर रही थी । श्वेत खद्दर का कुरता और मीडियम क्वालिटी की धोती पहने धूल धूसरित पैरो में बाटा की फटी रबड़ की चप्पलें डाले, रोहन हरीश के सामने खड़ा था । इस समय उसकी जेब में डेढ़ रुपये से अधिक न था । अतः किंकर्त्तव्यविमूढ़ सा वह कभी माँ की ओर देखने लगता और फिर अनायास ही उसकी दृष्टि डाक्टर हरीश के चेहरे पर घूम जाती ।

डाक्टर हरीश समझदार आदमी था । उसने तथ्य को निकट से परखने की कोशिश की और यह जानकर कि ये दोनों माँ-बेटे चारु के परिचित हैं उसमें दया उमड़ आई । वह सहानुभूति पूर्ण शब्दों में बोला—"चलो, कोई बात नही । मैं इन्जेक्शन दे रहा हूं, पैसे की कोई चिन्ता नही । चारु देवी के आप लोग परिचित है यह बहुत बड़ी खुशी की बात है, मैं कोशिश करूंगा कि रोहन तुम्हें किसी कालेज में नौकरी दिलवा दूं । जीवन विद्यालय के प्रिंसिपल मेरे मित्र है, आज उनसे मिलूंगा फिर कल तुम्हें बताऊँगा, कि नतीजा क्या निकला ?" यह कह कर वह सिरिंज साफ करने लगा और हीरा के इजेक्शन लगा दिया ।

रोहन की बाछे खिल उठी । हीरा खुशी से निहाल हो गई थी और गद्‌गद् हो गई थी चारु भी । वह रोहन की सिफारिश करती हुई हरीश से बोली—"हाँ, डाक्टर साहब ! आप इस काम के लिये कोशिश जरूर कीजिए । रोहन को नौकरी मिल जाय । मैं बड़ी कृतज्ञ होऊंगी आपकी । वाकई, ये लोग बहुत परेशान हैं । मुझे तो जाने का कभी मौका नहीं मिलता, भाभी शरबती से सुनती रहती हूँ, कि आजकल बड़े संकट के दिन कट रहे हैं रोहन के घर में ।"

"आप नही जानती चारु देवी ! यह जमाना योग्यता का नहीं सिफारिश का है, कहीं रिश्वत चलती है तो कहीं सिफारिश ! सभी पहले अपना घर देखते हैं और उसके भरने की कोशिश करते हैं। एक मरता है तो दूसरा मौजे गाता है। मैं आज ही प्रिंसिपल सूर्यभान से मिलूँगा पूरी-पूरी उम्मीद है कि काम बन जायेगा।"

डाक्टर हरीश की यह बात सुनकर एक अकेली चारु ही नही सभी में हर्ष की लहर दौड़ गई। लगभग पन्द्रह-बीस मिनट तक बातों का सिलसिला चलता रहा। चलते समय रोहन जब हरीश को दवा के पैसे देने लगा तो वह हँस पड़ा और आत्मीयता से ओत-प्रोत वाणी में बोला—"पैसे रख लो रोहन ! हर गरीब और परेशान आदमी मेरा भाई है परोपकार से बढ़कर जिन्दगी में और कोई सुख नही और फिर यह क्यों भूल जाते हो कि जैसी चारु देवी तुम्हारे निकट सम्पर्क में हैं, वैसे ही आज से मैं भी।" यह कहकर हरीश चारु की ओर उन्मुख हुआ और हँसी ले मिस कहने लगा—"क्यों, चारु देवी ! मैं गलत तो नही कह रहा हूँ ?"

इस पर चारु मुस्करा पड़ी और दोनों हाथ बाँध जाने का आयोजन कर रोहन डाक्टर हरीश को नमस्ते करता हुआ, धीरे-धीरे माँ के साथ डिस्पेंसरी से बाहर निकल गया।

जलती चट्टान ठण्डक पाकर शीतल पड़ गई थी हीरा का कलेजा हाथ भर का हो गया था। वह मन में फूली नहीं समा रही थी कि डाक्टर हरीश उसके बेटे को नौकरी दिलवा देगे। उसका मन कल्पना के हवाई घोड़े पर सवार हो दूर देश तक उड़ जाना चाहता था और रोहन के डग अब इतनी जल्दी-जल्दी उठ रहे थे मानो कोई बहुत बड़ा किला फतेह करके वह घर जा रहा हो। सूरज बादलों की ओट में छिप गया था। वायु में कुछ ठण्डक थी ठीक उसी तरह जैसे दोनों माँ बेटे सन्तोष पाकर अस्थिर से स्थिर हो गये थे।

## चौंतीस

प्यार का पौधा पनप रहा था। उसकी जड़ें अमृत से सींची जा रही थीं; तभी उस होनहार बिरवे के चिकने पात सभी को प्रिय लग रहे थे। डाक्टर हरीश और चारुशीला जितना अधिक निकट सम्पर्क मे आते जा रहे थे, उतना ही हर्ष होता था रेवा को और राधामोहन का तो पूछना ही क्या था। उसकी जैसी योजना थी कि चारु की शादी ऐसे ही व्यक्ति से हो जो उसकी वृत्ति का पोषक हो और साथ ही उदार भी। सोने में सुगन्ध आगई थी, पत्थर में फूल खिल आये थे। ऐसा स्वर्णिम संयोग था वह। दम्पति चाहते थे कि चारु को हरीश के हाथों सौंप दिया जाय, यह बहुत अच्छा रहेगा।

इधर यह मनोवृति पल रही थी और दूसरा पक्ष था प्रेमी युगल-हृदयों का; जहाँ जिन्दगी की शहनाई बज रही थी, हृदय-तंत्रियाँ झंकार रही थीं। स्वाभाविक आकर्षण की डोर में बँधे उभर-पक्ष एक दूसरे का आवाहन कर रहे थे, स्वप्न साकार होने को मचल रहे थे, कल्पना यथार्थ से गठ-बंधन करने जा रही थी। एक दिन ऐसा आया जब प्रेम की आँधी

चली और गुलाल सदृश्य दोनों की आँखों में भर गई। यह प्यार का नशा था, जिन्दगी का खुमार था। बरसाती गंगा कुल-कुल करके बह रही थी। चाँदनी छिटकी थी। समय रात के नौ बजे का था। डिस्पेंसरी से उठकर जब डाक्टर हरीश अपनी कार में आकर बैठा तो उसने अनुरोध किया और उसी अनुरोध के वश चारु उसके साथ गंगा तट पर आई थी। सुना जाता था कि गंगा में बाढ आ रही है, पानी शहर के निचले भाग परमट क्षेत्र में आकर भर गया था। उसी जिज्ञासा वश दोनों यहाँ आये थे। हाथ में जल लेकर आचमन करती हुई चारु ने जब गोरे चाँद की ओर देखा, तो वह बिहँस उठी और मुस्करा उठा हरीश भी। सन-सन करती हुई दरिया की हवा सहसा उसको छूकर निकल गई और उसने धीरे से हँसकर पूछ लिया—"क्या सोच रही हो चारु?"

"कुछ नहीं; सोचती हूँ कि वे लोग कितने सुखी हैं जो प्रकृति के पुजारी हैं। शायद उन्हें उसका प्रकोप भी बरदान ही प्रतीत होता है। हम लोग उस देश के वासी हैं, जहाँ घृणा पहले है प्यार बाद में! एक बात पूछूँ, क्या बतायेंगे? आदमी को एक दूसरे पर विश्वास क्यों नहीं होता? चन्द मिनटों की हँसी जिन्दगी भर का रोना बन जाती है और आकर्षण दुराव में क्यों बदल जाता है? आप............।"

"आज ऐसी बातें क्यों कर रही हैं आप? क्या.........।

चारु मर्माहत हो उठी। उसके कलेजे में एक टीस सी उठी और सीत्कार करती हुई वह कहने लगी—"नहीं हरीश बाबू! मुझे आप न कहो, मुझे तुम की संज्ञा पाने में सुख मिलता है।"

हरीश उसके निकट आगया और उस रजत जुन्हाई में उसके आनन पर दृष्टि टिका कर कहने लगा—"सच, तुम कितनी भोली हो चारु! दुनियाँ का मायामोह तुम्हें बहुत सताता है, मुझे ऐसा लगता है कि हम दोनों पूर्व जन्म के साथी हैं, तभी विधाता ने यह संयोग दिया है, जानती हो चारु कि आज का दिन सोने का था और रात चाँदी की।

मैने तुमको, तुम की संज्ञा दी है—क्या उसका प्रतिकार मुझे नहीं मिलेगा ?"

चारु की ग्रीवा नत होगई। उसकी आँखों में शर्म, मन में संकोच और अधरो पर हँसी प्रस्फुटित हो उठी। चक्कर काटता हुआ पानी बुर्ज को चूम रहा था। सामने पुल पर से ट्रेन गुजर रही थी, ईटों के भारी खम्भे काँप रहे थे, ठीक वैसे ही जैसे चारु का हृदय धड़क रहा था और हरीश बिना ताज का बादशाह बना खड़ा था मानों उसे बसुधा की सबसे बड़ी निधि भारती मिल गई हो।

थोडी देर तक दोनों में प्रेमालाप चलता रहा। उसके बाद, जब हरीश चारु को उसके घर पहुंचा कर अपने घर पहुंचा तो गैरेज के पास खड़ा था बूढ़ा बदलू। वह उसके गले से जा मिला और फिर उस बूढ़े शरीर को अपने दोनो हाथों में बाँध एक फुट ऊँचा उठा दिया।

"क्या है बबुआ ! क्या बात है, आज बहुत खुश नजर आरहे हो ? छोड़ो, मुझे छोड़ो—क्या मेरी हड्डी-पसली तोड़ डालोगे ?" कहकर बदलू अपने को छुड़ाने का उपक्रम करने लगा।

बदलू को लिये-दिये हरीश अन्दर आया और एक कोच पर बैठाता हुआ कहने लगा —"दादा ! तुम कितने अच्छे हो, जी चाहता है कि तुम्हारा अभी, इसी समय फोटो उतारूँ।" यह कहकर वह खिल-खिलाकर हँस पड़ा।

"चलो हटो ! मुझे हैरान न करो। खाना खाने की भी फिकर हे या नही ? आज बहुत देर कर दी आने में। कहाँ रहे इतनी देर !" कहता हुआ बदलू उठकर खड़ा हो गया और रसोई घर की ओर जाने लगा।

हरीश को बूढ़े पर अत्यधिक श्रद्धा थी। वह मन ही मन मुग्ध होता रहा कि बदलू उसे कितना चाहता है। इस तरह बाप, बेटे को क्या चाहेगा।

उस रात हरीश, बदलू से देर तक बातें करता रहा। बदलू भी बहुत प्रसन्न था। उसे ऐसा लग रहा था कि हरीश उसका सगा बेटा है। बार-बार वह उसकी बलायें लेता और स्नेहसिक्त स्वर में कहने लगता—"अब सो जाओ बबुआ ! रात बहुत हो गई है।"

× × ×

चारु के जीवन में अचानक इतना परिवर्तन आगया कि वह अपने तन-मन की सुधि ही भूल गई थी। उसकी गति-विधि को रेवा भलीभाँति पहचान रही थी। और राधामोहन बहुत ही प्रसन्न था कि हरीश होनहार युवक है। यदि उसके साथ चारु का ब्याह हो जाय तो दोनों का जीवन सुखमय व्यतीत होगा।

यों तो डाक्टर हरीश अक्सर चारु के साथ उसके घर आया करता था। लेकिन अनन्त चौदस वाले दिन रेवा ने उसे भोजन पर बुलाया। राधामोहन के साथ वह खाने बैठा। चारु रसोई के काम में अपनी भाभी का हाथ बटा रही थी। दोपहर चढ़ रही थी। उमस इतनी बढ़ गई थी कि पंखे की हवा गरम लू की तरह बदन में लग रही थी।

खाते-खाते राधामोहन ने हरीश से पूछा—"क्यों हरीश ! अभी घर बसाने के लिये कुछ विचार नही किया। कब तक बदलू खाना बना-बना कर तुमको खिलाता रहेगा। पता नहीं तुम लोगों ने डाक्टरी क्या पास करली कि सिर पर भूत सवार हो गया कि साहब मैं अभी ब्याह नही करूँगा। ऐसी ही है मेरी चारु भी। वह भी ब्याह का नाम लेते ही बहकी-बहकी बातें करने लगती है।"

हरीश राधामोहन को कुछ जवाब दे इसके पूर्व ही रेवा बोल उठी—"हरीश भइया ! अबकी बार आ रही अगली सहालगों में बहू ले आओ। बिना स्त्री के घर सूना रहता है। समझे कि नहीं ?"

यह बात रेवा ने अपने अपनत्व-प्रदर्शित करते हुए कही थी। हरीश ने विस्तार में न जाकर संक्षिप्त सा उत्तर दे दिया। वह बोला—भाभी ! यह सब मुझसे क्यों कहती हो ? शादी—ब्याह के काम तो बड़े-बुजुर्गों के हाथ ही शोभा देते हैं।"

"अच्छा, यह बात है।" कहकर रेवा हँस पडी।

तभी राधामोहन पत्नी के समर्थन में बोल उठा—"हरीश ठीक कहता है ! यह काम हम लोगों को ही करना होगा। अगली लगनों में मैं हरीश के लिये बहू ले आऊँगा। क्यों हरीश है न ठीक ?" यह कह कर राधामोहन ने मुस्कराते हुये उसकी ओर देखा।

हरीश झेंप गया। वह कुछ नहीं बोला। चारु पहले से ही मौन थी। वह भाई का बहुत अधिक लिहाज करती थी। यदि यहाँ पर अकेला हरीश होता तो एक मिनट के लिये भी चुप नहीं बैठती, बातों के पुल बाँध देती।

उस दिन हरीश से राधामोहन की खूब बातें हुई। रेवा बीच-बीच में बोल पड़ती थी। मगर चारु चुप थी।

हरीश भोजन करके चला गया। शाम को चारु भी अपनी डिस्पेंसरी चली गई। तब राधामोहन और रेवा में हरीश तथा चारु के प्रसंग को लेकर बहुत सी बातें हुईं। निष्कर्ष यह निकाला गया कि हरीश इन्कार नहीं करेगा। उसके साथ ही चारु का ब्याह कर देना चाहिये। रह गई चारु को राजी करने की बात सो उसके लिये दम्पति जानते ही थे कि आजकल चारु का झुकाव हरीश की ओर है। मौका अच्छा है, बात बन जायेगी।

धीरे-धीरे चारु को भी अपने भाई और भाभी के मन्तव्य का पता चल गया। इससे उसकी प्रसन्नता बढ़ गई; क्योंकि वह स्वयं हरीश को अपना जीवन साथी बनाना चाहती थी। उस दिन से वह बहुत प्रफुल्लित रहने लगी।

चारु अब अपने प्रति सोचा करती थी कि मनुष्य का स्वभाव बड़ा विचित्र है। अभी कुछ दिन पहले में यह कहा करती थी ब्याह एक बन्धन है। लेकिन अब अनुभव कर रही हूँ कि ब्याह जीवन का एक आवश्यक अंग है और ऐसा लगता है कि पुरुष के बिना नारी का कुछ भी अस्तित्व नहीं। तुमलीदास जी ठीक ही लिख गये हैं :—

जिय बिन देह नदी बिनु बारी।
तैसेइ नाथ पुरुप बिन नारी॥

और ऐसे ही पुरुष भी अधूरा रहता है नारी के बिना। डाक्टर हरीश मेरे जीवन में देवता बनकर आ रहा है। मुझे उसका अर्घ्य चढ़ाने के लिये प्रस्तुत रहना चाहिये।

## पैंतीस

चारुशीला जब अपनी डिस्पेंसरी में बैठने लगी, फिर वह शरबती के घर कम जा पाती थी। शरबती ने अपना नित्य का नियम बना रखा था कि दोपहर को वह रेवा के पास आ जाती और उसके पास बैठ-कर पढ़ा करती।

यद्यपि देवकुमार को यह बहुत बुरा लगता कि शरबती रोज-रोज राधामोहन के घर जाय; लेकिन फ़िर भी वह उसे मना नहीं कर पाता था। संकीर्ण विचारों का युवक देवकुमार समाज से बहुत डरता था। नगर के वातावरण की बात और थी, सबसे अधिक भय उसे गांव के समाज से लगता। अभी जब गर्मियों में वह शरबती को लेकर गाँव गया था तो वहाँ ज्ञात हुआ कि कला ने सुखरानी से शरबती की शिकायत की थी कि वह वैसे तो शहर में मुँह खोले डाँय-डाँय घूमती है और मेरे घर आने के लिये बड़ी परदे वाली बनती है। उस दिन रोहन के जन्म दिन पर छटनियां खींचने के लिये बेचारी सुहागिलें सबेरे से बैठी रहीं और वह ठीक दोपहर को आई। वह भी जब मैं बुलाने गई तब।

देवकुमार को बहुत बुरा लगा। उसे शरबती पर बहुत क्रोध आया कि यह ऐसी औरत है कि जहाँ जाती है, वहीं मुझे चार बातें सुनने को मिलती हैं।

किन्तु शरबती प्रगति की ओर अग्रसर होती जा रही थी। उसकी पढ़ाई का कार्य-क्रम अनवरत रूप से चल रहा था। उसके मन में आगे बढ़ने की चाह थी। महत्त्वाकाँक्षा सदैव मनुष्य को विकास की ओर ले जाती है। प्रयत्न और परिश्रम दोनों का अटूट सम्बन्ध है। दोनों के सहयोग से सफलता प्राप्त होती है। शरबती अब रामायण पढ़ने लगी थी। वह सास को पत्र लिखती और घर पर आने वाले दैनिक अखबार का भी अध्ययन करती थी। यही नहीं अब एक नई बात और हो गई थी। रेवा ने उसे नवीन प्रोत्साहन दिया कि किसी पुस्तकालय की वह सदस्या बन जाय।

शरबती ने इस ओर पति का ध्यान आकृष्ट किया, तब विवश होकर देवकुमार को उसके लिये पुस्तकालय से किताबें लानी पड़तीं।

इस तरह शरबती की निरक्षरता साक्षरता में परिणत हो रही थी। देखने वाले दाँतों तले उँगली दबा कर रह जाते। आँय एकदम इतना परिवर्तन ! गाँव की गँवार शरबती अब किताबें पढ़ने लगी, चिट्ठी लिखना सीख गई है।

× × ×

रोहन की नौकरी पक्की हो गई थी। वह अब कॉलेज में पढ़ाने जाने लगा था। उसी उपलक्ष में जब उसको पहली तनख्वाह मिली तो हीरा ने सत्यनारायण भगवान की कथा सुनी। उस दिन उसने देवकुमार, राधामोहन और डाक्टर हरीश सभी को भोजन पर निमंत्रित किया।

इस अवसर पर कला भी वहाँ मौजूद थी। शरबती को देख वह मुँह मटकाकर कहने लगी—"सुना है कि बहू आज-कल तुम पढ़ रही हो। कौन आता है पढ़ाने ?"

स्त्री समुदाय में रेवा भी थी। वह कला की बात सुनकर शरबती के बोलने से पहले ही बोल उठी—"मै पढ़ाती हूँ।"

कला को टीका-टिप्पणी करने का मौका नहीं मिला। रेवा के मुँह से जवाब सुन वह खिसिया कर रह गई। तभी एक व्यंग्य कसती हुई कहने लगी—"बूढ़े तोते क्या राम! राम! करेंगे। अब विद्या क्या आयेगी खाक़। पढ़ने की उम्र तो बचपन की होती है।"

रेवा ने पहले तो सोचा कि कला की बात को सुनी-अनसुनी कर जाय; लेकिन फिर यह सोच कर बोल उठी कि झूँठी गप्पें हाँकने वाले को कभी क्षमा नहीं करना चाहिये। वह बोली—"यह बात न कहो बहन। मन में लगन होनी चाहिये, विद्या बहुत जल्दी आती है। और बिना पढ़े-लिखे आदमी की जिन्दगी बेकार होती है। उसे कोई भी अच्छी निगाह से नहीं देखता।"

कला को ऐसा चुभता हुआ जवाब मिलेगा। उसने इसकी कल्पना भी नहीं की थी। आकाश में उड़ने वाला पंछी सदैव यही सोचता रहता है कि मेरे बराबर कोई नही, किन्तु जब दूसरा उससे उड़ान में जबर पक्षी मात देदेता है तो वह फड़फड़ा कर—तिलमिला कर रह जाता है—मानो उसके पर किसी ने काट दिये। उसकी हालत पर कटे पक्षी की भाँति हो जाती है। कला की हालत भी इस समय पर कटे पक्षी की भाँति थी—वह तिलमिला कर रह गई, वह कहना तो बहुत चाहती थी किन्तु घर आये मेहमान की इज्जत का ख़याल था। दूसरा ाल जो उसे था वह यह कि रेवा की ननद चारु के एवं डाक्टर ा के ही कारण तो आज रोहन की नौकरी लगी है। अतः वह चुप । जिसका जीवन कुटिल बातों में ही बीता हो उसे चुप होते देख ज्जुब होता है। अतः आज शरबती को ताज्जुब के साथ-साथ खुशी भी थी कि आज रेवा दीदी के कारण कला को मेरी का मौका नहीं मिला।

## छत्तीस

सरिता सागर से संगम करने जा रही थीं। विपरीत दिशा में बहने वाली हवा अब अनुकूल चलने लगी। आसमान पर छाये काले बादल छँट गये और इन्द्रधनुष निकल आया था। जिसके सातो रँग अपने पूर्ण निखार में मुखरित हो रहे थे। रेवा ने एक दिन चारु के सामने अकेले में यह प्रस्ताव रक्खा कि वह उसका विवाह यदि डाक्टर हरीश के साथ करदे तो कैसा रहेगा ? इस पर चारु निरुत्तर रही।

रेवा मन ही मन मगन हो उठी। चारु के मौन को उसने उसकी स्वीकृति मान ली। इसी आधार पर उसने राधामोहन को विवश किया कि वह डाक्टर हरीश से शादी की बात चलाये। जो पथ्य रोगी चाहता था जब वैद्य ने वही बतला दिया तो फिर उसके हर्ष की सीमा नहीं रही।

राधामोहन ने डाक्टर हरीश से चारु के सम्‍ में बात की। हरीश ने उसका प्रस्ताव मन्‍ लिया। अब कार्तिक चल रहा था, और मुहूर्त बना था अगहन में। इस बीच हरी

अत्यधिक निकट आ गये थे दोनों यदि बातें करने बैठ जाते तो फिर घंटों की फुरसत हो जाती।

इधर राधामोहन के घर में ब्याह की तैयारियाँ चल रही थीं और उधर सबसे अधिक उछाह था बदलू को। वह हरीश के साथ बाजार गया और अपनी पसंद के गहने तथा कपड़े खरीद लाया। हरीश हर काम बदलू से ही पूछ-पूछकर करता था। उसने उसे सदा की भाँति इस अवसर पर भी बाप का दर्जा दे रक्खा था। बदलू को भी उतनी ही खुशी हो रही थी जितनी अपने शरीर से पैदा हुये बालक की शादी-विवाह पर आनन्द होता है।

ज्यों-ज्यों ब्याह की तिथि निकट आ रही थी त्यों-त्यों चारु और हरीश की व्यग्रता बढ़ती जा रही थी कि कब वह शुभ घड़ी आये जब हम दोनों एक सूत्र में बँधे।

× × ×

मंगल कामना लिये राधामोहन भी उस दिन की राह देख रहा था जब कि उसके दरवाजे पर बारात आये। अँग्रेजी बैंड के साथ-साथ शहनाई के भी स्वर कानों में पड़ें। रेवा, दहेज में क्या-क्या दिया जायेगा अहर्निश इसी उधेड़बुन और उसकी व्यवस्था में लगी रहती।

शरबती और देवकुमार का पूरा-पूरा सहयोग प्राप्त था रेवा और राधामोहन को। इसके अतिरिक्त रोहन का परिवार ऐसा था कि वह दोनों ओर से शामिल होना चाहता था। जिस दिन डाक्टर हरीश से रोहन की पहले पहल भेंट हुई और उसके माध्यम से उसे नौकरी मिल गई तभी से वह उससे श्रद्धा करने लगा था और इस नाते हीरा तथा विद्याधर भी डाक्टर हरीश को बहुत मानते थे। यह परिवार आदर चारुशीला और राधामोहन का भी करता था; लेकिन हरीश को सबकी अपेक्षा अधिक महत्व प्राप्त था।

नियत तिथि पर आर्य नगर से खूब धूम-धाम के साथ हरीश की बरात उठी। आगे-आगे बैण्ड था उसके पीछे आतिशबाजी की धूम मच रही थी। हाथी पर सवार बदलू आज सेठ-साहूकारों जैसे कपड़े पहने बैठा था।

राधामोहन के दरवाजे पर नौबत बज रही थी। बारात आई। द्वार-चार हुआ। तत्पश्चात् ब्याह कार्य सम्पन्न होने लगे।

जब चारु हरीश की बहू बनकर डोली पर से उसके आँगन में उतरी तो बदलू ने उस पर पैसे लुटाये और फिर जब उसने उसको थाली परोसी तो अपनी जन्मभर की कमाई से बनवाया हुआ एक सोने का हार उसे दिया।

हरीश की ही भाँति चारुशीला भी बदलू से बहुत सन्तुष्ट थी। वह जब उसे दादा कहकर पुकारती तो बुड्ढा गदगद् हो जाता। वह न तो उसका नाम लेता और न बहू ही कहता था। उसने उसे रानी की उपाधि दे रक्खी थी। सचमुच रानी शब्द बड़ा प्यारा था।

अक्सर चारु और बदलू में परस्पर हुज्जत होने लगती तब हरीश को बड़ा आनन्द आता था। चारु कहती कि खाना मैं बनाऊँगी; लेकिन बदलू बीच में व्याघात बन जाता। उस समय वह चारु को ऐसा जवाब देता था कि वह शर्म से झुक जाती और हरीश हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाता।

चारों ओर सुख और समृद्धि की त्रिवेणी लहरा रही थी। चारु और हरीश दोनों ही धरती के स्वर्ग पर विचर रहे थे। वह उसके लिये देवी थी और देवी अपने देवता को परमेश्वर समझती थी।

## सैंतीस

चारुशीला और हरीश का दाम्पत्य जीवन सुख-पूर्वक व्यतीत हो रहा था। सुख के स्रोत में शान्ति का समावेश था, तभी सन्तोष की लहरियाँ उसमें उठ रही थीं। जब कभी चारुशीला अपने पीहर भाभी रेवा के घर आती तो बदलू उसके साथ आता। रेवा उसकी, घर के एक बुजुर्ग की तरह सत्कार करती। वह उसे डाक्टर हरीश का नौकर नहीं, बल्कि अभिभावक समझती थी।

दोनों की प्रैक्टिस अच्छी चलती थी। एक कुशल और अनुभवी लेडी डाक्टर होने के नाते चारु का स्त्री-वर्ग में अधिक सम्मान था। उसकी फीस और दवा के पैसे अधिक नहीं होते थे, जब कि आजकल के जमाने में एक बार डाक्टर को दिखलाने और दवा लेने में बीमार की कमर टूट जाती है। मँहगाई के युग में जब हर चीज मँहगी है, तब चारु की फीस और दवा का बिल बहुत सस्ता था। इसीसे उसे प्रसिद्धि मिली, तथा उसकी प्रैक्टिस इतनी तेजी से इतनी ऊँची उठी कि कानपुर के सभी डाक्टरों एवं लेडी डाक्टरों को अन्दर से ईर्ष्या भी होती थी।

हरीश एक दक्ष दन्त-चिकित्सक था। अस्पताल में ही उसने अच्छी-खासी कीर्ति अर्जित कर ली थी। इसके अतिरिक्त उसकी मिलनसारिता और परोपकारी वृत्ति ऐसी थी कि वह सबका मित्र था, दुश्मन किसे कहते हैं, यह वह जानता ही नहीं था।

एक दिन देवकुमार और शरबती, दोनों डाक्टर हरीश के घर आये। उस दिन इतवार था। चारु और हरीश के दवाखाने इस दिन शाम को बन्द रहते थे। चारु ने शरबती को हाथों-हाथ लिया। उसकी बड़ी आवभगत की। उसने पूछा—"भाभी! आजकल आपकी पढ़ाई-लिखाई का क्या हाल है?"

"चल रही है।" शरबती ने धीरे से जवाब दिया।

यह बात निकट बैठे देवकुमार ने सुनी। तभी सहसा उसकी दृष्टि सामने उठ गई। उसने देखा कि डाक्टर हरीश उसका मुँह ताक रहे हैं। उसे अपने पर लज्जा आई कि डाक्टर हरीश को चारु ने बतलाया होगा कि शरबती अपढ़ है और अब उसने पढ़ना शुरू किया है। एक क्षण में ही वह तमाम बातें सोच गया कि अपने-अपने संस्कार होते हैं। वे लोग धन्य होते हैं जिनके घर में कुशल गृहणी होती है, वही कुलबधू, वही गृहलक्ष्मी बनकर समाज में सिरमौर बनती है। काश! मुझे शरबती की अपेक्षा एक योग्य पत्नी मिली होती।

डाक्टर हरीश, देवकुमार के साथ एक पुराने दोस्त की तरह पेश आया। दोनों में मुक्त वार्तालाप काफी देर तक चलता रहा।

शरबती ने घर जाने के लिए जल्दी मचाई; किन्तु चारु ने इस ओर बिलकुल ध्यान ही नहीं दिया। उसने दम्पति को शिष्टतापूर्ण व्यवहार की डोर में बाँध लिया उन्हें रुकना ही पड़ा।

और जिस समय दम्पति हरीश के घर से बाहर निकले तो सामने एक पान की दूकान में लगे क्लाक में दस बज रहे थे।

× × ×

मनुष्य की मनःस्थिति जब अच्छी नहीं होती है, तो वह ऊट-पटांग बकने लगता है। ऐसी हालत में उसको मिनट-मिनट पर क्रोध आता है और अच्छी भी बात सुनने में बुरी लगती है। देवकुमार को न जाने शरबती के प्रति सन्तोष क्यों नहीं होता। वह आक्रोश में उसको कटु से कटु शब्द कह जाता। तब शरबती उसके मुँह की ओर देखने लगती थी। वैसे ही आज उसने घर आते ही उसके लाठी-सी मार दी। उसने कहा—"शरबती! अब तुम काफी पढ़ गई हो। रेवा भाभी के पास जाने की अब कोई जरूरत, मेरी समझ में तो नहीं आती। पुस्तकालय से किताबें मैं ले ही आता हूँ। राधामोहन के घर कल से तुम पढ़ने नहीं जाओगी, समझी।"

शरबती कुछ नहीं बोली। वह यह सोचकर चुप रही कि अगर मैं कुछ बोलूँगी, तो अभी बात बढ़ जायेगी। उसको चुप देख देवकुमार फिर कहने लगा—"चिट्ठी लिख लेती हो, रामायण पढ़ लेती हो—फिर और क्या चाहिये तुम्हें? इस पर भी अगर और आगे पढ़ने का तुम्हारा मन हैं, तो मुझसे पढ़ लिया करो। इसके लिये रेवा के पास जाने की आवश्यकता नहीं; क्योंकि इससे मेरा पल्ला हल्का पड़ता है।"

शरबती इस पर भी मौन रही। वह पति के सामने से हट गई और जिस समय कमरे से बाहर निकल रही थी, तभी उसकी आँखों से दो बूँद आँसू फर्श पर चू पड़े।

× × ×

दूसरे दिन शरबती, रेवा के पास पढ़ने नहीं गई। कई दिन तक उसने कोई पुस्तक नहीं छुई। लेकिन अध्ययन भी एक नशा है और नशे की लत ऐसी होती है कि यदि एक बार आदत पड़

गई, तो फिर जिन्दगी भर नहीं छूटती । शरबती का मन पढ़ने में खूब लगता था । एकान्त में पुस्तकें ही उसकी सहेली होती थीं । आखिर उसका मन नहीं माना और उसने पुस्तकालय की किताब समाप्त कर पति को दी कि दूसरी ले आये ।

देवकुमार को यह बेगार बहुत खलती थी । उसने किताब एक ओर मेज पर पटक दी और उपेक्षापूर्वक कहने लगा—"बदल लाऊँगा, जल्दी क्या है ? तुम तो दिनभर किताबों में ही खोई रहती हो । किताबी-कीड़ा बनना ठीक नहीं ।"

शरबती के मन में ठेस लगी; लेकिन उसने उफ तक न की—चुप्पी साध कर रह गई ।

देवकुमार तीन-चार दिन बाद पुस्तकालय से दूसरी पुस्तक लाया । इसी तरह जब कभी शरबती उससे कुछ पूछना चाहती और किताब लेकर उसके पास बैठ जाती तो वह खीझ उठता था और अक्सर यह कहकर टाल देता था कि तनिक फुरसत मिली कि तुमने आकर घेर लिया । मै कहता हूँ कि क्या वकालत करनी है तुम्हें ? इतना बहुत है ।

शरबती सब कुछ सुन लेती और एक लम्बी साँस लेकर रह जाती । वह अक्सर सोचा करती कि वे स्त्रियाँ कितनी सुखी होती होगी, जिन्हें पति का प्रेम प्राप्त होता है । एक मैं हूँ बद-नसीब ! जिसकी न कोई चोली है और न दामन । गठबन्धन ऐसे आदमी से हुआ है जो बहुत ही ज्यादा तुनक-मिजाजी है कि नाक पर मक्खी नहीं बैठने देता । काश ! जिस तरह वे ( देव-कुमार ) अपने अधिकारों का प्रयोग स्वतन्त्रतापूर्वक कर लेते हैं, वैसे ही मेरे हकों को भी समझ पाते । आखिर मेरा दोष क्या है ? एक तरफ तो कहते हैं कि गँवार है और जब मैं पढ़ने लगी

तो उसे यह कह कर रोक दिया कि बस, बहुत होगया—अब क्या वकालत करनी है। सच, मेरा जैसा भाग्य ईश्वर किसी को भी न दे। उसे स्वयं पता नही था कि कितनी देर से उसकी आँखे आँसू ढाल रही हैं पृथ्वी की गोद में !

## अड़तीस

चारुशीला के ब्याह को एक वर्ष व्यतीत होगया था। इस बीच वह रोहन के परिवार से बहुत हिल-मिल गई थी। अक्सर हीरा और रोहन उसके घर आते रहते थे। एक दिन बातों ही बातों में उसे पता चला कि विभा का ब्याह रोहन के साथ हो रहा है। वह सुनते ही चौंक उठी।

चारु का अन्तर्मन इसके लिए कभी प्रस्तुत नहीं था और न वह पसन्द ही करती थी कि विभा का सम्बन्ध रोहन से हो। यद्यपि वह विभा से स्नेह करती थी; लेकिन फिर भी यह नहीं चाहती थी, कि सदा-शिव विद्याधर का समधी बने और बार-बार कानपुर आये। पता नहीं उसे सदाशिव से अब तक इतनी घृणा क्यों थी ? एक क्षण में ही उसने बहुत सी बातें सोच डालीं कि विभा जब बहू बनकर रोहन के घर आयेगी तब रोहन के घर वालों की व्यवहारिकता रिश्तेदारी में बदल जायेगी। फिर मान लो किसी प्रकार मेरी और शोभा की अनबन का पता विद्याधर के घर में सबको चल गया, तो सदाशिव के साथ घटी हुई घटना को सभी लोग दुहराने लगेंगे और यह में

अच्छी तरह से जानती हूँ कि करोड़ों पाप अर्जित करके भी आदमी बद-नामी के चंगुल में नहीं फंसता और औरत छींक आते ही बदनाम हो जाती है। लोग सदाशिव को दोष नहीं देंगे मेरे ही चरित्र की कटु आलोचना करेंगे। ऐसी स्थिति में मैं यह व्यूह रचने ही क्यों दूँ, जिसमें सात महारथी एक साथ मिलकर अन्यायपूर्वक अभिमन्यु का बध कर डाले।

इसीलिए जब हीरा ने कहा कि लड़की के पिता सदाशिव बतलाते थे कि तुम उसकी मौसी लगती हो, तब तो बड़ा अच्छा रहेगा, रिश्तेदारी निकल आने से हमारे घरों का नाता खूब गहरा हो जायेगा। तब चारु छूटते ही बोल उठी—'ठीक है, माँ जी! लेकिन मैं कुछ कहना चाहती हूँ मेरे लिए न आप गैर हैं और न सदाशिव! एक बात जरूर कहूँगी। क्योंकि आपसे मन मिल गया है और मैं आपकी इज्जत करती हूँ। अभी तो कोई बात नहीं, ब्याह हो जाने के बाद अगर आपको कोई ऊँची नीची बात मालूम होगी, तो फिर मुझे ही दोष दोगी कि चारु तुमने भी नहीं बतलाया ?"

हीरा भौचक्की सी हो चारु का मुँह देखने लगी। उसके मुँह से जिज्ञासापूर्ण शब्दों में निकल गया—"क्या बात है चारु? अभी टटकी गोहार है अच्छा किया जो तुम्हारे सामने बात छेड़ दी।"

अब चारु को कहने का मौका मिल गया। वह अपनत्व भरी वाणी में बोली—"माँ जी! खानदान अच्छा नहीं है खुद सदाशिव ही पतले चरित्र के आदमी हैं। मैं इतने दिन लखनऊ में रही; लेकिन उनके घर बहुत कम आती-जाती रही। सुना है वे बहुत जल्दी फिसलते हैं न जाति देखते हैं और न पाँत; मैं पहले ही बताये देती हूँ, जिसमें बाद में आपको कहने का मौका न मिले।"

"मैया री मैया! अच्छा किया बिटिया, नहीं तो मैं फँस जाती ले-देकर मेरे एक लड़का है और फिर उसकी भी बहू ऐसे घर की आये

जिसका बाप कुकर्मी हो। बदचलनी से मुझे बहुत बैर है अभी जाकर कहती हूँ रोहन के बाप से कि बरीक्षा-व्यवहार वापस कर दें यह ब्याह नहीं होगा।" यह कह उत्तेजित हीरा उठ खड़ी हुई और आने का आयोजन कर बोली—"अच्छा बिटिया चारु, फिर आऊँगी, अभी तो जैसे मुझे उठा-बैठी लगी है सारी देह में चीटियाँ सी काट रही हैं।"

चारु की योजना कार्यान्वित होने जा रही थी इससे उसे तसल्ली हुई। जब हीरा चौखट लाँघ गई, तो चारु के मुँह से अनायास ही अस्फुट स्वर में निकल पड़ा—"सदाशिव तुम आदमी नहीं पिशाच हो, तुमने मुझे भ्रष्ट करने की कोशिश की मैं प्रतिशोध की आग में जलती रही आज की बाजी मेरे हाथ है जब मात खाओगे तो अपने गुनाहों को याद करके मन ही मन रोओगे।"

× × ×

हँसी विषाद में परिणत हो गई थी। जिस समय हीरा घर पहुँची तो विद्याधर और कला बैठे आपस में सलाह कर रहे थे, कि चढ़ाये में बहू को कौन-कौन सा गहना बनेगा, आतिशबाजी तो लखनऊ में ही मिल जायेगी पालकी, कहार और बाजेवालों का खर्च दूना आयेगा, क्योंकि समठौन ( निकासी ) के बखत बाजे और पालकी की जरूरत तो पड़ेगी ही।

अन्धेरा आँगन में उतर आया था और कला ने अब तक दिया नहीं जलाया। रोहन अपने कमरे में बैठा अम्बर चरखे से सूत कात रहा था। प्राय: नवयुवकों की रुचि ऐसी रहती है कि अपनी शादी-ब्याह की बाते सुनने में शर्म और संकोच का प्रदर्शन करते हैं; लेकिन छिपकर सुनना जरूर चाहते हैं। आते ही हीरा कला के पास बैठ गई और दोनों हाथ नचा कर बोली—"गजब हो गया ! अभी चारु से मालूम हुआ कि रोहन की ससुराल अच्छी जगह नहीं हो रही है। लड़की का बाप बदचलन है।"

रोहन के कान खड़े हो गये। उसके हाथ जहाँ के तहाँ रह गये और विद्याधर सकते की हालत में आ गये। कला चौंक कर बोल उठी—'अँय ये शहर वाले क्या ऐसे ही होते हैं मैं पहले ही कहती थी कि रोहन का ब्याह शहर में नहीं देहात में होना चाहिये। शहर की आयेगी मुँह खोले घूमेगी, दाबे नहीं दबेगी दाबे। और गाँव की लड़की झुक कर चलेगी फिर शहर में क्या पता कौन बाम्हन और कौन चमार। हों चाहे ढाँकर ( छोटी मर्यादा वाले ब्राह्मण ) ही; लेकिन अपने को पूरे बीस बिसुआ की मरजाद का बाला के सुकुल ही बतायेंगे। सुना दद्दा !" यह कह कर कला ने विद्याधर का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया और फिर गोसे की बात कहने लगीं—"मैं जो कहती हूँ वह करो, लौटा दो बरीक्षा-व्यवहार उनका। रोहन को पोर-पोर ब्याह जायेगी। हुलासी पंडित कहते थे कि दुलाइन के पुरवा में मनोहर पाँण्ये की लडकी है, दहेज भी खूब देंगे। उनके घर में चार हर (हल) की खेती होती है।

विद्याधर बुत बने बैठे थे। हीरा और कला अपनी-अपनी कह रही थी। उनकी समझ में नही आ रहा था कि क्या करें ? मसला जटिल था जल्दी सुलझने के लक्षण नही थे। अतः प्रसंग बदलने के लिये वे जल्दी से हीरा से बोल उठे—"कुबेरिया हो गई, दिया बत्ती नहीं करोगी क्या ?"

हीरा उठ कर मिट्टी के तेल की ढिबरी जलाने लगी। विद्याधर परेशान हो कमरे से बाहर आ, आँगन से टहलने लगे। लेकिन कला का मुँह बराबर चलता रहा था।

हीरा रोहन के कमरे में लालटेन जला कर रख आई। उस समय अमावस की रात भलीभाँति निखर आई थी। आज चन्द्रमा कैद था, तारे रो रहे थे, क्योंकि चाँद की जुदाई उन्हें असह्य थी, इसी से वे अशांत थे और वैसे ही अशांत थे विद्याधर भी। उलझन में पड़े हुए वे

सोच रहे थे कि ब्याह, बैर और दोस्ती बराबर वाले से ही की जाती है और जो अपनी टक्कर का आदमी न हो, उससे रिश्ता कैसा ? वाकई ये सब काम बहुत पेचीले होते हैं । कभी सोचते, चारु ने इस समय हमारी इज्जत बचाली अन्यथा कहीं ब्याह बाद यह पता लगता तो लोग रोहन पर छींटा कसते कि इसका सुसर बदचलन है, और चारु कोई गलत बात थोड़े ही बतायेगी—वह लड़की की मौसी जो होती है रिश्ते में । लड़की की खानदानी इज्जत में दोष भले ही न हो, पर बाप में कोई दोष है तो भाव वाले कब्र चूकने वाले हैं—उन्हें तो किसी का भी दोष तिल बराबर दिखाई भर दे जाय, उसे ताड़ बना देना तो उनके बांये हाथ का खेल ही समझियेगा । अतः अच्छा यही है कि यह बातचीत यहीं समाप्त कर दी जाय ।

## उन्तालीस

विद्याधर का स्वभाव था कि किसी भी काम करने में वे जल्दी नहीं करते। चारु ने जो कुछ हीरा से कहा था—उसको उन्होंने सुना, समझा और गहराई से विचार किया। सारी बातों का निष्कर्ष यह निकला कि उन्होंने निश्चय कर लिया कि रोहन का ब्याह सदाशिव के घर में नहीं करना है। क्योंकि चारु पर वे विश्वास करते थे और यह भी जानते थे कि वह उनके परिवार का हित चाहने वाली है। यही सोचकर वे उसके पास कुछ पूछने-पछोरने भी नहीं गये।

यद्यपि विद्याधर इस बात को अच्छी तरह से जानते थे कि राधामोहन बाबू सदाशिव के सम्बन्धी हैं। मैं जब वरीक्षा-व्यवहार वापस करूँगा तो सदाशिव, राधामोहन को मेरे सामने लायेगा और उनसे दबाव डलवाने की पूरी-पूरी कोशिश करेगा; लेकिन फिर भी उनका निश्चय दृढ़ हो चुका था कि यह ब्याह नहीं करना है।

एक बात और थी, वह यह कि विद्याधर किसी पर भी यह भेद नहीं खोलना चाहते थे कि

चारु ने हीरा को बताया था कि सदाशिव का खान्दान अच्छा नहीं है। वह बदचलन आदमी है। इसीलिये कला और हीरा को भी उन्होंने सख्त ताकीद कर दी कि भूलकर भी वे दोनों किसी से यह राज न बतायें। इसके लिये एक सीधी सी तरकीब सोच रक्खी थी उन्होने कि सदाशिव से कह दूँगा कि लड़का अभी ब्याह करने को राजी नही है।

जब विद्याधर की योजना कार्य-रूप में परिणित हो गई तो वही हुआ जो उन्होंने सोचा था। सदाशिव आगे-आगे कानपुर आये। लेकिन उनकी सारी कोशिशें बेकार गईं। विद्याधर राजी नही हुए। जब राधा-मोहन और देवकुमार उनके बहुत पीछे पड़े तो उन्होंने दूसरी युक्ति तत्काल ही सोच ली। अबकी बार उन्होंने यह कहकर जान बचाई कि भाई मैं क्या करूँ, गाँव से पिताजी का सन्देश आया है—उन्होंने दूसरी जगह बात पक्की कर ली है, फिर आप लोग ही बताइये कि उनकी बात मैं कैसे काटूँ, इसके अलावा लड़का भी राजी नहीं है।

जब बात नहीं बनी तो सदाशिव लखनऊ वापस चला गया। वह चारु से नहीं मिला और यही कारण था कि डाक्टर हरीश से भी उसकी भेंट नहीं हो सकी।

यह समाचार जब चारु को विदित हुआ कि रोहन की सगाई छूट गई है, तो उसने संतोष की साँस ली और सोचने लगी कि चलो अच्छा हुआ, बिना बयारी के ही जूना टूट गया।

लेकिन एक बात थी, जो चारु के अन्तर को अहर्निश कचोटती रहती थी। वह सोचा करती और सोच-सोच कर अपने पर खीझा करती कि आखिर उसने ऐसा क्यों किया। वह विभा को पुत्रीवत् स्नेह करती थी, फिर अपने स्वार्थ के लिये उसके साथ यह अन्याय क्यों कर बैठी। प्रायश्चित की भावना उसके मन में जागती, तब उसे इस संतोष की अनुभूति मिलने लगती कि इज्जत बचाने के लिये आबरू पर धब्बा न लगने देने के लिये आदमी बड़ी से बड़ी कुर्बानी कर बैठता है।

विभा क्वाँरी नहीं रहेगी। उसका ब्याह यहाँ नहीं कहीं अन्यत्र हो जायेगा, रोहन के साथ ब्याह होने पर बहुत बड़ी सम्भावना क्या बल्कि तय था कि कब्रें खोदी जातीं, जमीन में गढ़े हुए मुर्दे बाहर निकलते, उसकी सड़ाँध से चतुर्मुखी वातावरण दूषित होता। लोग मेरे चरित्र पर संदेह करते और बहुत सम्भव था कि मैं सबकी नजरों से गिर जाती और मेरा जीवन-देवता हरीश भी कहीं भ्रम में पड़ जाता, तो मेरे लिये जमीन और आसमान में कहीं भी ठौर न रहता।

× × ×

सूरज, चांद और सितारे इनको हम नित्य देखते हैं। इनके शीत, ताप और प्रकाश सभी का अनुभव करते हैं; लेकिन उन तक पहुँच नहीं सकते। फिर स्पर्श की बात तो दूर चली जाती है। ऐसे ही जिन वस्तुओं से हमारा सम्पर्क है, वे बहुत जल्दी पुरानी लगने लगती हैं। फूल देखने में आकर्षक लगता है, उसकी सुरम्भ पर मनुष्य मुग्ध हो जाता है; किन्तु वह तब तक ही सुन्दर रहता है जब तक तोड़ा नहीं जाता। क्योंकि हाथ में आते ही वह कुम्हला जाता है। तब तोड़ने वाला उसे सूँघ कर फेंक देता हे। ऐसी स्थिति में उसकी सुन्दरता और सुगन्धि का कुछ भी अस्तित्व नहीं रह जाता। यही परिस्थिति प्रेम की है। वह किया नहीं जाता, हो जाता है। प्रेम पवित्रता का प्रतीक है। वासना उसकी हत्या कर देती है। विश्व विदित है कि अधिकाँश दम्पति दाम्पत्य-जीवन व्यतीत करते हुए भी सर्वथा प्रेम से परस्पर रीते रहते हैं। चारुशीला और हरीश जब ब्याह के बन्धन में नही बँधे थे तो दोनों एक दूसरे का बहुत मान करते थे, गुमान का तो कहीं नाम भी नहीं था। धीरे-धीरे दोनों में यह नौबत आगई कि जो चारुशीला, हरीश को हमेशा सामने देखना चाहती थी वह अब घण्टों पृथक रह कर भी इसकी आव-श्यकयता नहीं महसूस करती। हरीश उसी ढँग से चल रहा था जैसे

पति चलते हैं। वह भी चारु को घण्टों बातें करने के लिये उतना समय नहीं दे पाता, जितना पहले देता था।

हरीश के लिये चारु कोई अब नव-परिचिता नहीं थी। मैत्री का भाव भूलकर अब वह उसको पत्नी के रूप में देखता था। पहले वह हर बात चारु से पूछता था; लेकिन अब आदेश देने की उसकी आदत पड़ती जा रही थी। इससे कभी-कभी चारु चिढ़ जाती। उसे दिन पर दिन हरीश का स्वभाव बदलता प्रतीत हो रहा था। वह चिन्तित रहने लगी और ऐसा सोचने लगी कि ब्याह के पहले हरीश मेरा आदर करता था, मेरा मुँह ही मुँह देखा करता था; किन्तु अब वह मुझ पर अपना अधिकार समझने लगा है। तन के सम्पर्क ने मन की प्रेम की भावना को दूर भगा दिया है; अब केवल स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध रह गया है; जिसमें वह राजा बनकर रहना चाहता है और मुझे दासी के समान समझ लिया है। पता नहीं ऐसा क्यों है कि पुरुष हमेशा यह सोचता रहता है कि नारी उससे हेय है। समानता का भाव जब ऊँचा-नीचा होने लगता है तो मन में फर्क पड़ जाता है।

चारु इस तरह दुनियाँभर की बातें सोचा करती थी, जबकि हरीश इन बातों को सोचना क्या उसके मन में कभी भेद का भाव तक नहीं उत्पन्न होता था। कारण यह है, स्त्री की अपेक्षा पुरुष में अधिक क्षमता होती है। पुरुषत्व की हमेशा नारीत्व ने पूजा की है और देवता माना है। तभी चारु दूसरी धार में बह गई—वह थी तो आखिर सरिता ही और सरिता संगम करने सागर के पास आती है, समुद्र कभी उसके पास नहीं जाता। कहाँ बूँद और कहाँ समुद्र ? हरीश जलधि की भाँति शान्त था, गम्भीर था और था क्षमता-युक्त। उसमें भी लहरें उठ सकती थीं, तूफान मचल सकता था और ज्वार-भाटे की सृष्टि हो सकती थी; लेकिन वह मन में कुप्रवृत्ति, ईर्ष्या, स्पर्द्धा और द्वेष को नहीं पालता था। छोटी-छोटी बातों को महत्व देना तो दूर रहा, वह उन पर विचार

भी नहीं करता, सुनकर भूल जाता था और देखकर आंखें बन्द कर लेता।

किन्तु नदी तीव्र गति से बहती है और जब उसमें बाढ़ आजाती, तब वह कूल और कगारों की मर्यादा को भी भंग कर देती है। चारु के मन में आये दिन विकार इकट्ठा होता रहता था और अब कदम-कदम पर वह यह अनुभव करने लगी थी कि हरीश उसको अपने अधिकारों की एक मात्र पुतली समझता है, जिससे केवल वह उसकी पत्नी रह गई है, प्रेम-पात्री नहीं चारु सोचती रहती कि मैं इसी कारण शादी नहीं करती थी; पुरुष नारी को पत्नी नहीं बल्कि दासी से भी हेय दृष्टि से देखता है—मेरे ही जीवन का ज्वलन्त उदाहरण है—क्या नारी की उत्पत्ती विधाता ने इसी लिये की।

चारु आजकल उस समय तक कुछ न कुछ सोचती ही रहती जब तक कि सर-दर्द की पीड़ा से घबड़ाकर सोचना उसे स्वयं ही बन्द न करना पड़ता।

## चालीस

मन में जब कोई ग्रन्थि पड़ जाती है तो सहज ही सुलझ नहीं पाती। उलझन एक ऐसी समस्या है उसे जितना सुलझाने की कोशिश करो उतना ही उलझती है। फिर चारुशीला तो भ्रान्ति मे पड़ी थी। मनुष्य का स्वभाव है कि यदि वह किसी की बुराइयों पर नजर डालता है तो उसे उसमें बुराइयाँ ही बुराइयाँ दिखलाई पड़ने लगती हैं फिर अच्छाई का पहलू उसके सामने आता ही नहीं। धीरे-धीरे चारु का मन डाक्टर हरीश की ओर से हटता गया।

एक दिन चारु एक मरीज देखने हटिया गई। उधर से ही अपनी भाभी रेवा के पास चली गई। नर्स को यह कहकर वापस कर दिया कि डिस्पेंसरी बन्द करके चाभी डाक्टर साहब को दे देना। मैं थोड़ी देर में आऊँगी। वे मेरा इन्तजार न करें। मैं सीधी घर पहुँच जाऊँगी।

उस दिन रेवा की तबियत खराब थी। उसके पेट का दर्द बढ़ गया था, साथ ही हल्का ज्वर भी था। उसने आग्रह किया। चारु को वहीं रुकना पड़ गया। सबेरे भी वह जब घर नहीं पहुँची तो हरीश को बुरा

मालूम हुआ। रात को उसने इस ओर कोई ध्यान नहीं दिया था। बुद्धिमान आदमी को गुस्सा बहुत कम आता है। यदि ऐसा न हो तो वह संयम और गाम्भीर्य का पालन न कर सके। हरीश को उस समय बुरा नहीं लगा, 'बल्कि प्रसन्नता हुई कि अच्छा है जब चारु हटिया गई ही है तो फिर भाभी से न मिले यह अच्छा नहीं लगता, इसके अलावा मरीजों के आने का समय भी निकल चुका है यही सोच वह डिस्पेंसरी बन्द कर अकेला ही घर चला आया। रात को देर तक उसकी प्रतीक्षा करता रहा। फिर जब समय काफी हो गया तो यह सोच कर सन्तोष कर लिया कि यह हुआ होगा कि राधामोहन बाबू और भाभी ने उसको रोक लिया होगा कोई हर्ज नहीं सबेरे आ जायेगी। लेकिन जब वह सबेरे भी नहीं आई और डिस्पेंसरी पहुँचने पर हरीश ने देखा कि वह अपने दवाखाने में बैठी है तो वह उसके पास गया और पूछने लगा—"अरे तुम वहीं रह गई ,सबेरे भी नहीं आई किसी से कहला दिया होता तो मैं राह क्यों देखता !"

नर्स किसी बीमार के घर एनीमा लगाने गई थी। डिस्पेंसरी में अभी कोई मरीज नहीं था। चारु मूविंग चेयर पर बैठी किसी दवा का फार्मूला पढ़ रही थी। पति को सामने देखते ही उसने फार्मोकोपिया बन्द कर दी और धीरे-धीरे कहने लगी—"कल भाभी की तबियत खराब थी, इसीलिये रुक गई और खबर किसके हाथ भेजती भइया से कहना उचित नहीं था, रास्ता देखने की क्या जरूरत थी, बेकार हैरान हुए।"

हरीश को चारु का यह रुखापन बहुत खला। उसे आश्चर्य होने लगा कि चारु को आजकल क्या हो गया है ? हँसकर बोलना तो वह जैसे भूल ही गई है। हमेशा उखड़ी-उखड़ी बातें करती है। वह क्रोध पर काबू पाना चाहता था; किन्तु फिर भी आवेश में उसके मुँह से निकल

ही पड़ा—"ठीक कहती हो मैंने बेवकूफी की, मुझे तुम्हारा इन्तजार नहीं करना चाहिए था।" यह कहकर वह अपनी डिस्पेंसरी में चला गया।

चारु उस दिन पूरे समय अपने दवाखाने में ही बैठी रही, हरीश के पास नहीं गई। फिर जब घर जाने का समय हुआ तो कार में हरीश के निकट न बैठ पीछे की सीट पर जा बैठी।

हरीश को यह परिवर्तन बहुत विचित्र लगा। वह चिढ़कर बोला—"पीछे क्यों बैठी हो चारु, हमेशा तो तुम आगे बैठती थीं मेरे पास आज क्या हो गया ?"

"कुछ नहीं, कोई बात नहीं पीछे ही बैठ गई तुम इसकी चिन्ता क्यों करते हो ?" उपेक्षापूर्वक चारु ने यह उत्तर दिया जो हरीश को बहुत ही अप्रिय लगा। उसके हाथ स्टीरिंग ह्वील पर घूम रहे थे, दृष्टि सामने पथ पर थी और आक्रोश भरी वाणी में वह चारु से कह रहा था—"क्या मामला है चारु ! तुमने बातचीत का तरीका बहुत अच्छा अपनाया है। बिना कहे पीहर चली गईं, सबेरे शक्ल देखने को मिली है ऐसा पहले तो कभी नहीं होता था। तुम इतना बदल कैसे गई ?"

चारु अपने खिलाफ एक भी शब्द नहीं सुनना चाहती थी। वह गरम होकर बोली—"और जब तुम अकेले अपने दोस्तों के साथ सिनेमा चले जाते हो तो मुझसे पूछते हो ? अभी परसों की बात है, इतवार था मैं घूमने जाने की तैयारी करती ही रह गई और तुम इंस्पेक्टर चड्ढा के साथ पिक्चर चले गये, क्या उस समय मुझे बुरा नहीं लगा था ? फिर मुझसे पूछते हो इतना बदल कैसे गई ? मैं नहीं बदली तुम में तब्दीली आगई है।"

"मुझमें !" हरीश चौंककर उसकी ओर देखने लगा और वह शब्दों पर जोर डालती हुई बोली—"हां, तुममें !"

"हूं।" कह कर हरीश खामोश हो गया। इसके बाद रास्ते भर बातें नहीं हुई। घर आने पर दोनों ने भोजन किया और जब बदलू

अपने कमरे में जाकर आराम करने लगा तो हरीश चारु के निकट आया और कहने लगा—"चारु, उस समय रास्ते में मैंने तुमसे कुछ कहना ठीक नहीं समझा, अब बताओ कि तुम्हारे व्यवहार में परिवर्तन क्यों आ गया है ? मुझसे तुम्हें कोई शिकायत है । मैं तुम्हें कहीं आने-जाने के लिये मना नहीं करता और न पूछता ही हूँ कि कहाँ जा रही हो स्वयं तुम ही आगे-आगे बतलाने लगती हो, कि मैं अमुक जगह जा रही हूँ अभी आती हूँ । फिर...... ।"

चारु तन कर बैठ गई और मन का गुबार निकालती हुई बोली—"मुझे कोई शिकायत नहीं है और मुझसे कुछ पूछने के पहले तुम्हें अपने को देखना चाहिये कि तुम मेरी ओर से जरूरत से ज्यादा लापरवाह हो गये हो । तुम्हें हुक्म देना आता है, दूसरे का मन रखना नहीं । मैं बचपन से स्वतन्त्र रही हूँ, मुझे आवश्यकता से अधिक बन्धन बिल्कुल नहीं रुचते ।"

"मैं तुम पर बन्धन लगाता हूँ, तुम्हारी आजादी छीनता हूँ, यह तुम क्या कह रही हो ?" यह कहते-कहते हरीश चारु के निकट ही कोच पर बैठ गया ।

और चारु कहने लगी—"मैं ठीक कहती हूँ पिछले दिनों को याद करो तब तुम मेरा सम्मान करते थे मैं तुमसे श्रद्धा करती थी वह श्रद्धा अब अपना रँग बदल रही है । मैं जितनी गहराई से सोचती और देखती हूँ तो तुमको अपने से बहुत दूर पाती हूँ । पहले ऐसा नहीं था ।"

अब हरीश के कान खड़े हो गये । वह चारु की ओर ताकने लगा और वह तनिक रुक कर फिर कहने लगी—"तुमने मुझे जीवन-संगिन नहीं एक दासी समझ रखा है । और खरीदी हुई बाँदी को जहाँपनाह के इशारे पर चलना ही चाहिए यही चाहते हो सो कभी नहीं होगा । आज कई महीने हो गये हैं, मैं तुमसे तंग आगई हूँ ।"

हरीश अब बिना बोले नहीं रह सका। वह अपने पर संयम पाकर चारु को समझाता हुआ बोला—"तुम भूलती हो चारु। बहुत बड़े भ्रम में पड़ी हो मैंने तुम्हारा कोई अधिकार नहीं छीना, हमेशा समानता का व्यवहार किया है। फिर यह भ्रान्ति क्यों ?"

चारु पर हरीश की बातों का किंचितमात्र भी प्रभाव नहीं पड़ा। वह अपनी ही बात कहती रही—"मन इतना बड़ा निर्णायक है कि बहुत जल्दी पहचान जाता है कि दुराव क्या है और लगाव क्या है ? मैं क्या बताऊँ, मुझे तो ऐसा लगता है कि तुम्हारे लिये मैं कोई गैर हूँ और एक उपेक्षित पात्री। यदि हम लोग ब्याह के चक्कर में न पड़ते, तो हमारा प्यार कभी नहीं मरता, वह जिन्दा रहता और दुनियाँ में अपनी मिसाल कायम कर देता। मन की स्थिति बड़ी विचित्र होती है। दो घरों के बीच जब दीवाल का घेरा खड़ा हो जाता है, तो वे एक होकर भी, अलग-अलग गिनी जाती हैं।"

उस दिन देर तक वे दोनों बातों में उलझे रहे। निष्कर्ष कुछ नहीं निकला। चारु का चित्त हैरान था और ऐसे ही हरीश भी बुरी तरह परेशान हो उठा।

शाम को चारु डिस्पेंसरी नहीं जा सकी। उसका जी मिचला रहा था और छोटी-मोटी हुबकियाँ आ जातीं, जिससे कभी-कभी घूँटों-लार वह वमन कर देती। बदलू उसकी देख-रेख में रहा। उसने कोई दवा नहीं ली। ऐसा लगता था कि उसे अपने शरीर का तनिक भी ख्याल नहीं रह गया है।

बीमार होते हुये भी चारु............गहरी विचार धारा में डुबकियाँ खाने लगी शादी के बाद प्यार-प्यार नहीं रहता—किसी लेखक ने एक स्थान पर ठीक लिखा है कि शादी के बाद का प्यार स्थायी रहता है और प्रेम के बाद शादी होने पर उस प्यार के कदम डगमगाने लगते हैं।

## इकतालीस

उस दिन की घटना से चारु और हरीश के बीच एक बहुत बड़ी दूरी आ गई थी। हरीश उस खाई को पाटने की कोशिश में था; लेकिन खाई बढ़ती ही जारही थी और चारु उससे दूर होती जारही थी। हरीश अब सोचा करता कि यह बिल्कुल सही है कि प्रेम सम्बन्ध जब विवाह के रूप में बदल जाता है तो वह ब्याह असफल ही रहता है। चारु को ख्वामखाह के लिये बहम होगया है कि मैं उसकी परवाह नहीं करता। काश! वह समझ पाती कि मेरे हृदय में उसके लिये कितना स्थान है। मैं उस पर निर्भर होना चाहता था इसमें मुझे सुख मिलता है और वह इसे लापरवाही समझती है तो फिर इसका इलाज क्या है? अजीब हैरानी है, अगर यही स्थिति रही तो भविष्य कैसा होगा? मेरा सुखमय दाम्पत्य जीवन नर्क बन जायेगा। दुनियाँ को कहने का मौका मिलेगा कि डाक्टर हरीश की पत्नी से नहीं पटती है। दोनों में अनबन रहती है क्या करूँ? किस तरह इस गुत्थी को सुलझाऊँ? कुछ भी समझ में नहीं आता?

इसके अतिरिक्त हरीश के मन में एक और

गुप्त आशंका थी जब चारु भाभी रेवा और राधा मोहन से कहेगी कि मैं उसके साथ अच्छा व्यवहार नहीं करता हूँ तो वे लोग क्या कहेंगे ? बात कुछ नही है और व्यर्थ के लिये मैं बदनाम हो जाऊँगा । स्त्री को यदि एक बार शक हो जाता है, तो वह हवा में गाँठें बाँध देती है और दिन दूनी रात चागुनी सन्देह-सागर की ओर बढ़ती चली जाती है । आदमी स्त्री को गहनों से लाद सकता है, कपड़ों से उसका मन बहला सकता है और अगर उसकी मनः स्थिति बिगड़ गई तो उस पर काबू पाना बड़ा मुश्किल हो जाता है । यह मैंने कभी स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि आगे चल कर यह नौबत आयेगी ।

इन्हीं सब बातों को सोच समझ कर हरीश हमेशा चारु से अब सधी हुई बात करता था और इस प्रयत्न में रहता था कि चारु के क्रोधी मुख पर हँसी आ जाय और वह फिर पहले की तरह मुस्कराने लगे ।

लेकिन चारु दूसरी दुनियाँ में बिचर रही थी । उसे लगता था कि उसने जिन्दगी में बहुत बड़ा धोखा खाया है । जैसा मेरा पहले निश्चय था कि मैं व्याह नहीं करूँगी, यदि उसी पर अटल रहती, तो मानसिक संघर्ष की सृष्टि नही होती, जीवन एकाँकी रहता और चित्त शान्त रहता ।

आज कल चारु बहुत हैरान रहती थी । गुड भरा हँसिया उसके सामने था न फेंक सकती थी और न निगल सकती थी । एक ओर तो उसकी मनः स्थिति इतनी खराब हो गई थी कि उसने यहाँ तक सोच डाला कि अब वह अपने मन को नहीं मारेगी; बल्कि डाक्टर हरीश को तलाक दे देगी । और दूसरी विचार धारा उसकी ऐसी थी कि भइया और भाभी को कितना सदमा पहुँचेगा जब वह सुनेंगे कि मैं अपने पति को तलाक देने जा रही हूँ । सभी लोग आश्चर्य करेंगे । लेकिन करूँ क्या मै भी मजबूर हूँ । डाक्टर हरीश की ओर से मेरा मन हटता ही जा रहा है । भविष्य की बात कोई नहीं जानता कि कल क्या होगा । प्रम

अन्धा होता है। वह परिणाम कभी नहीं सोचता। उस समय यदि मैं प्यार के प्रवाह में न बह गई होती तो आज पछताना न पड़ता। मेरी समझ में नहीं आता कि पुरुष की मनोवृति नारी के प्रति हीन ही क्यों बनी रहती। वह नारी को पैर की जूती समझ कर रखना अधिक पसन्द करता है और यह कभी नहीं चाहता कि वह उसकी समता में आये और उससे ऊँची उठे। डाक्टर हरीश से मैंने बड़ी आशा की थी कि वह जीवन में साथ देगा। उसको मैं एक साथ पति, मित्र और सहयोगी इन तीनों रूपों में जीवन-पर्यन्त देखती रहूँगी। किन्तु आशा पर तुषारपात हो गया। यह मेरा दुर्भाग्य है। प्यार का पौधा पनपते ही पाले से ढक गया। वह अन्तिम साँसें गिन रहा है। ऐसी हालत में अब केवल एक ही उपाय है तलाक देकर मैं डाक्टर हरीश से अपना पीछा छुड़ा लूँ। नहीं तो एक दिन वह आ जायेगा कि अधिक सोचते-सोचते और मन खराब रहने से मैं पागल हो जाऊँगी अथवा जीवन से तंग आकर आत्महत्या कर लूँगी। तब बदनामी खूब कस कर होगी। इससे बहतर है कि मैं हरीश से कह दूँ कि मैं अब अपने भाई के घर में ही रहूँगी और उसको तलाक दे दूँगी।

चारु ने अपना निश्चय बिल्कुल पक्का कर लिया था कि वह जल्दी ही हरीश से सम्बन्ध विच्छेद कर लेगी।

× × ×

रात को एक छोटी सी बात को लेकर चारु और हरीश में कुछ मामूली सा झगड़ा हो गया था वह शाँत नहीं हुआ। सबेरे उसका रूप बहुत ही भयानक हो गया। चारु ने तलाक की योजना पहले से बना रक्खी थी। मौका मिलते ही सबेरे जब वह सो कर उठी तो अपने कपड़े सम्हालने लगी। हरीश यह देख कर अचम्भे में आगया। वह पास जा हैरत भरे स्वर में पूछने लगा—"कहाँ की तैयारी कर रही हो। क्या............?"

चारु को अपनी बात कहने की बहुत जल्दी हो रही थी। अतः वह बीच ही में बोल पड़ी—"हटिया जा रही हूँ, भइया के घर। अब आज से मैं वहीं रहूँगी। तुम्हारे साथ मेरा निर्वाह नहीं होगा। मैंने.........।"

"तुम्हें क्या होगया है चारु? क्या बक रही हो?" हरीश बीच में चिल्ला पड़ा।

चारु आक्रोश में भरी हुई तो थी ही वह तेज गले से बोली—"मैंने सोच लिया है कि तुमसे सम्बन्ध-विच्छेद कर लूँगी। ऐसी स्थिति में यह आवश्यक है कि तलाक दे दूँ।"

"तलाक! क्या कहा तुम तलाक दोगी? चारु तुम! तुम!" कहकर हक्का-बक्का सा हरीश, चारु को ऐड़ी से लेकर चोटी तक देखने लगा उसका मस्तिष्क भनभना उठा था। सिर में चक्कर आ रहा था। लगता था कि वह अभी गिर पड़ेगा।

चारु की बात चलती रही। वह कह रही थी—"मैंने खूब अच्छी तरह सोच-विचार लिया है कि तुम्हारे साथ मैं सुखी नहीं रह सकूँगी। तुमने मुझे समझने में भूल की। मै अपनत्व की भावना लेकर आई थी और तुमने मुझे परिचारिका समझकर दुराव रक्खा। अभि-भावुक बनते ही तुम मुझे केवल हाड़-मांस की पत्नी समझने लगे। पहले तुम्हारी भावनाएँ मेरे प्रति कैसी थी, यह मैं भी समझती हूँ और तुम भी जानते हो। परन्तु अब मैं तुम्हारी पत्नी हूँ, इसलिये जायदाद की तरह तुम मुझ पर अपना अधिकार समझते हो। तुम मेरी ओर से पूर्णतया स्वतन्त्र हो। कल मैं तलाक का प्रार्थना पत्र सिटी मजिस्ट्रेट के इजलास में दे दूँगी। मैं एकाकी जीवन व्यतीत करना अधिक पसन्द करती हूँ। बन्धन मुझे बिल्कुल सह्य नहीं। तुम दूसरा ब्याह करके अपनी गृहस्थी चलाओ, मुझे मेरे हाल पर छोड़ दो।"

हरीश अब तक चुप था। वह सहसा बोल उठा—"मैंने तुम पर

बन्धन लगाये हैं, इसका क्या प्रमाण है तुम्हारे पास ? तुम्हारी यह हिम्मत कि मुझको तलाक दोगी ! तुमसे ऐसी आशा नहीं थी चारु ! मैं तुम्हें बहुत ऊँची दृष्टि से देखता था और एक बड़े गर्व का अनुभव करता था कि मेरी पत्नी एक कुशल लेडी डाक्टर ही नहीं; बल्कि योग्य गृहणी भी है, उसमें कुलीनता है। तुम एकाएक जड़ता को कैसे प्राप्त होगई, तुम्हें ऊँचा उठना चाहिये था चारु ! लेकिन तुम एकदम आसमान से गिर पड़ीं। आज तुम्हारे विचित्र रूप के दर्शन कर रहा हूँ मैं ! दुनियाँ को तमाशा दिखाना चाहती हो, लाज नही आती तुम्हें; मेरा अपमान करने पर तुली हो !"

"मैंने तुम्हारा कभी अपमान नही किया। मेरी सिद्धतों की लड़ाई है और मैं अपना निश्चय किसी भी हालत में नहीं बदल सकती। अब बातें घर में नहीं, अदालत में होंगीं; मै जाती हूँ।" कहकर उत्तेजित चारु हाथ में अटैची लटका कर वहाँ से चलने को उद्यत हुई, तो हरीश बीचों-बीच दरवाजे पर खड़ा हो गया और उसका रास्ता रोककर बोला— "चारु ! कहाँ जा रही हो, मेरी बात तो सुनो, इस समय तुम्हारा मन अच्छा नहीं है चलो बैठो; चित्त शांत होने पर मैं तुम्हारी सभी शिकायतें सुनूँगा। भला सोचो तो कि जो कदम तुम उठाने जारही हो, उसका क्या परिणाम होगा ?"

"वह मैने सोच लिया है, मुझे जाने दो, मैं तुम्हारे साथ नहीं रह सकती। इरादा बारबार नहीं बदला जाता।" यह कहकर वह आगे बढ़ी। हरीश अपनी जगह पर निश्चल खड़ा था। बदलू यह कहता हुआ उसके निकट आ रहा था—"नहा धो लिये बहुआ ! नाश्ता ले आऊँ ? लेकिन जब उसने चारु को जाते हुए देखा, तो आश्चर्य में आ, पूछने लगा—"कहाँ चलीं रानी ! सबेरे ही सबेरे कहाँ की तैयारी कर दी ?"

चारु कुछ नहीं बोली। तब हरीश एक निःसहाय की भाँति

बदलू की ओर देख, जल्दी-जल्दी कहने लगा—"चारु को रोको दादा ! ये राधामोहन के घर जा रही हैं और कहती हैं कि अब नहीं रहेंगीं।"

बदलू ठीक-ठीक कुछ भी नहीं समझा, लेकिन इतना जरूर जान गया कि किसी बात को लेकर दोनों में झगड़ा हुआ है। चारु इसीलिये नाराज होकर अपने भाई के घर जारही है। वह बीच में आ गया और चारु के हाथ से अटैची लेता हुआ बोला—"रानी बहू, इतनी गुस्सा ! खटपट सब जगह होती है, लेकिन कोई तुम्हारी तरह नादानी नहीं करता मेरी········।"

"नादानी नहीं दादा, मैं समझदारी का काम कर रही हूँ। मुझे पक्का विश्वास होगया है कि इस घर में अब मेरी गुजर नहीं होगी। मैंने डाक्टरी पढ़ी है, तो इसलिये नहीं कि घर में बैठकर चूल्हा फूकूँ, चक्की पीसूँ और घर में घूँघट डाले बैठी रहूँ। मैंने अपनी आजादी किसी के हाथ नहीं बेची। आपको ताज्जुब होगा दादा कि मैंने तलाक़ देने की सोची है।" चारु ने इस समय लाज और संकोच सब कुछ भुला दिया था।

"ऐसा न करो रानी बहू। अनरथ ( अनर्थ ) न करो। घर बरबाद हो जायेगा।" कहकर बदलू रोने लगा।

किन्तु चारु का पारा बहुत गर्म था। उस पर बदलू के आँसुओं का तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ा उसने जल्दी से बदलू के हाथ से अटैची ले ली और गमकती हुई कमरे से बाहर निकल गई।

बदलू उसके पीछे भागा और हरीश ने भी उसे पकड़ने की भरपूर कोशिश की, लेकिन न जाने चौखट पर आकर उसके पाँव क्यों रुक गये ?

# ब्यालीस

हाथ में अटैची लिये हुये जब चारु रेवा के सामने जा खड़ी हुई तो उसे कुछ अचम्भा सा लगा। वह उठकर खड़ी हो गई और उसके हाथ से अटैची लेती हुई बोली—"यह कैसे ले आई? बैग नहीं लाई? आज नर्स नहीं आई क्या ?"

चारुशीला ने कुछ भी जवाब नहीं दिया। वह स्नेहमयी भाभी के वक्ष में सिर बढ़ाकर रो पड़ी।

"क्या बात है चारु? तुम रो क्यों रही हो?" रेवा का स्वर व्याकुल हो उठा।

चारु लम्बी-लम्बी सिसकियाँ भर रही थी। रेवा हैरान थी। उसने उसका सिर ऊपर उठाया और अपनी साड़ी के एक छोर से आँसू पोंछती हुई सान्त्वना भरे स्वर में पूछने लगी—"चारु मेरी रानी, तुम बोलती क्यों नहीं ? कुछ बताती क्यों नहीं ? क्या·········?"

"क्या बात है ? अरे ! चारु कब आ गई ? तुम दोनों रो क्यों रही हो ?" राधामोहन यह कहते-कहते दोनों के पास आ गया।

रेवा की भी आँखें गीली थीं। उनमें आँसू झाँक रहे थे। पति को सामने देखते ही उसकी हिल्की भर आई और गीले स्वर में मुँह से निकल गया—"पता नहीं क्या बात है? चारु अभी-अभी आई और आते ही रोने लगी। पूछती हूँ, कुछ बताती ही नहीं। बस रोए जा रही है।"

राधामोहन बहन के सिर पर स्नेह भरा हुआ हाथ, फेरता हुआ बोला—"चारु क्यों रोती है पगली? क्या बात है? किसी ने कुछ कहा है क्या?"

अब चारु भाई के कन्धे पर सिर रख फूट-फूटकर रोने लगी। दम्पति उसे आँगन से कमरे में लिवा गए। और थोड़ी देर बाद जब खूब जी भरकर रो लेने से उसका चित्त कुछ शान्त हुआ तो उससे अपबीती और अपना निश्चय भाई भाभी को बतलाया।

रेवा चौंक उठी और राधामोहन के पैरों के नीचे से जमीन निकल गई। कई क्षण तक तो वह सकते की हालत में रहा। फिर संयत हो चारु को समझाता हुआ बोला—"अपना इरादा बदल दो चारु। गुस्से से तुम पागल हो रही हो। उतावली में आ आवेशपूर्ण किए हुए कामों पर आदमी को हमेशा पछताना पड़ता है। मैं हरीश को समझा दूँगा। चलो मेरे साथ अपने घर वापस लौट चलो। ससराल से लड़की विदा होकर नैहर आती है इसमें उसका गौरव बढ़ता है और रूठकर आना मर्य्यादा और समाज के लिए एक अपमानजनक और लज्जास्पद बात है। मेरी बात मानो घर लौट चलो चारु।"

"नही भइया नहीं।" कह कर चारु ने दाँत पीसे और फिर जोर से चिल्लाकर बोली—"मैं जान दे दूँगी भइया, लेकिन अब उस घर में नहीं जाऊँगी। अगर आप मुझे अपने घर मैं ठौर नहीं देना चाहते हो तो मेरा गला घोंट दो। सारे झंझट समाप्त हो जायेंगे।

रेवा ने चारु के मुँह पर हाथ रख दिया और आश्वासन भरी वाणी में बोली—"चारु तुम तो आपे से बाहर हो रही हो। तुम्हारे

भैया ठीक कहते हैं। चलो मैं भी साथ चलती हूँ। हरीश तो सीधा आदमी है वह······।"

"वे (हरीश) तुम्हारे लिए देवता होंगे भाभी! मैं तो जानती हूँ कि जल्लाद से भी गए-बीते हैं; क्योंकि जल्लाद एक बार में ही सिर को धड़ से अलग कर देता है; लेकिन वे घुमा-घुमाकर मारते हैं।" चारु रेवा की बात काटकर एक साँस में कह गई। फिर तत्क्षण ही सम्भलकर बैठती हुई बोली—"समझ गई भाभी कि तुम मुझको अपने घर में रखने से हिचक रही हो। कोई बात नहीं। मैं चली जाती हूँ कोई किराए का घर तलाश कर लूँगी। मगर हरीश के घर नहीं जाऊँगी।" यह कहने के साथ वह उठ खड़ी हुई और अटैची उठा लाने के लिए आगे कदम बढ़ाया।

वैसे ही रेवा जल्दी से उठ खड़ी हुई और लपककर चारु का हाथ पकड़ लिया और राधामोहन बहिन के सामने आकर कहने लगा—"चारु जाती कहाँ हो? यह कौन कहता है कि यह तुम्हारा घर नहीं है, हम लोग तुम्हारे अपने नहीं हैं? मैं तुम्हें नहीं जाने दूँगा।"

इस प्रकार शान्त करके राधामोहन ने चारु को बैठाया और फिर उससे सान्त्वनापूर्ण बातें करने लगा। रेवा भी पति का समर्थन करती रही; किन्तु चारु अपनी जिद पर अड़ी थी।

× × ×

उस दिन राधामोहन बैंक नहीं गया। वह चारु को रेवा के पास छोड़कर सीधा डाक्टर हरीश के पास पहुँचा हरीश ने उसको वहाँ जो कुछ बतलाया उससे स्पष्ट था कि हरीश सर्वथा निर्दोष है, चारु के सिर पर वहम का भूत सवार है इसीलिए वह बच्चों जैसा खिलवाड़ कर रही है। यही नहीं बदलू राधामोहन के सामने बलर-बलर रो रहा था और कह रहा था—"राधामोहन भइया, हमारी रानी बहू को पता नहीं क्या हो गया है। इधर दो-तीन महीने से न किसी से अच्छे बोलती हैं

और न कभी उनके चेहरे पर हँसी ही दिखाई देती है। आज अचानक सबेरे यहाँ से चली गईं। बबुआ ने समझाया; मैंने बहुत खुशामद की और उनके पीछे भागा; लेकिन वे नहीं मानीं चलीं गईं। यह सब क्या हो रहा है तुम भी चुप खड़े हो, समझाते नहीं जाकर उनको। दोनों घरों की बदनामी का सवाल है; आज बबुआ ने अब तक मुँह नहीं धोया है, सबेरे का नाश्ता ज्यों-का-त्यों रखा है, अब देर न करो, जो कुछ करते हो जल्दी करो बात फैलते देर नहीं लगती है। अभी सब जगह चख-चख मच जाएगी कि चारुशीला डाक्टरनी अपने पति को तलाक देने जा रही है। सबके सिर झुक जाएँगे भइया ! कितना अच्छा होता, अगर यह सब देखने के पहिले ही मैं दुनियाँ से उठ जाता। जिसको मैंने गोद में खिलाया और जो मुझे नौकर नहीं बाप का दरजा देता है उसकी तौहीन, उसकी बदनामी मैं नहीं सुन पाऊँगा, नहीं सह पाऊँगा राधामोहन भइया ! अब जैसे भी बने इस बिगड़ी को बनाओ, कहीं जगहँसाई हो गई तो फिर हम लोग किसी भी दीन के नहीं रहेंगे।"

राधामोहन कुछ नहीं बोला। वह देर तक खड़ा-खड़ा बदलू की ओर देखता रहा। तब हरीश ने हाथ पकड़कर उसे कुर्सी पर बिठलाया और कहने लगा—"मैं जानता हूँ कि आप इस समय बड़े ही धर्म-संकट में हैं ठीक मेरी ही तरह, लेकिन परिस्थिति को तो सुधारना ही होगा। चारु ने यह नहीं सोचा कि हम लोगों की ख्याति में कितना बट्टा लगेगा। समाज में तो टीका-टिप्पणी होगी ही इसका सबसे बुरा प्रभाव प्रैक्टिस पर भी पड़ेगा। जो लोग हम लोगों को श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं वे लोग पीठ पीछे मुँह जरूर बिचकाएँगे। जाइये, चारु को समझाइए मेरी बातें तो उसे जहर सी लगती हैं।"

राधामोहन का स्वर आर्त्त था। उसके नेत्र गीले हो गए। वह थकी हुई वाणी में कहने लगा—"हरीश ! बाढ़ बहुत जोर से आती है और बहुत जल्दी आती है; लेकिन शान्त धीरे-धीरे ही होती है। चारु के

पीछे पड़ना अभी ठीक नहीं। दो-एक दिन में जब उसका चित्त स्थिर होगा तभी उसमें क्षमता आएगी और तब वह दूसरे की बात सुनेगी। मैंने बहुत समझाया, तुम्हारी भाभी ने भी सब तरह उसको रास्ते पर लाने की कोशिश की लेकिन वह नहीं मानी। ऐसी स्थिति में धीरज से ही काम लेना होगा।"

इस प्रकार दोपहर हो गई। बदलू, राधामोहन और हरीश तीनों चारु की समस्या पर विचार करते रहे। किन्तु तय कुछ भी नहीं हो पाया। निष्कर्ष क्या होगा इससे सभी अनभिज्ञ थे।

जब राधामोहन आर्यनगर से अपने घर वापस लौटा तो उसके साथ बदलू भी आया। उसने चारु की बहुत चिरौरी की। उस बूढ़े ने उसके पैर पकड़ लिए और रो-रोकर कहने लगा—"रानी बहू ! घर की लाज अब तुम्हारे ही हाथ में है, मेरा कलेजा टूक-टूक हुआ जा रहा है; तुम यह अनहोनी न करो। मैं·········।"

लेकिन चारु उसकी बातें सुनते ही उबल पड़ी। उसने बात काट दी और गर्म होकर बोली—"तुम जाओ बदलू दादा ! तुम क्या जानो, कि मुझ पर क्या बीती है ? बीच में पड़ने वाला आदमी असलियत को तो नहीं समझता, वह सिर्फ झगड़ा शान्त करवाने की कोशिश करता है। यह जिन्दगी भर का सवाल है। मैं ऐसे आदमी के साथ नहीं रह सकती, जो अपनी जिम्मेदारियाँ भी, मुझ पर डालकर बोझ से लाद दे और खुद आजाद परिन्दा बनकर घूमे। जहाँ ऊँच-नीच और अधिकारों की बात सामने हो, उस घर को दूर से नमस्कार है।"

चारु ने बदलू की एक भी बात नहीं लगने दी। जब तक वह घर में रहा, तब तक बोलती ही रही और उसके चले जाने के बाद भी देर तक बड़बड़ाती रही।

# तेतालीस

उस दिन जब राधामोहन बैंक नहीं पहुँचा तो, देवकुमार को चिन्ता हुई कि आखिर क्या बात है, आज राधामोहन दफ्तर क्यों नहीं आए ?

इसीलिए घर आ भोजन कर वह सीधा उसके घर पहुँच गया।

चारु रेवा के पास बैठी थी। वह गुमसुम थी और रेवा उससे कुछ-न-कुछ कह रही थी। राधामोहन सामने के कमरे में चारपाई पर लेटा था। फागुन का गुलाबी जाड़ा आज अपने में शीतलता का समावेश लिए था। ऐसा प्रतीत होता था कि माह महीने की सर्दी है। लगभग आठ बजे होंगे। देवकुमार को आया देख रेवा ने पति को वहीं से आवाज दी—'देखो देवकुमार भइया आए हैं।"

सामने के कमरे से राधामोहन का स्वर सुनाई पड़ा—'आओ देव ?"

देवकुमार मित्र के पास जाकर बैठ गया और पूछने लगा—"आज बैंक क्यों नहीं आए ?"

"ऐसे घरेलू काम आ गया था कुछ। उसी में

देर हो गई, तभी नहीं गया और कहो क्या हाल है।" राधामोहन ने सहज स्वर में जवाब दिया।

लेकिन देवकुमार समझ गया कि मालूम होता है राधामोहन बाबू आज कुछ परेशान से हैं। उसने इस सम्बन्ध में कुछ पूछा नहीं।

राधामोहन, देवकुमार को मित्र तो मानता ही था, साथ ही वह छोटे भाई की तरह उससे अत्यधिक स्नेह भी करता। वह उसको अपने घर का एक अंग समझता था। उसने गोल जवाब पहले इसलिए दिया कि यकायक वह उससे कैसे कह दे कि वास्तविकता क्या थी। किन्तु मन नहीं माना। देवकुमार पर उसे विश्वास था कि वह उसकी बदनामी को अपनी बदनामी और उसकी भलाई को निज की भलाई समझता है। धीरे-धीरे उसने देव को चारु की वर्तमान परिस्थिति का बोध कराया।

सुनते ही देवकुमार चौंक उठा। वह बोला—"चारु को इसके लिए समझाना चाहिए। ताज्जुब है इतनी पढ़ी-लिखी होकर भी वह टोकने वाला काम करने जा रही है।"

"खूब समझा चुका हूँ मैं, लेकिन उसने अपना निश्चय नहीं बदला। तुम्हारी भाभी तो अब तक उसी पचड़े को लिए बैठी है। तुम अपने हो, इसलिए मन की बात कह दी, वरना मेरी तो हिम्मत नहीं पड़ती है कि घर से बाहर निकलूँ।" यह कहकर राधामोहन ने दीर्घ उच्छ्वास ली।

देवकुमार किसी विचार में डूब गया। थोड़ी देर तक सन्नाटा रहा। सहसा उसको भंग करता हुआ राधामोहन कहने लगा—'क्या करूँ? अब तुम्हीं बताओ। कल चारु तलाक की ऐप्लीकेशन (अर्जी) देगी। क्या यह काम किसी तरह रुक नहीं सकता?"

देवकुमार यह सुनकर गहरे सोच में पड़ गया। फिर एक लम्बी साँस लेकर कहने लगा—"मैं बात करता हूँ चारु से।" यह कहने के साथ वह उठ खड़ा हुआ और आँगन की ओर चल दिया।

राधामोहन ने उसे मना नहीं किया।

चारु के पास जा, देवकुमार उसे समझाता हुआ बोला—"चारु, तुम्हें अपने भइया और भाभी का मन नहीं दुखाना चाहिए। तलाक देने वाली बात को भूल जाओ बहन ! अपने कभी पराए नहीं बनाए जाते। मेरी बात मानो। जिद्द छोड़ दो चारु !"

इस पर चारु ने देवकुमार को वही उत्तर दिया जो सबको देती चली आई थी। देवकुमार उसको जितना समझाता उतना ही वह आवेश में आती जाती थी। एक बात का जवाब वह चार बातों में देती। आखिर देवकुमार हार मान चुप हो रहा। तब आँखों में आँसू भरकर रेवा बोल उठी—"देव भइया ! मेरे लिए तो दोनों उँगलियाँ बराबर हैं, क्या हरीश और क्या चारु ! मैं किसी को दोषी नहीं ठहराती, लेकिन इतना जरूर चाहती हूँ कि दम्पति में विच्छेद न हो। मैं भी समझा-समझा कर थक गई, मगर चारु को अपनी धुन सवार है। बात समाप्त कर रेवा आँचल से आँसू पोंछने लगी।

अब दस बज गए थे। आँगन में ठण्ड बढ़ती जा रही थी। निराश मन देवकुमार चला गया। रेवा और चारु फिर भी वहाँ बैठी रहीं।

अभी देवकुमार को गए मुश्किल से एक घण्टा भी नहीं हो पाया था कि सहसा बाहर की कुण्डी खटकी और रेवा ने जाकर किवाड़ खोले, तो देखा सामने शरबती खड़ी थी।

शरबती अन्दर आ गई। राधामोहन ने भी यही जाना और इससे उसे कुछ तसल्ली हुई कि शरबती और चारु दोनों हम उमर हैं। दोनों एक दूसरी का बहुत आदर करती हैं। शायद शरबती का समझाना वह मान जाए। यह कितना अच्छा होगा।

और दूसरी ओर रेवा शरबती से यह पूछना चाहती थी कि वह अचानक इतनी रात को कैसे आगई, किन्तु उसकी प्रज्ञा जागृत थी।

उसने अनुमान लगा लिया कि देवकुमार ने जाकर अभी उसे बताया होगा तभी भागी चली आई। कितना अपनत्व रखती है वह मेरे परिवार से ! वह चारु को खूब समझायेगी और बहुत सम्भव है कि चारु पर उसकी बातों का प्रभाव पड़े।

शरबती दो मिनट रेवा के पास रुकी। फिर सीधी चारुशीला के पास जा पहुँची। चारु रेवा के कमरे में चारपाई पर औंधे मुँह पड़ी थी। इस समय उसे अतीत की स्मृतियाँ घेर रही थीं और वह दिन याद आ रहा था जब गंगा तट पर ब्याह के पूर्व हरीश ने उससे कहा था कि 'चारु आज का दिन सोने का था और रात चाँदी की है।' वह सोचने लगी कि तब और अब में कितना अन्तर है ! तब हरीश के लिये मैं स्वर्ग थी और अब केवल धरती रह गई हूँ। क्या करती ? मैंने आपस में आरही दूरी को पाटने की बहुत कोशिश की; लेकिन दूरी खाँई बन गई। मैं पाटने के प्रयत्न में निरन्तर व्यस्त रही और खाँई बढ़ती गई। जब मन न मिलता हो, तो नीरस जीवन एकान्त पसन्द करता है, वही गति मेरी है। हरीश के सम्पर्क में रह कर मेरा जीवन सुखी नहीं रह सकता। क्यों कि एक बार जब गाँठ पड़ जाती है, तो फिर वह मिटती नहीं। रस्सी जब बीच से टूट जाती है, तो उसे गाँठ लगा कर जोड़ दिया जाता है लेकिन फिर गाँठ तो पड़ ही जाती है, रस्सी सिरे से आखीर तक एक रूप में नहीं रह पाती।

सहसा अपने कन्धे पर चारु ने किसी के हाथ के स्पर्श का अनुभव किया। वह समझी कि भाभी रेवा हैं तभी वह चुपचाप पड़ी रही। किन्तु जब उसके कानों में शरबती का यह मधुर स्वर पड़ा—"चारु बीबी ! ऐसी क्यों पड़ी हो ? सो गई क्या ?" तो चारु उठ कर बैठ गई।

वह कहने लगी—"मैं जानती थी कि आप जरुर आयेंगी; क्योंकि देव भइया होकर गये हैं।"

रेवा सामने बेंत की कुर्सी पर बैठी थी। कमरे में श्वेत राड का प्रकाश फैल रहा था। शरबती चारु के निकट बैठ गई और तनिक हँस कर गम्भीर स्वर में कहने लगी—"और यह भी समझ गई होगी बीबी कि इतनी रात को मैं तुम्हारे पास क्यों आई हूँ।"

"समझती हूँ।" चारु ने रूखे मन से उत्तर दिया।

"तो फिर चारु।" कहती हुई शरबती ने उसके मुख पर अपनी दृष्टि गड़ा दी और बोल उठी—"तुम्हें यह बचपना कहाँ से सवार हो गया? तलाक वाली बात को भूल जाओ। हम लोगों से तुम्हारा और डाक्टर हरीश का दर्जा कहीं ऊँचा है। जनता की सेवा करने वाले अगर अपने ही घर में लड़ने से फ़ुरसत न पायें तो फिर वे कर्त्तव्य से बहुत पीछे हट जाते हैं। वहाँ से तबियत ऊब गई है तो महीने-पन्द्रह दिन यहाँ रहो, चित्त शाँत हो जायेगा। बोलो, मुझे वचन दो चारु कि······।"

"नहीं भाभी नहीं! मुझे मजबूर न करो, मैं बहुत परेशान हूँ।" कसकर चारु ने दोनों हाथों से अपना मुँह ढँक लिया।

शरबती समवेदना से भर आई। वह चारु के अनुकूल बोल उठी—"मैं जानती हूँ कि तुम इस समय स्वयं हैरान हो और तुम्हें भारी सदमा पहुँचा है; लेकिन चारु ऐसा अवसर हो जाता है कि आदमी दूसरे के प्रति बहम से भर जाता है और तभी क्रोध में आ वह उसका घर जला देता है। और फिर जब घर जल जाता है, तब उसे पता चलता है कि यह उसका अपना ही घर था जो जल गया है। इसलिये जल्दी न करो बीबी! समझ से काम लो। क्या पता अभी तुम जिसे सही समझ रही हो, भविष्य तुम्हारे उसी कदम को गलत सिद्ध कर दे।"

रेवा मौन थी। चारु चुपचाप शरबती की बातें सुन रेही थी और शरबती कहती जारही थी—"तुम बोलतीं क्यों नहीं चारु! क्या मैं निराश होकर लौट जाऊँ?"

"गल्ती के लिये क्षमा चाहती हूँ भाभी। कल मुझे तलाक देनी ही पड़ेगी।" कहकर चारु उठ खड़ी हुई और सम्मान भरे स्वर में उससे पुनः कहने लगी—"आप नाहक हैरान हुई भाभी! मैं प्राण दे दूँगी; लेकिन अपना निश्चय नहीं बदलूँगी। चलिये आपको भेज आऊँ, बारह बजने जा रहे हैं।"

"मैं चली जाऊँगी, तुम उसकी चिन्ता न करो। पहले मेरी बात का जवाब दो। तुम·········?"

चारु ने शरबती की बात काट दी। वह बोली—"भाभी, मैं जवाब पहले ही दे चुकी हूँ; क्योंकि यह बिल्कुल सही है कि आप जो प्रश्न करने जा रही हो वह कोई नया नहीं; पुराना है।,'

"लेकिन············।"

चारु ने शरबती को आगे बोलने नहीं दिया। वह खीझ कर बोल उठी—"न लेकिन, न किन्तु और न परन्तु। मैं इन बातों को सुनना नहीं चाहती भाभी! मुझे माफ करो।"

अब रेवा को भी बीच में बोलना पड़ा। रात का एक बज गया। शरबती और रेवा किसी की भी बात नहीं मानी चारु ने। वह अपनी ही हठ पकड़े रही।

शरबती जब जाने लगी तो राधामोहन उसे घर तक पहुँचाने के लिये चल दिया। निकटवर्ती सड़क पर सिपाहियाँ सीटी बजा रहे थे। वे गश्त के लिये निकले थे और पँचकूँचे की उस तंग गली में सीटी का शब्द सुनकर कुत्ते भौंक रहे थे, जिससे शरबती और राधामोहन गुजर रहे थे। दोनों चले जा रहे थे। शरबती का मन भारी था। उसके पाँव जैसे उठ ही नहीं रहे थे।

× × ×

दूसरे दिन सब लोग यह सुनकर दंग रह गये कि चारु ने तलाक का प्रार्थना-पत्र सिटी मजिस्ट्रेट के इजलास में दे दिया है।

## चवालीस

अब चारु एकाकी जीवन व्यतीत करती हुई अपने भाई और भाभी के पास रह रही थी। तलाक के लिये दिया गया उसका प्रार्थना–पत्र सहज ही अदालत ने मंजूर कर लिया; क्योंकि डाक्टर हरीश ने विरोध में कुछ नहीं कहा।

हरीश को उस दिन से चारु से घृणा हो गई। वह उसे नीच समझने लगा। उसने यहाँ तक सोच लिया कि डिस्पेंसरी चारु के पड़ोस से हटाकर अब मैं आर्य-नगर में ही खोलूँगा। जिन्दगी में बहुत बड़ा कटु अनुभव हुआ है मुझे कि स्त्री मायाविनी होती है, उसके असली रूप को परखना टेढ़ी खीर है।

चारु के जाने के बाद बदलू भी बदल गया। वह उसको जितना अधिक स्नेह करता था, उतनी ही नफरत करने लगा। वह अपने मन में सोचा करता कि इन पढ़ी-लिखी लड़कियों का क्या भरोसा। जब चाहा ब्याह कर लिया और अगर उस आदमी की ओर से मन हट गया तो फौरन तलाक दे दी। बाहरी अंग्रेजियत! यह अच्छी देन है तेरी।

और ऐसे ही कभी-कभी बदलू जब हरीश को

उदास देखता तो कह देता कि 'बबुआ कब तक इस मातम को लिये बैठे रहोगे। अभी तुम्हारी उमर ही क्या है ? दूसरा ब्याह कर लो। घर में बहू आ जायेगी। मेरा भी मन लगने लगेगा और तुम भी पुरानी बातों को भूल जाओगे। इसके लिये मैने यह सोचा है कि अबकी बार ब्याह में अपने मन का करूँगा। तुम अभी लड़के हो, तुम्हें दुनियाँ का अनुभव नहीं है। मुझे चारु जैसी बहू नहीं चाहिये।'

बदलू की ये बातें सुनकर हरीश थोड़े में ही बात को टाल देता—"दादा ! अभी मन अच्छा नहीं है, जब से मैंने यहाँ मुहल्ले में दवाखाना खोला है, यह महसूस करने लगा हूँ जिम्मेदारियाँ बहुत बढ़ गई हैं। धीरे-धीरे मन रम जायेगा, अभी ऐसी बाते मैं सुनना भी नहीं चाहता।"

बदलू अहर्निश इस प्रयत्न में लगा रहता कि हरीश चारुशीला को भूल जाय। जब तक वह उसके मन पर छाई रहेगी उसका खून जलेगा हीं, वह चैन से नहीं बैठ पायेगा। इसके लिये उसने कुछ नये-नये साधन अपना लिये थे। घर में रेडियो था ही जब सीलोन के गीतों की रिकार्डिंग का समय होता तो वह अन्दाज लगाये रहता और वह समय हरीश के नाश्ते का होता था, तभी वह रेडियो खोल देता। बदलू जानता था कि हरीश प्यानो बहुत अच्छा बजा लेता है। घर में प्रचुर मात्रा में धन था। उसने हरीश को विवश किया और इस तरह एक प्यानो खरीद लिया गया। बुड्ढा देखता था और अनुभव करता कि दोपहर को भोजन करके आराम करते समय जब हरीश उकता कर बैठ जाता और परेशान हो इधर-उधर टहलने लगता तो फिर उसके पाँव अपने आप प्यानो की ओर बढ जाते। उसकी उँगलियाँ उस पर दौड़ें लगातीं और साज के संगीत का समाँ बंध जाता। उसका अनुमान था कि इस अवस्था में शायद हरीश को कुछ शाँति मिलती हो।

इसके अलावा एक और नया शौक धीरे-धीरे सिखा दिया था बदलू ने हरीश को, वह था शतरंज का खेल। जब हरीश के पिता

जीवित थे तो वे अक्सर जब कभी ज्यादा प्रसन्न होते तो बदलू के साथ शतरंज खेलने लगते। इस तरह बदलू धीरे-धीरे शतरंज का एक चतुर खिलाड़ी बन गया था। इस घर की परम्परा आरम्भ से यही रही कि मालिक और नौकर में कभी भेद नहीं समझा गया। सो बदलू ने शतरंज का अभ्यास कराना आरम्भ कर दिया और थोड़े दिनों में ही यह नौबत आगई कि हरीश रात को सोने के पूर्व कम से कम दो–तीन बाजी शतरंज बदलू के साथ जरूर खेलता था। जिससे उसे कुछ आत्म-संतोष ही मिलता था।

यह सब तो था, लेकिन हरीश का मन अभी स्थिर नहीं हो पाया था। बहुधा वह अपनी दन्त चिकित्सा की किताबों में ही खोया रहता। घर से डिस्पेंसरी और वहाँ से घर, इसके अलावा वह कहीं घूमने-फिरने नहीं निकलता। मरीजों के यहाँ जाने की बात और थी; क्योंकि वह उसका फर्ज था और हर समझदार आदमी कर्त्तव्य को पहले देखता है। यद्यपि उसके मन में चारु के प्रति घृणा थी, विक्षोभ था; लेकिन फिर भी प्रतिशोध, स्पर्द्धा की भावनाएँ उसमें नहीं आ पाई थीं। उसने अपने मन में यह संतोष कर लिया था कि लेडी डाक्टर चारुशीला जीवित है और मेरी पत्नी 'चारु' पता नहीं कब की मर चुकी।

किन्तु मानवीय स्वभाव अपनी परिधि में ही घूमता है। होता यह है कि मनुष्य जिसको भुलाने की कोशिश करता है, उसकी स्मृति तब और भी हरी होने लगती है। ऐसी स्थिति में आदमी जहाँ का तहाँ ही रह जाता है, आगे बढ़ना और पीछे हटना जैसे वह एकदम भूल जाता है। ऐसी ही परिस्थिति से होकर गुजर रहा था हरीश! जिस अतीत को वह अपना पूर्व जन्म समझकर बिसरा देना चाहता था, वह उसके साथ छाया की तरह पीछे-पीछे घूमता था। उसी उलझन में फँसा, वह न वर्तमान का बोध कर पाता और न भविष्य की ओर ही देख पाता।

उधर बदलू को सबसे बड़ी चिन्ता हरीश के ब्याह की थी। वह इसके लिये अपने घर आने-जाने वाले हरीश के मित्रों से कभी-कभी चर्चा चला देता और इस टोह में रहता कि कोई सुशील लड़की मिले, उसके साथ में हरीश का ब्याह कर दूँ। ब्याह हो जाने के बाद उसकी दुनियाँ बदल जायेगी। वह पिछली बातों को बिल्कुल भूल जायेगा और नई गृहस्थी बनाने में उसका मन रमने लगेगा।

इस तरह दिन व्यतीत हो रहे थे। हरीश का अस्त-व्यस्त जीवन बहुत कुछ अंशों में बदलू ने बदल दिया था। लेकिन इतना होने पर भी वह उसके मन को स्थिर नहीं कर सका। दिन चलते गये और हरीश उलझता गया अपने आप में ही, सोचने बैठ जाता तो इतना सोचता कि सर फटने लगता; उसे न अपनी सुध रहती और न अपने पिता तुल्य अपने नौकर बदलू की ही।

## पैंतालीस

रोहन को नौकरी मिल तो गई थी; लेकिन उसे सन्तोष नहीं था, क्योंकि एक सौ पचास रुपये मासिक वेतन था। रजिस्टर पर हस्ताक्षर इतनी ही रकम के सामने करने पड़ते; पर हाथ में आते थे केवल एक सौ बीस रुपये। सन्तोष का विषय यह था कि घर का रीति-रिवाज और रहन-सहन सब पुराने ढंग का था, इसलिए ईंच-घसीट कर गुजर हो जाती थी।

रोहन को प्रिंसिपल ने और दो-एक पुराने अध्यापकों ने यह आश्वासन दे रखा था कि कुछ ट्यूशन दिलवा देंगे, जिससे तीस रुपये की कमी पूरी हो जायेगी। यह बचत का रुपया कालेज के फण्ड में जमा होता है। विद्यालय के ऊपर कितना खर्च है, सहायता-प्राप्त स्कूलों को सरकार ज्यादा रुपया नहीं देती। लेकिन वे आश्वासन बिल्कुल कोरे थे। रोहन को एक भी ट्यूशन नहीं मिला। तब प्रयत्न करके उसने दूर के मुहल्ले में दो ट्यूशन कर लिये, जिनके छात्र तो दसवीं कक्षा के थे; किन्तु फी लड़का दस रुपये प्रतिमास देता था।

हीरा बहुत प्रसन्न थी। उसे अपने लाल पर

भरोसा था कि अभी तो नौकरी लगी ही है, आगे चल कर रोहन खूब तरक्की करेगा। तनख्वाह बढ़ेगी और ट्यूशन भी ऊँचे-ऊँचे दर्जों के मिलने लगेंगे। इसके अतिरिक्त रोहन को जब अवकाश मिलता तो कभी-कभी वह लेख और निबन्ध लिख लेता था। अखबारों से पैसे तो देर में आते और वह भी बहुत कम; लेकिन रोहन को सन्तोष रहता था। पहली ही तनख्वाह में से उसने पच्चीस रुपये का मनीआर्डर अपने बाबा गंगाधर को भेजा और तब से लेकर अब तक यह क्रम चलता आ रहा था।

विद्याधर और हीरा का जीवन शान्तिपूर्वक बीत रहा था। वे दोनों रोहन का ब्याह करने की सोच रहे थे। विभा वाला सम्बन्ध तो छूट गया था और अब सवाल यह सामने था कि कला पहले लड़की देख लेगी तब ब्याह होगा। उसकी बात को दम्पति बहुत महत्व देते थे। वे उसे किसी भी हालत में नाराज करना पसन्द नहीं करते थे। इसीलिए यह आयोजन था।

समय कभी किसी का साथ नहीं देता। उसके परिवर्तन मनुष्य को जमीन से उठाकर आसमान पर पहुंचा देते हैं; और ऐसे ही वहाँ से उठाकर धरती पर पटक देते हैं। वह हँसता भी है, और रुलाता भी। बड़े-बड़े धुरन्धरों ने इसका लोहा माना है। किसी सन्त कवि ने कहा है।

'कि जानी न जाय समय की गति !'

वैशाख का महीना था। हीरा कला के साथ कुछ दिन के लिये गाँव चली गई; क्योंकि खेत की फसल कट रही थी। गंगाधर सारे दिन खेत और खलिहान में बने रहते। इसके अलावा खरबूजों की फसल थी, महुये इन दिनों चू रहे थे, और छोटी-छोटी अमियाँ भी अब अपने आकार में बृद्धि पाने लगी थी। इस मौसम में देहातों में जौ और गेहूँ चने के सत्तू खूब खाये जाते हैं। कला ने भी दो मटके सत्तू पिसवाकर रख लिये। हीरा को स्वाद में वे अधिक रुचते और वह अक्सर सत्तू ही खाती थी। किन्तु नये अनाज की गर्मी बर्दाश्त नहीं हुई। उसका पेट खराब होगया।

आँतों में तकलीफ हो गई; और दस्त आने लगे। यह क्रम आठ-दस दिन तक लगातार चला। एक दिन वह आया कि जब उसे चलने-फिरने और उठने-बैठने में भी कष्ट होने लगा।

कला देहाती दवाइयाँ उपचार में देती रही। फल कुछ नहीं हुआ। हीरा के पेट की शिकायत बढ़ती ही गई।

रोहन का कालेज बन्द होने वाला था। विद्याधर भी उसके साथ कुछ दिन के लिये गाँव आना चाहते थे। तभी हीरा को शहर लाने की योजना थी। लेकिन एक दिन गाँव से खबर आई कि उसकी तबियत बहुत खराब है। पहले दस्त आते रहे उसके बाद पेचिश पुरानी पड़ने पर आँव आने लगी और अब पेट में इतना दर्द रहता है कि वह गाय-गोरू की तरह चिल्लाती है।

यह समाचार पाते ही दोनों बाप-बेटे चिन्तित हो उठे। दोनों दूसरे ही दिन गाँव जाने की सोचने लगे। रोहन को और कोई उपाय नहीं सूझा। वह उसी समय चारुशीला की डिस्पेंसरी जा पहुंचा।

चारु के प्रति रोहन की आस्था थी। उसने जाते ही अपनी माँ का हाल बतलाया और पूछा—"अब क्या होना चाहिये ? माँ के लिये कुछ दवा देंगी आप ?"

चारु रोहन की सरलता पर मुस्करा उठी। वह बोली—"देहात में दवा-इलाज की दिक्कत होगी। अभी फिलहाल के लिये मैं दवा दिये देती हूँ घबड़ाने की कोई बात नहीं है। यहाँ लिवा लाओ। दो दिन में मैं चंगा कर दूँगी।" यह कहकर वह पैड पर प्रिस्क्रिप्शन ( दवा का परचा ) लिखने लगी।

रोहन बैंच पर बैठा था। डिस्पेंसरी में इस समय अधिक भीड़ नहीं थी केवल चार-पाँच मरीज थे। नर्स दवाई बनाने में व्यस्त थी। रोहन को जल्दी थी। आज रात को ही उसको बाप के साथ गाँव जाना जरूरी था। अतः उसने जल्दी का आयोजन कर अत्यन्त विनम्र स्वर में

चारु से कहा—"जल्दी करवा दीजिये; क्योंकि अभी इसी समय में और पिताजी गाँव जा रहे हैं।"

चारु पुनः मुस्करा दी। वह बोली—"तुम्हारा ही काम कर रही है नर्स। अभी लाती है।"

इसके बाद रोहन यह अनुभव करता रहा कि चारु बार-बार उसकी ओर गौरपूर्वक देखने लगती है। उसने इसमें कुछ भी नयापन नहीं समझा, बल्कि श्रद्धा से भर आया कि वह कितनी सरल हृदया है। दूसरे के दुख को अपना दुख समझती है। मेरे परिवार पर उसकी विशेष कृपा है।

नर्स ने मिक्चर की शीशी और दवा की पुड़ियाँ लाकर रोहन को देदीं। उसने पैसे पूछे तो वह बोली—"आपने देखा नहीं प्रिस्क्रिप्शन फ्री है।" यह कहकर वह चली गई।

रोहन परचे को ध्यान से पढ़ने लगा। उस पर फ्री लिखा था। वह परचा चारु के सामने मेज पर रखता हुआ धीरे से बोला—"पैसे नहीं लिये नर्स ने। आपने इस पर फ्री क्यों लिख दिया। इतनी दया दृष्टि काफी है आखिर आपके यहाँ दवाइयाँ मुफ्त में तो आ नहीं जातीं। पैसे खर्च करने ही पड़ते हैं। ले लीजिये।" यह कहने के साथ रोहन ने एक पाँच रुपये का नोट उसके सामने बढ़ा दिया।

"नहीं रोहन! मैं पैसे नहीं लूँगी। यह माँजी (हीरा) की दवा है और क्या मुझे इतना भी हक नहीं है कि किसी बहाने उनकी सेवा कर सकूँ। नोट रख लो।" यह कहकर चारु चुप नहीं हो गई। वह प्रसंग बदलने और दुनियाँदारी करने के नाते तत्क्षण ही फिर कहने लगी—"कल दोपहर तक माँ को यहाँ लिवा लाओ। बस फिर उनकी जिम्मेवारी मुझ पर छोड़ दो। पैसे रख लो।"

"बड़ी मेहरबानी है आपकी।" यकायक रोहन के मुँह से निकल पड़ा और धीरे-धीरे नोट उसने कुरते की जेब में डाल लिया।

रोहन घर जाता हुआ रास्ते में सोच रहा था कि परोपकारी वृत्ति मनुष्य को राई से पर्वत बना देती है। चारु कितनी महान है। दुख का विषय है कि डाक्टर हरीश जैसा समझदार आदमी उसको परख न सका। जिससे बेचारी को दाम्पत्य-जीवन की तिलांजलि देनी पड़ी।

रोहन को क्या पता था, कि हरीश एवं चारु के सम्बन्ध में दोषी कौन हैं उसे तो इस समय चारु से ही मतलब था वह जो भी सोच रहा था सिर्फ चारु के ही पक्ष में। दुनियाँ का यही क्रम है। जो मनुष्य जिसके कार्य में आता है; वह उसी के पक्ष में सोचता है। दोषी वह दूसरे पक्ष को ही मानता है। इसमें रोहन का ही क्या दोष; यह तो संसार की परम्परा है इस संसार के प्रत्येक प्राणी की सोचने की शक्ति उसे उतना ही सोचने देती है। एक दिन वह भी था जब चारु से अधिक श्रद्धा उसे हरीश पर थी। और आज चारु पर।

## छालीस

हीरा को गाँव से शहर लाने में रोहन और विद्याधर को बहुत दिक्कत हुई। उसे ऐनीमा हो गया था। आँतों के जख्म फुड़िया से दिन-रात दुखा करते और हमेशा यह हाजत बनी रहती कि अब दस्त आने वाला है। लेकिन खूनी आँव थी, पेट में मरोड़ होती और उसके साथ ही खून का मुर्रा आ जाता। उसकी देह एकदम पीली पड़ गई थी। जठराग्नि मर गई थी और वह सूख कर एकदम काँटा होरही थी।

चारु ने बताया कि लगभग माँजी के ठीक होने में एक महीना लग जायेगा काफी एतिहात की जरूरत है इन्जेक्शन रोज लगेंगे इसके अलावा खाने और पीने की भी दवाईयाँ चलेंगी। खाने में गेहूँ का दलिया, केवल एक बार दिया जायेगा; फलों का रस जितना चाहो दे सकते हो, कम से कम दो मोसम्मी सुबह और शाम को जरूर पहुँचनी चाहिये; आराम की पूरी-पूरी जरूरत है।

इस अवसर पर विद्याधर के घर में शरबती भी मौजूद थी। वह हीरा को देखने आई थी और देवकुमार भी रोहन के बराबर खड़ा था उसने चारु

की बात का समर्थन किया। वह विद्याधर से बोला—"हाँ दादा! यह आंतों की बीमारी है जैसा चारु कहती हैं, पूरी-पूरी सावधानी रखनी होगी; जितना ज्यादा आराम मिलेगा—रोग उतनी ही जल्दी दूर भागेगा।" लेकिन विद्याधर के मन में एक गुप्त भय था, जो चोर की भाँति उसे डरा रहा था कि इतना लम्बा इलाज है पैसे कहाँ से आयेंगे? देवकुमार की बात सुन, हाँ! द्योतक सिर हिला, वे रोहन को एकांत में ले गये। फिर जब दोनों बाप-बेटे लौटे तो रोहन आते ही चारु से पूछने लगा—"इन्जेक्शन तो बहुत मँहगे पड़ेंगे, कम से कम कितना खर्च आ जायेगा, वैसी व्यवस्था करूँ और............।"

"रोहन, तुम भी बनियों जैसी बातें करते हो—जो मरने के पहले ही अपने कफ़न का प्रबन्ध कर जाते हैं। मै कोई गैर हूँ। जो दवाइयाँ और इंजेक्शन मेरे पास नही होंगे—वे लिख दूँगी, तुम ले आना। इसमें संकोच की क्या बात है? बड़ों की सेवा करने में मुझे सुख मिलता है; और फिर तुम तो अपने हो।"

नर्स इन्जेक्शन तैयार कर चुकी थी। चारु उसे लगाने के लिये आगे बढ़ी तो विद्याधर उसके करीब आ दीन-स्वर में कहने लगे—चारुदेवी! इतना भार न डालो मुझ पर, यही क्या कम है जो घर आने पर फीस नहीं लेती हो। दवाइयों के पैसे तुम्हें लेने ही पड़ेंगे, यह मुझे अच्छा नही लगता।"

रोहन बाप की बात समाप्त होते ही बोल उठा—"हाँ, चारुदेवी! पिताजी ठीक कहते हैं, जो हम लोग खर्च कर सकते हैं, उससे पीछे क्यों रहे? गरीबी हो चाहे अमीरी लेकिन इन्सान पर जब आ बनती है तो वह घर फूँक तमाशा देखता है।"

चारु बड़ी सयानी थी। शिष्टाचार और लोक व्यवहार में इतनी पटु थी कि किसी भी अवसर को यों ही नहीं जाने देती। उसके सम्मुख तत्क्षण ही योजना जन्म लेती और दूसरे क्षण वह कार्य में बदल जाती

थी। उसने वातावरण को अपने अनुकूल बना लिया और ऐसी बन गई मानो वह अपने काम में इतनी व्यस्त थी कि रोहन और विद्याधर की बातें उसने सुनी ही नहीं। वह दोनों बाप-बेटों को बोलने का मौका न देकर नर्स से कहने लगी—"बहुत जल्दी करती हो, एडाप्टर कसा नहीं, सिरिंज लीक कर रही है। अब देखती क्या हो, दूसरा इन्जेक्सन तैयार करो।"

इस तरह चारु जितनी देर वहाँ रुकी कार्य में ही व्यस्त रही और अपनी कहती रही, दूसरे को बोलने का मौका ही नहीं दिया।

× × ×

पहले दिन के उपचार में ही हीरा के दर्द में कुछ कमी हुई और वह चारु की सराहना करते नहीं थकी।

अब इन सब परिवारों में ऐसा गठबन्धन हो गया था; कि सभी एक दूसरे को अपना आत्मीय समझते थे। रेवा भी हीरा को देखने आई। हीरा की दृष्टि में इस समय चारु का बहुत महत्व था। उसने रेवा से उसकी बड़ी तारीफ की।

अधिकांश दवाइयाँ और इन्जेक्शन चारु अपनी डिस्पेंसरी से देती थी और रुपये-बारह आने की, दो-एक सस्ती दवाइयाँ कभी-कभी रोहन को लिख देती, जो वह बाजार से खरीद लाता था। इस तरह उसने अपनी जिद्द रखी और रोहन तथा विद्याधर की भी बात रख ली।

रोहन अब दिन में दो बार चारुशीला की डिस्पेंसरी आता था। चारु को यह बहुत अच्छा लगता, न जाने क्यों? जब कभी कोई बीमार नहीं बैठा होता और फुरसत होती तो वह उससे घण्टों बातें करती रहती। रोहन, चारु में कोई नया परिवर्तन नहीं अनुभव कर रहा था; मगर चारु अपनी स्थिति को समझ रही थी कि वह कहाँ जा रही है। रोहन के प्रति उसका आकर्षण उसे स्वयं लज्जित कर रहा था; मगर फिर भी वह गिरती जारही थी, फिसलती जा रही थी।

मिलन की सुखद घड़ियों के बाद जब बिछुड़ना होता है तो कोई आत्मघात कर लेता है, कोई विक्षिप्त हो जाता है और कोई वह मंजिल छोड़ दूसरी पर चलने लगता हैं। चारु की मंजिल था रोहन। वह उस तक पहुंचने के लिये व्यग्र हो उठी।

वह रोहन के प्रत्येक गुण पर मुग्ध थी। पढ़ा-लिखा योग्य शिक्षक, सरलता और सादगी का प्रतीक वह एक हृष्ट-पुष्ट गौर वर्ण का युवक था। उसके बाल घुँघराले थे। कपड़ा जो भी वह पहनता उसकी देह पर फबकर रह जाता। पुरुषत्व की स्पष्ट छाप थी उसके चेहरे पर। चारु उसकी ओर अग्रसर होती गई और वह अनभिज्ञ बना रहा।

एक दिन दोपहर को जब चारु घर जाने की तैयारी कर रही थी ठीक उसी समय रोहन आ पहुँचा। आज नर्स नहीं आई थी। शायद उसकी तबियत खराब थी अतः सब काम चारु को ही करना पड़ा। वह बुरी तरह थक गई थी। दरवाजे पर पड़ी चिक के बाहर गर्म हवा झकोरे भर रही थी और छत पर लगा सीलिंग फैन भी गरम-वायु उगल रहा था। रोहन को देखते ही चारु प्रसन्नता से खिल उठी और मन्द स्मिति बिखेरती हुई पूछने लगी—"कैसे आगये रोहन ? दवा तो लेगये थे, लू-लपट में नाहक हैरान हुये।"

"प्रिंसीपल साहब के बँगले से आरहा हूँ। प्यास से गला सूख रहा था तब तक देखा कि अभी आपका दवाखाना खुला है। सोचा वहीं चलकर झज्झर का ठंडा पानी पियूँ।"

रोहन की बात समाप्त होते ही चारु हँस कर बोल उठी—"अभी लो।" यह कहकर वह उठ खड़ी हुई और सुराही की ओर चल दी।

"आप बैठिये मैं स्वयं ले लूँगा। आज नर्स नहीं आई क्या ?" कह कर रोहन सुराही के पास पहुंच गया और गिलास उठा कर पानी उड़ेलने लगा।

चारु उसके व्यवहार को देख कर मुग्ध हो रही थी। जब उसने

गिलास मुँह की ओर बढ़ाया तभी सहसा चारु ने गिलास पकड़ लिया और हँस कर बोली—"दो मिनट रुक जाओ, अभी धूप से आ रहे हो, तनिक ठहर कर पीना ।"

फिर वह कुर्सी पर आ बैठ गई । गिलास मेज पर रख दिया और रोहन सामने मरीजों के बैठने वाली बेंच पर बैठा था । चारु उससे आग्रह करके बोली—"इधर आकर बैठो रोहन, वहाँ हवा कम लगती होगी ।"

यद्यपि रोहन चारु का आदर करता था और वह उसके निकट बराबर बैठने के पक्ष में नहीं था फिर भी उसने उसकी बात का मान रखा और उसके समीप दूसरी कुर्सी पर जा, बैठ गया ।

पानी का गिलास अब उसकी ओर बढ़ाती हुई चारु कहने लगी—"लो पियो ।"

सकुचाता हुआ रोहन पानी पी रहा था और चारु तृषित नेत्रों से उसकी ओर देख रही थी । उसकी आँखों की प्यास रोहन की प्यास से बहुत बड़ी थी; लेकिन रोहन की प्यास का सम्बन्ध शरीर से था और उसकी प्यास मन की थी । हरीश के साथ उसका जीवन तृप्त होकर भी अतृप्त ही रहा । अब वह सहारा चाहतीं थी ।

पानी पीकर रोहन ने गिलास मेज पर रख दिया और धोती से मुँह पोछने जा ही रहा था कि इतने में जल्दी से चारु ने अपना रूमाल उसकी ओर बढ़ा दिया और कहने लगी—"लो इससे पोंछो धोती क्यों खराब करोगे !"

रोहन संकोच से इतना गड़ गया कि उसकी दृष्टि सामने नहीं हुई उसका हाथ जहाँ का तहाँ ही रह गया और कनखियों से उसने देखा चारु के मुख पर उन्माद है और उसकी दृष्टि अस्थिर हो रही हैं । उसने यह भी देखा कि उसका हाथ काँप रहा है और रूमाल हिल रहा है । फिर भी उसने संयम से काम लिया । धोती से मुँह पोंछता हुआ

बोला—"ठीक है, रूमाल रख लीजिए। आज देर बहुत कर दी, डिस्पेंसरी कब बन्द करोगी ?"

चारु का रूमाल वाला हाथ पीछे लौट आया और वह रोहन की आँखों में झाँकती हुई बोली—"बन्द कर दूँगी; जल्दी क्या है ?" और कहो उसके बाद तुम्हारे ब्याह की बातचीत और कहीं नहीं चली ? अब माँजी को आराम पहुँचना चाहिये; जल्दी से घर बसा लो रोहन। एकाँकी जीवन कोई मूल्य नहीं रखता। मुझे ही देखो, एकान्त और एकाकीपन ने बिल्कुल नीरस बना रखा है। मैं............।"

रोहन चारु को बहकते देख उठकर खड़ा होगया और जाने के लिये प्रस्तुत हो, धीरे-धीरे कहने लगा—"यह सब काम मेरे नहीं हैं चारुदेवी ! जैसा पिताजी, माँ और बुआ चाहेंगी, करेंगी। अच्छा अब चलता हूँ बुआ रास्ता देखती होंगी।" यह कह कर वह जाने को जैसे ही उद्यत हुआ चारु उठ कर खड़ी होगई और उसके निकट आ अनुरोध भरे स्वर में बोली—"बैठो रोहन, अभी देर ही कितनी हुई है, तुम तो आते ही जाने की जल्दी करने लगे, मैं तुम्हारा शुमार ग्राहकों और मरीजों में न करके अपनों में ही करती हूँ और तुम न जाने इतना संकोच क्यों करते हो!"

रोहन द्विविधा और असमंजस में पड़ा हुआ बैठ गया। उसने चारु की बात का जवाब नहीं दिया और चारु पुन: उसका ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करती हुई कहने लगी—"अब तो माँजी की तबियत रुपये में बारह आने भर ठीक होगई हैं। जल्दी ही वे रोग-मुक्त हो जायेगी, अब परेशानी की कोई बात नहीं, अब तुम्हें खुश होना चाहिये रोहन ! मैं...............।"

रोहन ने यह अनुभव किया कि चारु बे सिर-पैर की बातें कर रही है, खामख्वाह के लिये वह समय नष्ट कर रही है। मुझे अब चल देना चाहिये; क्योंकि चारु की मन:स्थिति अच्छी नहीं है। वह अपने

स्तर को भूल गई है। यह सोच वह बीच में ही बोल उठा—"सब आपकी कृपा है, अब चलने दीजिये देर बहुत होगई है।" यह कहकर रोहन उसके उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही जल्दी से डिस्पेंसरी के बाहर निकल गया और चारु को ऐसा लगा कि बड़े प्रयत्न के बाद उसने एक परिन्दा पाया था, जो पंख फैलाकर उड़ गया और वह फिर ठगी की ठगी ही रह गई।

चारु स्वयं में उलझी हुई सोचने लगी, क्या मेरा रोहन के ऊपर इस भाँति आसक्त होना उचित है। मानव स्वभाव की एक विशेषता होती है, वह यह कि जिस समय जो व्यक्ति किसी धर्म संकट में पड़कर सोचता है, तो सिर्फ अपने पक्ष में ही होने वाली हित की बात सोचता है—किसमें उसे सुख होगा—चाहे वह राह गलत हो एवं कितने ही काँटों से बिछी हो। जिसमें नारी! वह तो बड़ी सरल होती है—नारी-बुद्धि तो वैसे ही प्रसिद्ध हैं; अतः चारु इस समय जो भी सोचती सिर्फ अपने हृदय में उठने वाली तरंगों के पक्ष में ही।

## सैंतालीस

रोहन घर आकर चारु के प्रति सोचने लगा कि आज अचानक उसको यह क्या सनक सूझी कि यकायक मुझ पर आसक्त होगई। वह कितनी समझ-दार और जिम्मेवार नारी है; फिर उसमें यह अस्थिरता। समझ में नहीं आता कि दुनियाँ क्या है? अब पता चलता हैं कि मुझ पर अत्यधिक उदारता करने का क्या कारण था, चारु मेरी ओर इसके पहले से ही आकृष्ट हो रही थी; लेकिन मैं समझा नहीं। वास्तव में स्त्री एक पहेली है, उसे कोई सहज ही नहीं बूझ पाता।

दोपहर ढल रही थी। लू अब भी अपनी जीभ लपलपा रही थी। धूप की तेजी कम होने का तनिक भी महत्व नहीं था इस समय; क्योंकि हवा की गर्मी भट्ठी की आँच को चुनौती दे रही थी। रोहन अपने कमरे में लेटा छत्त की ओर देख रहा था। चारु के प्रति उसने यह निश्चय कर लिया कि आज उसकी मनःस्थिति डाँवाडोल थी। उसकी फिसलन से मुझे डर लगता है। क्योंकि नारी जब फिसलती है तो फिर वह रपटती ही चली जाती है और अपने साथ पुरुष को

भी ले डूबती है । मुझे सावधान रहना चाहिये । मैंने तय कर लिया है कि आज से मैं उसकी डिस्पेंसरी नहीं जाऊँगा, दवालेने के लिये पिताजी को भेजा करूँगा । इसके अतिरिक्त माँ के स्वास्थ्य में अब काफी सुधार है, ईश्वर ने चाहा तो चार–पाँच दिन में वे नीरोग हो जायेंगी । फिर किस्सा ही खत्म हो जायेगा ।

डाक्टर हरीश के प्रति रोहन की विचारधारा अब ऐसी थी कि वह एक सुलझा हुआ आदमी है और चारु है आवश्यकता से अधिक हल्की । शायद इसीलिये दोनों में नहीं पटी । मुझे लगता है कि डाक्टर हरीश से सम्बन्ध विच्छेद होने पर चारु में अचानक अस्थिरता आगई है । उसके हाथ से प्यार का दामन छूट गया है । वह उसे पकड़ने के लिये दौड़ रही हैं । वह प्रश्रय चाहती है, तभी भटक रही है । मेरा कर्तव्य है कि उसे पथ बतलाऊँ । यदि कभी अवसर आया, मैं उसे समझाउँगा । मुझे विश्वास है कि वह मेरी बात अवश्य मानेगी ।

इस भाँति रोहन ने शाम को विद्याधर को दवा लेने भेजा । चारु को यह देख बड़ा आश्चर्य हुआ । वह पता नहीं कितनी बेसब्री से उसके आने की राह देख रही थी । पूछने पर विद्याधर से ज्ञात हुआ कि एक ट्यूशन नया मिल गया है, वहाँ इस समय जाना पड़ा करेगा । चारु चुप होगई ।

प्रातः भी यही हुआ । रोहन दवा लेने नहीं गया । इस बार चारु को विद्याधर ने यह बतलाया कि वह अपने चर्खे में जुटा है । आज सुबह से बैठे-बैठे सूत कात रहा है ।

यह सुनकर चारु ने एक लम्बी और ठण्डी सांस ली ।

× × ×

यद्यपि अब हीरा लगभग स्वस्थ हो आई थी । इन्जेक्शन लगने बन्द हो गये थे; लेकिन फिर भी चारु कभी-कभी उसको देखने पहुंच जाती । वहाँ जाने पर उसकी रोहन से एक तो भेंट होती ही नहीं और

अगर वह कभी मिल जाता तो चलताऊ दो-एक बातें करके फुरसत पा जाता था। उसके इस रूखे व्यवहार से चारु एकदम खीझ उठी और एक दिन वह एक आवश्यक दवा देने के लिये कहकर रोहन को अपने साथ डिस्पेंसरी लिया लाई। वहाँ आते ही उसने नर्स को एक काम से बाजार भेज दिया और उससे बातें करने लगी।

रोहन पहले से ही चारु की प्रत्येक बात का जवाब देने के लिये प्रस्तुत था। वह बोला—"आप अपने को सम्हालिये चारु देवी! चरित्र ही मनुष्य का गहना है। मैं जानता हूँ कि डाक्टर हरीश से विच्छेद होने के कारण आपके मन में अस्थिरता आगई। आप अपने उलझे मन को रमाना चाहती हैं; लेकिन उसका यह तरीका तो नहीं कि आदमी अपना अस्तित्व ही भूल जाय। मैं अपनी गुस्ताखी के लिये माफी का तलवगार हूँ। आपके अहसानों के बोझ ने मुझे दाब रक्खा है। मैं आपकी श्रद्धा करता हूँ। उस श्रद्धा को दूसरा रूप न दीजिये। मैं आपको मानवी नहीं देवी समझता हूँ।"

अब चारु को अपनी वर्तमान परिस्थिति का बोध हुआ। उसने एक क्षण में ही न जाने कितनी बातें सोंच डालीं कि मनुष्य जब जो चाहता है, वह उसे कभी नहीं मिलता। स्त्री जब किसी पुरुष की ओर झुकती है तो वह उससे दूर भागता है और अपने स्वार्थ के लिये पुरुष उसे प्यार करता है, चलता है, ठगता है और विवश करता है। वह झुक जाती है और पुरुष कभी नही झुकता। रोहन के पास विवेक है और विवेक पथ-भ्रष्ट कभी नहीं होता।

चारु के मुख पर उदासी के बादल छा गये। वह बोली कुछ नहीं, नीची दृष्टि किये फर्श की ओर ताकती रही। रोहन फिर कहने लगा—"डाक्टर हरीश से विच्छेद होने के कारण आपका चित्त असंतुलित है। आप किसी ऐसे प्रवाह में न बहिये। जिससे आपकी प्रतिष्ठा में बट्टा लगे। मुझे आपकी इज्जत प्यारी है। इसीलिये इतना जोर दे रहा हूँ।"

चारु ने एक जम्हाई ली और थके स्वर में कहने लगी—"रोहन अब अधिक कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है। कुँआ होता तो जल्दी नहीं पटता; लेकिन खाईं तो पाटी जा सकती है। काश ! तुम्हारी ही तरह आज को सारा भारतीय नवयुवक-वर्ग हो तो उत्थान कितना सुलभ हो सकता है। मुझे वहुत बड़ा पश्चाताप है अपनी दुर्बलता पर ! तुम ठीक कहते हो कि मुझे पाप का प्रतीक नहीं बनना चाहिये।"

रोहन को चारु की ये बातें सुनकर सन्तोष हुआ, उसने फिर उसको काफी देर तक समझाया। चारु को क्रोध नहीं आया; क्योंकि वह अपना उत्तरदायित्व भली-भाँति समझ गई थी।

× × ×

अब चारु, रोहन से मिलने में-झिझकने और संकोच करने लगी थी। यह कारण था, हफ्तों बीत जाते और उसकी उसमें भेंट नहीं होतीं।

## अड़तालीस

व्यभिचारी, दुराचारी और कुप्रवृत्ति वाला आदमी सांपों की कोटि में आता है। जैसी कहावत है कि 'सांप बारह वर्ष के बाद भी अपना दांव ले लेता है वैसे ही नीच प्रकृति वाले व्यक्ति हमेशा प्रतिशोध की आग में जला करते हैं। बदला लेना उनका पहला काम होता है।' सदाशिव ने जब सुना कि चारु ने डाक्टर हरीश को तलाक दे दी है, तो वह खुशी से फूला नहीं समाया। रोहन के यहाँ से बरीक्षा-व्यवहार वापस आने के बाद उसने एक जगह नहीं, प्रत्युत कितने ही दरवाजे खटखटाये। लेकिन कहीं भी काम नहीं बना। न जाने वर पक्ष के लोग कैसे जान जाते थे, कि वे उससे छूटते ही प्रश्न करते, कि आखिर लड़की का पहला ब्याह क्यों उचट गया तब सदाशिव निरुत्तर हो जाता।

अब सदाशिव के सामने यह स्वर्ण अवसर था जो चारु और हरीश में सम्बन्ध विच्छेद हो गया था। वह मौका पाकर एक दिन कानपुर आया। हरीश 'उस समय डिस्पेंसरी में था। घर पर उसकी बदलू से भेंट हुई उसने अपना प्रस्ताव बदलू के सामने रखा। वह

तत्क्षण ही सहमत हो गया और फिर जब हरीश घर आया तो उसके लाख इन्कार करने के बावजूद भी समझा-बुझा कर बदलू ने उसे सहमत कर लिया।

इस तरह विभा का ब्याह डाक्टर हरीश के साथ तय हो गया। किसी ने नहीं जाना, किसी ने नहीं सुना। असाढ़ आरम्भ हो गया था; और इसी माह में सुदी एकादशी की लग्न थी। सदाशिव ने राधामोहन को इसकी कोई सूचना नहीं दी। उसे भय था कि वहाँ पर चारु है पता लगने से काम बिगड़ सकता है। इसीलिये उसने निश्चय किया कि बारात आने के एक दिन पहले उसको निमन्त्रण दे दूँगा।

चारु इन सब बातों से अनभिज्ञ थी। उसे एक और भय हो गया था और वह भय था उसका गर्भ। वह अहर्निश सोचा करती कि यह क्या है कहीं ऐसा न हो कि हरीश से मैं अलग हो गई हूँ; लोग यह कहने लगें कि मेरे पेट में पाप पल रहा है। क्या करूँ? यह स्थिति बहुत विचारणीय हो गई है। पिछले महीनों में मैं यह सोचती रही कि मासिक-धर्म में कोई गड़बड़ी है। इसीलिये ध्यान नहीं दिया नहीं तो मैं इस पचड़े को समाप्त कर देती। लेकिन अब क्या हो सकता है, दिन काफी हो चुके हैं; घर में भाभी कोई दूध पीती बच्ची नहीं हैं। गर्भ-स्रवा उनसे छिपा नहीं रह सकता। मैं नहीं जानती थी कि यह अपवाद मेरे साथ जुड़ गया है वर्ना हरीश को कभी तलाक नहीं देती जब बच्चा हो जाता तो देखा जाता।

चारु को जिस बात का भय था आखिर वह एक दिन उसके सामने आ गया। स्त्रियाँ! स्त्रियों की भाषा, चाल-ढाल और रङ्ग-ढङ्ग सब बहुत जल्दी पहचान जाती हैं। रेवा के मन में चारु के प्रति कभी सन्देह नहीं जागा; लेकिन इधर कुछ दिनों से उसका बढ़ा हुआ पेट देखकर वह सोचा करती कि चारु ने बड़ी गलती की। उसे हरीश को तलाक नहीं देना चाहिए था। अब मेरी समझ में आता है कि फागुन से लेकर अब

तक उसको मासिक-धर्म नहीं हुआ इससे स्पष्ट है कि जिस समय उसने तलाक दी उसे इस बात का बोध नहीं हुआ था। मुझे बड़ा डर है कि कहीं दुनियाँ कुछ और न कहने लगे; क्योकि किसी को बदनाम करना आदमी के बायें हाथ का काम है।

रेवा ने एक दिन अकेले में चारु से पूछा—"चारु, तुम माँ बनने जा रही हो इसके लिये भी कभी कुछ सोचा है। मैं बहुत दिनों से तुमसे पूछने वाली थी; लेकिन हमेशा सोचकर ही रह जाती पूछ नही पाती। क्या डाक्टर हरीश को इस बात का पता है, और तुम······।"

अब चारु के देवता कूच कर गये। उसने मरी आवाज में कहा—"नहीं भाभी, जब मुझे ही ज्ञान नहीं था तो फिर वे इस बात को कैसे समझ सकते थे।"

"अच्छा कोई बात नहीं। मुझे एक बात का डर है कि कहीं यह सोचकर गर्भपात के लिये तुम कोई दवा न खालो, इन्जेक्शन न ले लो; कि यदि डाक्टर हरीश ने तुम्हें परेशान करने की कोशिश की—कि यह गर्भ उनका नहीं है; तो तुम्हारी बदनामी हो जायेगी। ऐसा न करना चारु! भ्रूण-हत्या करना बहुत बड़ा पाप है! साँच को कभी आँच नहीं लगती। ससुराल से आकर तुम अपने मैके में रहीं हो दुनियाँ कुछ भी कहे; लेकिन मैं सबसे दावे के साथ कह सकती हूँ कि डाक्टर हरीश ही इस भावी शिशु के पिता हैं; और थोड़ी देर के लिये मान लो कि यदि वे मुकर जाँय और यह कहने लगे कि यह बच्चा मेरा नहीं है इस इतिहास को चारु ही जानती होगी तो मैं उसे पालूँगी; क्योंकि मेरी गोद खाली है और उसके भरने की अब कोई आशा नहीं।"

चारु को भाभी की बातों से बड़ा सन्तोष हुआ। उसने उसको वचन दिया कि वह गर्भपात नहीं करेगी और ऐसा कभी सोचा भी नहीं

था। वह दुनियाँ से लड़ेगी; क्योंकि दुनियाँ में ताकतवर वही है, जो ईमान की नींव पर खड़ा है। वह सच्चाई को सिद्ध कर देगी, कहने वालों के मुँह बन्द कर देगी; और अगर जरूरत पड़ी तो शिशु को रेवा के सिपुर्द कर समाज-वेदी पर अपने को उत्सर्ग कर देगी।

दोनों ननद-भोजाई में इस प्रसंग पर काफी बातें हुईं। रेवा ने उसे बहुत समझाया, सान्त्वना दी और ढाढ़स बँधाया कि वह निर्भय रहे कि अभी उसके सिर पर माँ-बाप के सदृश बड़े भाई और भाभी का हाथ है। वह छाया में पली है और छाया में ही रहेगी। कोई भी उसका अहित नहीं कर सकता।

चारु रेवा से हमेशा आशा रखती चली आई थी कि भाभी उसकी बात कभी नहीं टालेंगी और एक बार अगर धोखे से उसका कदम गलत उठ जाय तो उस पर पर्दा डालेगी और उसे हतसोहित कभी नहीं होने देंगी। वह बहुत बड़े भार से मुक्त हो गई और सोचने लगी कि जब सिर पर हाथ रखने वाले मौजूद हों तो आदमी को अपने प्रति अकेलेपन का अनुभव नहीं करना चाहिये।

यह बात रेवा ने एक दिन राधामोहन को भी बतलाई और सारी परिस्थिति समझाते हुये कहा—"चारु स्वयं समझदार है। मैंने उसे समझा दिया है। वह अपनी प्रतिष्ठा का ध्यान रखेगी और कभी भयभीत नहीं होगी कि लोग उसके प्रति किंवदंतियां फैलाकर उसे बदनाम करने की कोशिश करें।"

राधामोहन को पत्नी की बातों से सन्तोष तो हो गया; लेकिन मन में यह बात खटकती रही कि चारु ने डाक्टर हरीश को तलाक देकर अच्छा नहीं किया। यह उसके लिये निष्ट कारण बन सकता है और वह बदनामी के माध्यम से बरबादी की ओर जा सकती है। पता नहीं क्या

होने वाला है, जबसे चारु लखनऊ से आई है, नित्य नये-नये परिवर्तन सामने आते रहते हैं।

इस तरह राधामोहन तो सोच-सोच कर हैरान होता रहता; किन्तु रेवा अपने में सन्तुष्ट थी कि यथार्थ को अविश्वास का चोगा पहनाकर ठगने वाला आदमी स्वयं ठग जाता है और सच्चाई कभी छिपती नहीं।

## उनंचास

एकाएक गाँव से खबर आई कि सुखरानी की तबियत बहुत खराब है। हालत निराशा-जनक है, उल्टी साँस चल रही है, दम फूल रहा है और ऐसा लगता है कि वह चन्द धण्टों की ही मेहमान हैं।

देवकुमार की आँखों में यह सुनते ही आँसू आगये। उसने उसी समय गाँव जाने का निश्चय कर लिया। शरबती साथ जा रही थी, उसने घबड़ाहट में भी समझदारी से काम लिया और पति को यह सलाह दी कि वह अपने साथ लेडी डाक्टर चारुशीला को भी ले चले, उससे लाभ की बहुत बड़ी आशा है।

देवकुमार को पत्नी की बात पसन्द आई। उसने चारु को जाकर सारी स्थिति समझाई और उदार-हृदया चारु उसके साथ गाँव जाने के लिये तैयार होगई।

जब सब लोग मोतीपुर पहुँचे तो वहाँ सुखरानी शय्या पर पड़ी जोर-जोर से हाँफ रही थी। उपचार गाँव के वैद्य का हो रहा था, जिसके दाँत गिर गये थे और बाल सनई जैसे श्वेत थे। चारु ने जाते ही

कोरामिन का इंजेक्शन लगाया। इसके बाद पेंसीलिन और ग्लूकोज आदि के इंजेक्शन दिये। धौंकनी-सी चल रही पसलियों पर 'एण्टीफ्लोजिस्टीन' का प्लास्टर चढ़ाया, जिससे धीरे-धीरे उखड़ी हुई साँस सधने लगी।

कला इस समय गाँव में ही थी। पड़ोस और घनिष्ठता होने के कारण वह सुखरानी के पास इस बीमारी की हालत में बहुत समय देती थी। शरबती सास की परिचर्या में अहर्निश व्यस्त रहती और चारु को इस बात के लिये विवश करती रहती कि वह एक दिन और रुक जाये, जिससे माँ खतरे के बाहर हो जायें। फिर स्वस्थ होते ही उन्हें कानपुर ले जाऊँगी, वहीं इलाज होगा।

चारु के हाथ में सार्वजनिक सेवा का काम था। डिस्पेंसरी एक दिन बन्द रही तो दूसरे दिन उसे जरूर खुलना चाहिये था। ऐसी स्थिति में वह मोतीपुर में रहना नहीं चाहती थी; लेकिन शरबती और देवकुमार दोनों ने उसे आग्रह में बाँध रखा था और इस तरह उसे दूसरे दिन गाँव रुकना पड़ा।

इन्जेक्शन और दवाइयाँ पहुँचते ही सुखरानी की साँस का वेग रुक गया और उसकी हालत में क्रमशः सुधार होने लगा।

इस बीच कला ने जब चारु का बढ़ा हुआ पेट देखा तो वह आश्चर्य करने लगी कि जब मैं भाभी की बीमारी में कानपुर गई थी तो चारु को देखकर यह समझती थी कि उसकी तन्दुरुस्ती अच्छी है, इसीलिये पेटी पड़ गई है, मगर मेरा वह सोचना गलत था। गर्भ साफ नजर आ रहा है। राम ! राम ! यह कैसी औरत है चारु; कि आदमी ने छोड़ दिया और यह पेट लिये घूम रही है। तनिक भी शर्म-हया नहीं है इसको ! इसीलिये मुझे शहर की लड़कियों पर परतीति नहीं होती।

यह बात कला ने पहले शरबती से कही फिर सुखरानी से और उसके बाद गाँव की बड़ी-बूढ़ी स्त्रियों को इस समाचार से अवगत कराया।

इस तरह गाँव में चख-चख मच गई। लेकिन बदनामी की हवा बहने के पहले ही चारु तीसरे दिन शहर चली आई। उसी दिन सुखरानी और रामकुमार के साथ शरबती तथा देवकुमार भी कानपुर आगये।

अब कला ने गाँव में खुलकर यह प्रचार करना आरम्भ कर दिया कि चारुशीला डाक्टरनी बदचलन है। उसके पति ने उसको इसीलिये छोड़ दिया है। देखो न, पेट में पाप की गठरी लादे घूम रही है। देवकुमार की उससे बड़ी गहरी मित्रता है और उसकी बहू भी इन ऐसे लोगों के साथ रहती है, जिनका न कोइ आचार है और न विचार।

गाँव में देवकुमार, शरबती और चारु की जी-भर बदनामी करके कला ने संतोष की साँस ली। न जाने कैसा दुष्ट स्वभाव था उसका। दूसरे की बुराई करने में उसे बड़ा आनन्द आता था।

अभी रामकुमार के परिवार को शहर गये दो ही तीन दिन हुए थे कि कला को विद्याधर का पत्र मिला, जो उन्होंने रोहन से लिखवाकर छोड़ा था। कहीं ब्याह की बातचीत चल रही थी, इसलिये यह आवश्यक था कि लड़की देखने के लिये कला को गाँव से बुला लिया जाया। कला पत्र पाते ही कानपुर पहुंच गई।

× × ×

सुखरानी शहर आकर स्वास्थ्य लाभ करने लगी। किन्तु उसका मन शहर में नहीं लगा था; क्योंकि यहाँ खुली और स्वच्छ हवा तो मिलने से रही। गर्मियों का मौसम था; छोटे से घर में उसकी तबियत ऊबती थी। वह अक्सर रामकुमार से कहा करती कि तबियत ठीक होते ही मैं गाँव चली जाऊँगी। मुझे तनिक भी अच्छा नही लगाता है यहाँ।

यह सुनकर देवकुमार माँ पर जोर डालता और कहता कि माँ, मैं अकेले तुम्हें गाँव में नहीं रहने दूँगा। खाँसी और साँस की तुम्हें बीमारी है। आये दिन तबियत खराब होती रहती है। यहाँ रहने पर मुझे संतोष रहेगा।

मगर सुखरानी शहर में रहने के पक्ष में नहीं थी। बहू शरबती ने भी सास से विनय की कि वह उसको अपनी सेवा में रक्खे। शहर में उसका रहना जरूरी है, क्योंकि देहातों में दवा-इलाज की बड़ी दिक्कत होती है। किन्तु सुखरानी को गाँव ही प्रिय था। वह लड़के और बहू की बातें सुनकर हँस देती।

उपचार चल रहा था। कला अक्सर सवेरे–शाम सुखरानी को देखने आ जाती। एक रात को सुखरानी की तबियत अधिक बिगड़ गई। चारु को रात भर वहाँ रहना पड़ा। कला भी आधी-रात गये अपने घर पहुँची। घर जाकर उसने हीरा से दुनियाँ भर की बातें कहीं कि "चारुशीला बहुत आजाद है, आज रात भर रहेगी वह देवकुमार के घर में। क्या राधामोहन और उनकी घर-वाली इससे कुछ नहीं पूछते कि इतनी-इतनी रात तक तुम कहाँ रहती हो ? आजादी का ही यह नतीजा है कि वह पेट पर हँड़िया औंधाये घूम रही है। अब समझी कि देवकुमार की बहू को भी इसी ने खराब किया है। तभी वह परदा नहीं करती, मुँह खोले घूमती है।

इसी तरह कला ने दो–चार दिन में चारों ओर का वाता-वरण दूषित कर दिया। बात शरबती और देवकुमार के कानों में भी पहुंची। ऐसे ही रेवा और राधामोहन ने भी सुना कि चारु की बदनामी सर्वत्र हो रही है। मोहल्ले के लोग कहते हैं कि चारु एक से दो होने जा रही है। जब तलाक दे चुकी और अपने पति से अलग रहती है तो फिर यह हमल ( गर्भ ) कैसा ?

बात जब एक मुँह से निकल कर दूसरे के कानों में पहुँ-चती है तो यह समझ लेना चाहिये कि अब उसके प्रसार में देर नहीं। ऐसा ही हुआ भी था; चारु के साथ। कला ने शहर में अपने

पड़ोस की स्त्रियों से उसकी बदनामी की बात कही थी और बद-नामी के पाँव नहीं, उसके पैर होते हैं। वह हवा में उड़ती है।

चारु के कानों में भी ये बातें पड़ीं कि चारु चरित्रहीन है। उसके गर्भ है जबकि डाक्टर हरीश ने उसको छोड़ दिया है, फिर यह पेट कहाँ से आगया ? यह सब सुनकर वह हैरान हो उठी।

## पचास

यद्यपि सुखरानी अभी पूर्णतया स्वस्थ नहीं हो पाई थी; लेकिन फिर भी वह पति के साथ गाँव चली गई। शरबती भी सास के साथ गई थी। जो दवाइयाँ चारु ने लिख दी थीं वे ही खरीद कर देवकुमार ने शरबती को दे दीं। ये पेटेन्ट दवाइयाँ थीं; क्योंकि सुखरानी अब यह बिल्कुल पसन्द नहीं करती थी कि वह चारु के दवाखाने से दवाई मँगाये। वह उससे घृणा करने लगी थी। गाँव जाते समय उसने देवकुमार को मना किया कि वह राधामोहन के घर न आया-जाया करे। उसका खान्दान अच्छा नहीं है।

कला जिसलिये शहर आई थी वह काम नहीं हुआ। वह लड़की देखने गई तो वहाँ से फौरन ही वापस चली आई। लड़की दो लम्बी चोटियाँ बाँधे थी एक सामने उसके वक्ष पर लटक रही और दूसरी पीठ पर लोटती हुई कटि प्रदेश तक पहुँच रही थी। आवश्यकता से अधिक उसने मुँह पर पाउडर पोत रक्खा था और होठों में लगी हुई बेशुमार लाली ऐसी लग रही थी, मानो बिल्ली की भाँति वह अभी-अभी चूहा तोड़ कर आई हो। दोनों कनपटियों पर उसने

बालों के पत्ते बना रक्खे थे और सिर पर बालों की माँग सीधी न काढ़ कर टेढ़ी निकाली थी। धोती उसने कन्धे पर डाल रक्खी थी, सिर खुला हुआ था। यह सब देख कला बिचक गई। उसने वहीं पर लड़की के माँ-बाप के सामने कह दिया कि मेरे घर में फैशन नहीं चलता है। हम लोग सादगी ज्यादा पसन्द करते हैं। और बेपर्दगी से तो हमारे घर में सभी को सख्त नफरत हैं।

चलते समय कला ने हीरा को समझाया कि रोहन का ब्याह मैं जैसा पहले कहती थी कि गाँव की लड़की से करूँगी, वही होगा। शहर वालों से तो भूलकर भी ब्याह की बात नही करनी चाहिये। अकेला लड़का है। अगर कोई शहरी लड़की घर में आ गई तो घर को तबाह कर देगी।

इसके बाद कला गाँव चली गई।

× × ×

असाढ़ बरस रहा था। खेतों में हल चलने लगे और गाँव की चोपारों में आल्हा तथा बारहमासी आदि गाने की धूम मच गई। शरबती गाँव में ही थी। सुखरानी स्वस्थ हो गई थी; किन्तु अभी कमजोरी थी। कला दुनियांदारी करने उसके पास आ जाती और इधर-उधर की बातें करके चली जाती। नित्य वह चारुशीला का प्रसंग छेड़ती और दुनियाँदारी की बातें बकती रहती।

एक दिन तो कला ने शरबती को भी नहीं छोड़ा। वह सुखरानी से बोली—"चाची! देखो तो चारु कैसी छिपी रुस्तम निकली। भगवान बचाये ऐसे लोगों से। मैंने तो अपने रोहन को मना कर दिया है कि खबरदार वह उसके दवाखाने न जाय। और देवकुमार के लिये क्या कहूँ। वह तो राधामोहन के बिना पानी भी नहीं पीता है। दिन में बीस चक्कर लगाता है उसके घर के। कहीं बदनामी का टीका माथे पर लग गया तो फिर लाख धोने पर भी नहीं छूटेगा।

सुखरानी ध्यान से कला की बातें सुन रही थी। शरबती चुपचाप बैठी थी और कला की वार्ता चल रही थी—"राधामोहन की बहू के साथ तुम्हारी बहू की बड़ी दोस्ती है। तभी उसके पास पढ़ने जाया करती है। इसको समझा दो चाची कि इन बुरे लोगों से यह दूर ही रहे। छोटी सी भी एक अफवाह आदमी को बेकार के लिये बदनाम कर देती है। मैं तो पहले ही कहा करती थी कि देवकुमार की बहू शहर में परदा नही करती है। इसमें बेचारी बहू का पाई भर भी दोष नहीं है चाची। सब संगति का असर हैं। कहा जाता है कि संगति ही गुन उपजे संगति ही गुन जाय। बाँस-फाँस और मिसरी एक ही भाव बिकाय।"

तनिक चुप रहकर कला शरबती की ओर उन्मुख हुई और उसे समझाती हुई कहने लगी—"देखो बहू जमाना बड़ा टेढ़ा है। अगर फूँक-फूँक कर पैर नहीं रक्खोगी तो तुम भी बदनाम हो जाओगी चारु के साथ। इसीलिये मेरी समझ से तो यह बहुत अच्छा रहेगा कि तुम उसके घर से एकदम तल्ला ही तोड़ दो। वह बदनाम औरत है। उसके साथ बैठना-उठना तुम्हारे लिये अच्छा नहीं।"

सुखरानी कला की हाँ में हाँ मिलाती रही; लेकिन शरबती उसकी बातों को बराबर काटती चली गई। उसने चारु को निर्दोष सिद्ध करने के लिये कुछ उठा नहीं रखा। किन्तु कला के दकियानूसी पन के सामने उसकी बातें नहीं ठहर सकीं। वह उलटा व्यंग्य कसती हुई सुखरानी से बोली—"देखा चाची। तनिक अपनी बहू की बातें तो सुनो। कहती है कि चारुशीला सती सावित्री है। मरी मुँहझौंसी अगर ऐसी ही पतिवरता (पतिव्रता) थी तो खसम को तलाक क्यों दे दी। भगवान का नाम लो बहू। बद की सोहबत फिर भी किसी हद तक दुरुस्त है और बदनाम आदमी की छाया भी अगर ऊपर पड़ जाय तो समझ लो कि अनर्थ होगया। वह हरजाई है।"

शरबती ने फिर कला के मुँह लगना अच्छा नहीं समझा । वह चुप हो रही और कला के मन में जो कुछ आया वह बकती रही ।

× × ×

गाँव की भाँति नगर में चारु की अपकीर्ति फैल रही थी । देव-कुमार को इससे बहुत दुख हुआ । वह राधामोहन को अक्सर समझाया करता कि राधामोहन बाबू मेरी समझ में यह बात आती है कि आप डाक्टर हरीश से मिलिये, उनको समझाइये कि चारु को अपने पास बुला लें । ऐसे धर्म-संकट की स्थिति में वह पुनः सम्बन्ध स्थापित करने से इन्कार नहीं करेगी ।

और राधामोहन भी इस बात पर गहराई के साथ विचार करता तो यही पाता कि देवकुमार ठीक कहता है । पहले इस सम्बन्ध में मुझे रेवा और चारु से परामर्श करना चाहिये । तत्पश्चात् हरीश को इस बात के लिये समझा-बुझाकर राजी करूँ कि वह चारु को अपने घर बुला ले ।

यद्यपि सुखरानी, देवकुमार को मना कर गई थी कि वह चारु-शीला से न मिले और राधामोहन के घर का आना-जाना बिल्कुल बन्द कर दे; लेकिन देवकुमार इसे न्याय-संगत नहीं समझता था । उसने अपने कर्तव्य की लीक पकड़ी कि आपत्ति में चार बातों की परख हो जाती है । जैसा कि तुलसीदासजी का मत है—

"आपत्ति काल परखिये चारी । धीरज, धर्म, मित्र और नारी ।"

यही कारण था कि देवकुमार, राधामोहन के हित-चिन्तन में व्यस्त रहता है ।

सुखरानी को गाँव गये अभी एक सप्ताह ही हुआ था कि शनिवार की रात को देवकुमार अचानक गाँव जा पहुँचा माँ को देखने । उस दिन अपने साथ वह एक अँग्रेजी शरबत ले गया । जिसके लिये चारु ने उसे बताया था कि खाना खाने के बाद दोपहर को और वैसे ही रात को

दो चम्मच लेने से हाजमा ठीक रहेगा। उसने शरबत की शीशी माँ को दिखलाई और मगन-मन कहने लगा—"माँ, यह शरबत पेट के हाजमे के लिये बहुत अच्छा है। चारु कहती थी कि............।"

"भाड़ में जाय तुम्हारी चारु और उसकी दवा! मुझे नहीं चाहिये।" यह कहकर सुखरानी तेजी के साथ उठकर बैठ गई। उस समय उसकी हड्डियों में पता नहीं इतना बल कहाँ से आगया था। उसने देवकुमार के हाथ से शरबत की शीशी छीनकर जोर से दीवाल पर पटक दी। शीशी चूर-चूर होगई और दीवाल शरबत से नहा गई।

शरबती सास का मुँह देखने लगी और देवकुमार माँ का गुस्सा देख ताज्जुब और हैरत में होकर विचार करने लगा कि आज यह पहला मौका है जबकि माँ ने मुझ पर इतना क्रोध किया। क्रोध करना तो इन्हें आता ही नहीं था।

तभी सुखरानी पुनः आँखें तरेर कर बोली—"पहले यह बताओ कि जब मैंने मना किया था फिर तुम चारु के घर क्यों गये? तुम्हारी और बहू दोनों की मति मारी गई। तुम लोग बदनाम करवाने पर तुले हो।"

"क्या बात है? क्यों बिगड़ रही हो?" कहते हुए रामकुमार वहाँ आगये।

तब सुखरानी पति की ओर देख कर कहने लगी—'यहाँ गाँव में तो कान नहीं दिये जाते। चारु के पीछे सारे घर की थू-थू हो रही है और हमारे लाड़ले की आंखे अब भी नहीं खुलीं। मैं कहती हूँ कि चारु के घर जाने की क्या जरूरत है। नाली में ईंटें डालोगे कीचड़ अपने आप तुम्हारे ऊपर गिरेगा।"

यह कह कर सुखरानी रामकुमार को शरबत वाला हाल बतलाने लगी। देवकुमार अब तक भौचक्का सा खड़ा था। सुखरानी चारपाई से

उतर कर पति के आते ही नीचे बैठ गई थी। ससुर को आया देख शरबती वहाँ से चली गई।

देवकुमार खड़ा था। रामकुमार उसकी ओर देख स्नेहपूर्वक कहने लगे—"आओ बैठो देव। तुम्हारी माँ ठीक कहती हैं। फायदा क्या है ? मैं कहता हूँ कि जब एक आदमी अच्छा नहीं है तो उसके पास मत बैठो, उसका साथ मत करो।"

देवकुमार बाप के निकट बैठ गया। वह कहने लगा—"पिताजी ! यह सब गलत है कि चारु बदचलन है। झूठी बदनामी उड़ाने से क्या होता है ? मैं ऐसी अफवाहों की परवाह बिल्कुल नहीं करता।"

इस पर रामकुमार के बोलने से पहले ही सुखरानी गरम होकर बोल उठी—"हाँ हाँ ठीक है तुम क्यों परवाह करोगे। जूत तो हम लोगों के लगते हैं। जब भी कला शहर होकर आती है तो कोई न कोई शिकायत बहू की करती ही रहती है। गाँव में कितनी बदनामी हुई बहू की कि वह परदा नहीं करती। आजाद है, अकेले घूमती है। और अब भी यहाँ तुम दोनों को कोई अच्छी निगाह से नहीं देखता है। मैं मर जाती यह मुझे मन्जूर था; लेकिन अगर यह जानती कि चारु के आने से तुम दोनों भी बदनाम हो जाओगे तो उसे घर में पैर नहीं रखने देती। तुम उसको लाये ही क्यों थे ?"

देवकुमार ने इसका कुछ जवाब देना चाहा; लेकिन माँ की चढ़ी हुई त्योरियाँ देख वह मौन रहा।

उस रात को बड़ी देर तक घर में सबमें कहा-सुनी होती रही। रामकुमार पुत्र को समझाते रहे और सीधी-सादी सुखरानी आज इतनी उग्र हो गई थी कि वह निरन्तर पुत्र को डाँटती ही रही।

× × ×

बाहरी कला ! आज तेरे ही कारण एक सुखी परिवार में भी कलह के बादल मँडराने लगे।

देवकुमार को नींद नहीं आई। सारी रात वह उलझन में ही पड़ा रहा। वह सोचता रहा कि यदि कानपुर में रहना है और नौकरी करनी है तो यह नितान्त असम्भव है कि मैं राधामोहन से कोई मतलब न रक्खूँ। फिर इतने दिन का पुराना सम्बन्ध यकायक कैसे तोड़ दिया जाय। मेरी समझ में नहीं आता है। आदमी खुश सबको रखना चाहता है; किन्तु अपनी इस कोशिश में वह कभी पूरा नहीं उतरता। यह उसका दुर्भाग्य है। बड़ी मुश्किल है। क्या करूँ? ऐसा लगता है कि कोई बहुत बड़ा परिवर्तन आने वाला है उसी के ये सब लक्षण हैं।

बैंक की नौकरी कैसे छोड़ दूँ? आखिर रोटियाँ कहाँ से चलेगी गाँव में रहने से क्या फायदा। इस तरह देवकुमार स्वयं अपने से तर्क वितर्क कर रहा था। उसका सन्तुलन खो गया था और वह निश्चय नहीं कर पा रहा था कि क्या करे? वह अजीब उलझन में पड़ गया कि राधामोहन अपने मन में क्या कहेगे? मेरे प्रति उनकी भावनायें कितनी कटु हो जायेंगी कि मौके पर मैंने उनका साथ नहीं दिया यह सब मुझसे नहीं हो सकेगा। मैं शहर नहीं जाऊँगा और न गाँव में ही रहूँगा। दोनों जगह धर्म संकट है। शरबती गाँव में है ही। मैं कुछ दिन के लिये कहां चला जाऊँ। यही अच्छा है। वरना आफ़त में पड़ जाऊँगा। क्या गाँव, क्या शहर सभी से सम्बन्ध खराब हो जायेंगे और बदनामी होगी सो अलग।

सारी रात देवकुमार इसी भाँति अर्न्तद्वंद्व पड़ा रहा और प्रातः जब शौच के लिये घर से बाहर गया; फिर लौट कर नही आया।

यही देवकुमार ने उचित समझा।

## इक्यावन

सबेरे की धूप दीवालों पर छा कर धीरे-धीरे आँगन में उतरने लगी। देवकुमार वापस नहीं लौटा तो पहले शरबती और सुखरानी दोनों यही सोचती रहीं कि कोई मिलने जुलने वाला मिल गया होगा, वहीं बैठ गया होगा और रामकुमार ने तो अभी इस ओर ध्यान ही नहीं दिया था।

किन्तु जब दोपहर निकट आ गई और देवकुमार नहीं आया तो शरबती का माथा ठनका। उसने सास से कहा कि मालूम होता है माँ कि वे कानपुर चले गये। पिता जी को बुलाओ और उनसे कहो, पता करें, आखिर अब तक आये क्यों नहीं ?

सुखरानी के मन में भी यही भय समा रहा था कि मालूम होता है कि देवकुमार रूठकर चला गया। न जाने कल मुझे इतना गुस्सा क्यों आ गया, जो बातें मैंने उससे कहीं वही सावधानी से कहती तो वह मान भी लेता और यह नौबत न आती और जब सुखरानी पति के सामने पहुँची तो वे देखते ही पूछने लगे--"देव, नहीं दिखाई देता है, न जाने सबेरे-सबेरे कहाँ चला गया ?"

"यही मैं पूछने आ रही थी सबेरे दिशा-मैदान के लिये गया था अब तक नहीं लौटा, कहाँ रह गया ? तनिक देखो जाकर ?"

पत्नी का घबड़ाया हुआ स्वर सुनकर रामकुमार तत्क्षण ही उठकर बाहर चले गये और सुखरानी चौखट से लगी खड़ी अपने रूँठे हुये लाल को मनाने की बाट जोहने लगी। शरबती सास के पीछे खड़ी थी उसका चेहरा उतरा-उतरा सा था और लगता था कि अभी रो देगी।

लगभग दो घण्टे हैरान होकर रामकुमार घर चले आये। देवकुमार का पता नहीं चला; गाँव में चख-चख मच गई कि कल रात को देवकुमार गाँव आया था, मालूम होता है कि चारु डाक्टरनी के मामले को लेकर माँ-बाप से कुछ झगड़ा हुआ तभी वह नाराज होकर सबेरे ही शहर लौट गया। यह भी कला की अपनी अक्ल की शोहरत थी।

उस दिन रसोई बनी रखी रही। किसी ने कौर तक नहीं तोड़ा। रामकुमार कानपुर जाने की तैयारी करने लगे। वे पुत्र को समझा बुझाकर अपने साथ गाँव ले आना चाहते थे कि अभी फिलहाल के लिए वह एक महीने की छुट्टी ले ले और इस बीच गाँव में ही रहे। इससे उसकी और बहू की बदनामी तो बच जायेगी। कितना बुरा होता है बदनाम आदमी कि खुद तो डूबता ही है; लेकिन अपने साथ औरों को भी डुबा देता है। आज के दिन राधामोहन की मित्रता न होती दोनों घरों में आना जाना न होता तो गाँव में किसी को यह कहने का मौका नहीं मिलता कि देवकुमार और उसकी बहू ऐसे लोगों का साथ करते हैं, जो बहुत ही गये-बीते, दीन-ईमान के हैं, जिनका कोई धर्म नहीं, कोई चरित्र नहीं। जो शहर की हवा में पलते हैं और जहरीली साँसें छोड़ते हैं, जिससे बदनामी जन्म लेती है।

रास्ते भर रामकुमार इसी प्रकार की उधेड़बुन में लगे रहे और जब वे शहर पहुँचे तो देखा कि घर में ताला बन्द है और देवकुमार का कहीं पता नहीं। वे शर्म के मारे न तो विद्याधर के घर गये और न

राधामोहन के ही पास । चबूतरे पर बैठकर पुत्र के आने की प्रतीक्षा करने लगे । आधी रात हो गई उसके बाद वे झपके और फिर आँखें खोलीं तो पात्री के आकाश में सबेरे की सफेदी फूट रही थी और झिलमिल करता शुक्र-तारा अस्त होने की तैयारी कर रहा था । वे उठकर बैठे और निराशा की साँसें भरते हुये चबूतरे पर टहलने लगे । तभी थोड़ी देर बाद पड़ोस के एक सज्जन घर से झोला लेकर निकले शायद साग-सब्जी खरीदने जा रहे थे । रामकुमार ने उनसे पूछा "तो मालूम हुआ कि देवकुमार कल सबेरे हीं गांव से आ गया था । उसके बाद वह दिखाई नहीं दिया । और रात को घर में रोशनी भी नहीं जली ।

यह सुनकर रामकुमार दूनी चिन्ता में पड़ गये । वे सोचने लगे कि आखिर और कहाँ जायेगा देव, समझ में नहीं आता कि रात-भर वह कहाँ रहा ? दस बजे बैंक जाऊँ; क्योंकि वह ड्यूटी पर तो जायगा ही । अजीब लड़का है, भले के लिए समझाओ, उसे बुरा लगता है । यह नहीं जानता कि आज को तो लोग अभी यही कहते हैं कि गन्दी सोसाइटी के लोगों का उसका साथ है और कल को यह भी कहने लगेंगे कि चारु डाक्टरनी से उसका लगाव है तभी उसके पीछे-पीछे घूमता है ।

बैंक में जाते ही रामकुमार की राधामोहन से भेंट हुई तो उसने बताया कि देवकुमार मुझसे कहता था कि एक जरूरी काम है आज ही गाँव लौट जाना है । क्या पहुँचा नहीं ? आप उसे बुलाने आये हैं क्या ?"

रामकुमार ने वास्तविकता स्पष्ट नहीं की वे केवल हाँ द्योतक सिर हिलाकर रह गये । इसके बाद वे बैंक के जीने से नीचे उतर आये और वहीं खड़े होकर प्रतीक्षा करने लगे कि शायद देवकुमार आरहा हो । किन्तु जब काफी देर हो गई और वह नहीं आया तो वे फिर ऊपर गये और अबकी बार राधामोहन के पास न जाकर सीधे एजेन्ट के दफ्तर में जा पहुँचे । उसने बताया कि देवकुमार कल छुट्टी ले गया है । उसकी

आँतों में शिकायत है उसका इलाज कराने के लिये वह शहर से बाहर किसी दूसरी जगह गया है, अब ठीक होने पर ही आयेगा।

यह सुनते ही रामकुमार के होश हवास गुम हो गये। वे एजेन्ट से और कुछ नहीं पूछ सके। देर तक बुत बने वहीं खड़े रहे और फिर धीरे-धीरे नीचे उतर आये।

वह पूरा दिन भी रामकुमार का शहर में ही व्यतीत हुआ और रात को निराशा से भरे हुये वे गाँव को लौट गये और जब वहाँ पहुँचे, तो पत्नी और पुत्र-बधू को सारी बातें बताईं। उस समय घर में रुदन का व्यापार मच गया। शरबती और सुखरानी की ही भाँति बूढ़े बाप का भी हृदय कचोट उठा। बरोठे में जा, अपनी चारपाई पर बैठ, रामकुमार बच्चों की भाँति रो पड़े।

रात बरसात की थी। मेढक गा रहे थे और सर्वत्र झींगुरों की शहनाई बज रही थी। लेकिन रामकुमार के घर में मातम छा रहा था, जब कि दुनियाँ सो रही थी। प्रकृति के प्रहरी जागरूक थे और इस घर में सभी की आँखें आँसू बहा रही थीं।

शरबती की हालत बुरी थी, उसने रोते-रोते अपनी आँखें सुजा-लीं। मन ही मन वह कला को गाली देने लगी—आज यदि कला ने चारु की बदनामी न फैलायी होती तो यह आफत तो न आती। यह डायन न जाने किस जन्म के वैर साध रही है कि जब से मैं ब्याह कर इस घर में आई हूँ अपनी गिद्ध दृष्टि मुझ पर और मेरे परिवार पर गढ़ा रक्खी है—भगवान ऐसी डायन का सत्यानाश करे।

## वामन

चारु को अब अपनी भूल ज्ञात हो रही थी कि उसने डाक्टर हरीश को तलाक देकर अच्छा नहीं किया। वह हाथ मल–मलकर पछताया करती कि मैं कहीं की नहीं रही। दवाखाने में जाकर बैठती जरूर हूँ; लेकिन कितने मरीज आते हैं और प्रैक्टिस की जो हालत हो रही है वह मैं ही जानती हूँ। अच्छी अफ-वाह उड़ाई गई कि मैं बदचलन हूँ। इसीलिये डाक्टर हरीश को छोड़ दिया है। आजाद होकर रहने का लाँछन यह लग रहा है कि पेट में पाप की गठरी लादे घूम रही हूँ।

चारु की मनः स्थिति आजकल अच्छी नहीं थी। वह हमेशा खोई-खोई सी बनी रहती। देवकुमार के लिये जब उसने सुना कि उसी के पीछे वह माँ-बाप से लड़ा और नाराज होकर कहीं चला गया है तो उसे बहुत दुख हुआ। वह सोचने लगी कि आदमी कितनी जल्दी बदल जाता है। विद्याधर के परिवार के प्रति सदैव मेरी भावनायें उदार रहीं और कला उसके महत्व को न समझ मेरा जीवन बरबाद करने पर उतर आई। उसने मुझे बदनाम कर दिया। और यही

नहीं देवकुमार के पीछे भी वह हाथ धोकर पड़ गई; क्योंकि वह हमेशा मेरे घर का पक्ष लेता था। पता नहीं इस समय कहाँ होगा बेचारा ?

इधर चारु की यह स्थिति थी और दूसरी ओर राधामोहन तथा रेखा दोनों हैरान थे कि बिगड़ी परिस्थिति को किस प्रकार सम्भाला जाय। इसका केवल एक ही रास्ता है कि डाक्टर हरीश की खुशामद की जाय और चारु को उन्हीं के पास भेज दिया जाय। फिर न रहेगा बाँस और न बजेगी वंशी। जब चारु अपनी ससुराल चली जायेगी तो कहने वालों का मुँह अपने आप ही बन्द हो जायेगा। दम्पति ने सलाह की और एक रात के समय राधामोहन डाक्टर हरीश के घर जा पहुँचा।

उस समय हरीश भोजन से निवृत होकर बैठा अपने बदलू दादा के साथ शतरंज खेल रहा था। दोनों ने खेल की ओर से अपना ध्यान हटा लिया। बदलू ने उठकर राधामोहन को जलपान कराया और हरीश उससे इधर-उधर की बातें करने के बाद पूछने लगा—'आज इतने दिनों बाद कैसे भूल पड़े राधामोहन बाबू ?"

"जरूरत आदमी को खीच लाती है। मै तुमसे कुछ कहने आया हूँ हरीश। क्या मेरी बात सुनोगे ?" राधामोहन की वाणी में दीनता थी।

"जरूर सुनूंगा साहब ! कहिये क्या सेवा करूँ आपकी।"

हरीश की यह बात सुनकर राधामोहन ने उसके सामने अपना प्रस्ताव रक्खा। जिसे सुनते ही हरीश बोल उठा—"यह कार्य अब तो बिल्कुल असम्भव है; क्योंकि मैंने दूसरा ब्याह तय कर लिया है। इसी महीने में लगन है।"

अब राधामोहन के होश फाख्ता हो गये। वह घबड़ाहट के स्वर में पूछने लगा—"कहाँ हो रहा है ब्याह ?"

"आपके रिश्तेदार हैं वे। वे ही लखनऊ के सदाशिव बाबू। उन्हीं की लड़की है।"

अभी हरीश की बात समाप्त ही हुई थी कि राधामोहन बोल

उठा—"क्या कहा ? सदाशिव की पुत्री विभा से तुम्हारा ब्याह हो रहा है। बहुत ही धूर्त्त व्यक्ति है सदाशिव ! बाहर ही बाहर ब्याह तय कर गया और मुझसे मिला भी नहीं।"

डाक्टार हरीश को हँसी आ गई। वह कहने लगा—"अपना-अपना स्वार्थ सभी देखते हैं। जब चारु यह कहकर रोहन से विभा का सम्बन्ध विच्छेद करवा सकती है कि खान्दान अच्छा नहीं है। लड़की का बाप बदचलन है, यह बात तो उस दिन मुझे रोहन की बुआ कला से मालूम हुई कि रोहन का विवाह-विच्छेद कराने में चारु का हाथ था। तो फिर भला आप ही बताइये कि सदाशिव ने क्या गलत किया ? अपनी-अपनी लाज सभी बचाते हैं।"

राधामोहन को यह सुनकर बहुत आश्चर्य हुआ कि विभा का ब्याह भड़काने वाली चारु ही थी। फिर भी उसने डाक्टर हरीश की बहुत खुशामद की और गिड़गिड़ाकर बोला—"चारु को क्षमा कर दो हरीश ! अब वह तुम्हारी गाय बनकर रहेगी। मैं उसकी ओर से माफी माँगता हूँ। मेरी इज्जत में बट्टा लग रहा है, लाज बचालो हरीश।"

लेकिन हरीश पर राधामोहन की बातों का तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ा। राधामोहन देर तक उसकी मिन्नत करता रहा; किन्तु उसके कान पर जूँ भी नहीं रेंगी। तब विवश होकर उसने बदलू का पल्ला पकड़ा। मगर बदलू ने साफ जवाब दे दिया कि अब कुछ नहीं हो सकता राधामोहन बाबू। ब्याह कोई गुड़िया-गुड्डा का खेल नहीं। सदाशिव को हम लोग जवान दे चुके हैं।

इस प्रकार न बदलू पसीजा और न डाक्टर हरीश। हार मान कर राधामोहन घर लौट आया।

× × ×

रेवा ने जब हरीश के घर की सारी बातें सुनी तो वह बहुत घबड़ाई। उसने पति से कहा—"हरीश के ब्याह को रोकना होगा।

नहीं तो चारु का जीवन बरबाद हो जायगा। मैं जाऊँगी हरीश के पास और उसको समझाऊँगी।"

राधामोहन ने पत्नी को नहीं रोका। यद्यपि उसे यह आशा नहीं थी कि डाक्टर हरीश रेवा की बात मान लेगा; लेकिन फिर भी मना नहीं किया।

और दूसरे दिन प्रात: जब रेवा हरीश के घर गई तो उसने उसे भी वही जवाब दिया जो राधामोहन से कहा था।

रेवा और राधामोहन दोनों अपने प्रयत्न में असफल रहे। इससे चारु को बड़ी निराशा हुई। वह सोचने लगी कि यह अच्छा बदला लिया सदाशिव ने मुझसे और रोहन के घर वालों ने मेरे किये हुये अहसानों का बदला देने में कुछ भी उठा नहीं रक्खा। बात भइया को भी मालूम हो गई कि रोहन की सगाई मैंने ही वापस कराई थी। लेकिन अब भी समय है काम बन सकता है मुझे स्वयं जाना चाहिये हरीश के पास। शायद खोया प्यार मिल जाय और बदनामी का जनाज़ा उठ जाय।

इस निश्चय के सामने आते ही चारु के संतप्त हृदय को कुछ राहत मिली और वह इस पर विचार करने लगी कि पुराने दुश्मन भी जब बहुत दिनों बाद संयोगवश कहीं मिल जाते है तो उनकी आँखों में शील उतर आता है, फिर मेरा और हरीश का सम्बन्ध तो बहुत घना रह चुका है। मैं यह तय करके उसके पास जाऊँगी कि अब जिस घर में आ गई हूँ वहाँ से वापस नहीं जाऊँगी। फिर देखूँ वह मुझे कैसे घर के बाहर निकाल देगा। रह गई विभा के ब्याह की बात उसके लिये देखा जायेगा। रोहन के साथ तो होने से रहा; क्योंकि वहाँ पर कला की हुकूमत चलती है। वह कभी सहमत नहीं होगी। मुझे विभा से स्नेह है; लेकिन क्या करूँ उसके बाप को मैं इस जीवन में क्षमा नहीं करना चाहती। खैर फिर भी मेरी कोशिश यही रहेगी कि किसी अच्छी जगह उसका ब्याह हो।

चारु ने अपना निश्चय रेवा को बतलाया। वह उसके समर्थन में उसी क्षण बोल उठी—"चारु पति-पत्नी के झगड़े कोई नहीं निपटा सकता ये तो आपस में ही सुलझते हैं। मुझे पूरा-पूरा भरोसा है कि तुम्हारे जाने से हरीश मान जायेगा।"

रेवा की बातों से चारु को अतीव सन्तोष की अनुभूति हुई और उसका अन्तर्मन कहने लगा कि चारु तुम फिर रानी होगी और हरीश राजा।

## तिरेपन

दूसरे दिन गजरदम ही चारु अटैची लेकर घर से बाहर निकल पड़ी। और जब वह हरीश के घर पहुँची तो बूढ़ा बदलू नल पर बैठा कुल्ला कर रहा था। हरीश अभी सोकर नहीं उठा था। आँगन में बिछी मशहरी पर मच्छरदानी लगी थी। चारु ने देखा कि सोने की स्थिति में भी ऐसा लगता कि वह मुस्करा रहा है।

बदलू चारु के निकट आ खड़ा हुआ और मार्मिकता के साथ धीरे से बोला—"कैसे भूल पड़ीं आज रानी बहू ?"

चारु रुआसी हो आई। वह आर्द्र कण्ठ से बोली—"दादा ! क्षमा कर दो मुझे। अपनी भूल पर मुझे पछतावा है।"

बदलू हँसा और कहने लगा—"रानी बहू जब ऊँट पहाड़ के नीचे जाता है तब उसे पता चलता है कि हाँ मुझसे भी कोई ऊँचा है। जो कुछ हुआ वह तुम जानती ही हो और जो होने जा रहा है शायद वह भी सुन चुकी होंगी। मुझे बीच में मत डालो। मैं कुछ नहीं जानता। पहले तो तुमने मेरी बात मानी

नहीं और अब क्या हो सकता है। तुम जानो तुम्हारा काम। बबुआ से ही निपटो-सुलझो मैं............।"

तभी सहसा हरीश की आँख खुल गई। अँगड़ाई लेता हुआ वह उठकर बैठ गया और पूछने लगा—"क्या बात है दादा ?"

यह कहते क्षण उसकी दृष्टि अचानक चारु पर पड़ गई। वह चौंक उठा। बदलू मुस्कराता हुआ वहाँ से चला गया। हरीश ने चारु से रुख नहीं मिलाया। वह लैटरिन ( संडास ) चला गया और बदलू काम में लगा रहा।

चारु को इस समय ऐसी कटु अनुभूति हो रही थी कि जिसका कुछ नाम नहीं। वह चुपचाप आँगन में पड़ी एक कुर्सी पर बैठ गई। और सोचने लगी कि दिन हमेशा एक जैसे नहीं रहते। एक समय था कि इस घर में मेरा मुँह ही मुँह देखा जाता था और आज उपेक्षा हो रही है। मैंने अपने पत्नीगत अधिकारों का दुरुपयोग किया, उनकी हत्या कर डाली। यह उसी का परिणाम है।

चारु बैठी अपने अतीत को याद कर रही थी और वर्तमान से जब उसकी तुलना करती तो पाती कि वह एक अंधे कुयें में गिर पड़ी है, जिससे बाहर निकलने के उसके पास कोई साधन नहीं हैं। हरीश शौचादि से निवृत्त हो अपने कमरे में आ बैठ गया। बदलू नाश्ता तैयार करने में लगा था।

चारु हरीश के निकट आकर बैठ गई और छलछलाई आँखों से उसकी ओर देखती हुई अपराधी की भाँति पराजित स्वर में बोली—"मुझे क्षमा कर दो। मुझ से भूल हुई है।" यह कहते-कहते उसकी आँखों से आँसू बहने लगे। जिन्हें धोती के एक छोर से पोंछने का वह निष्फल प्रयास करने लगी।

हरीश कुछ नहीं बोला। वह तना बैठा रहा।

"मैं यह तय करके आई हूँ कि यहाँ आ गई हूँ तो फिर वापस

जाने के लिये नहीं। इस घर से अब मेरी अर्थी ही निकलेगी। मैं……।"

चारु अभी इतना ही कह पाई थी कि हरीश बोल उठा—"ताज्जुब है कि सिद्धान्तों की लड़ाई लड़ने वाली एक लेडीडाक्टर ने आज पुरानी रूढ़ि का चोगा कैसे पहन लिया? मुझसे कोई आशा न रक्खो चारु। जैसे आई हो वैसे ही वापस चली जाओ। मुझे हैरान न करो।"

'रहम करो। तरस खाओ। मैं तुम्हारे पाँव पड़ती हूँ। इस समय मेरी लाज की नाव डूब रही है। मुझे उबार लो।" कहकर चारु भर-भरा कर हरीश के पैरों पर गिर पड़ी और दोनों हाथों से उसके पाँव पकड़ लिये।

हरीश उठकर खड़ा हो गया। वह पैर छुडाता हुआ बोला—"चारु तुम्हारे इस त्रिया-चरित्र का मुझ पर कोई असर नहीं होगा। अब हम लोगों के रास्ते अलग-अलग हो चुके हैं। यही ठीक है। मुझे मजबूर न करो। तुमने मेरी इज्जत को कोई चीज नहीं समझा। इसीलिये तुम्हारे पड़ोस से डिस्पेंसरी हटाकर मुझे यहाँ खोलनी पड़ी। और आज जब तुम्हारे सिर पर भीग रही है तो मेरे पास आई हो। मैंने सदाशिव से बात हारी है। अब तुम्हारे लिये कोई भी सन्धि नही रह गई चारु। जाओ अपना काम देखो।"

आँसू पोंछती हुई चारु उठकर बैठ गई। बदलू नाश्ता ले आया और ट्रे मेज पर रख जल्दी से जा रेडियो खोल दिया।

"रेडियो बन्द कर दो दादा।" हरीश ने तत्काल ही आदेश दे डाला; क्योंकि इस समय उसका मन अच्छा नहीं था।

रेडियो बन्द हो गया और बदलू हरीश के निकट आ खड़ा हो गया। नाश्ता सामने रक्खा था। हरीश उसमें से कुछ छुये इसके पूर्व ऊबकर चारु से कहने लगा—"हाँ तुम बोलो चारु अब क्यों बैठी हो? मुझे जो कहना था सो कह दिया। डिस्पेंसरी जाने का समय हो रहा है। जल्दी…………।"

"नाश्ता करो। दवाखाने जाओ। मैं तुम्हें मना करती हूँ क्या ?" चारु बीच में बोल उठी। ।

"और तुम्हें अपनी डिस्पेंसरी नहीं जाना है ? क्या यहीं बैठी रहोगी।" हरीश ने छूटते ही प्रश्न किया।

चारु अधिकार जताती हुई नारी सलभ संकोच के साथ कहने लगी—"मैं अपने घर में आगई हूँ। यहाँ से मुझे कहीं नहीं जाना है। तुम धक्के देकर निकालो तो भी मैं नहीं जाऊँगी।"

"लेकिन यह जबरदस्ती नहीं चलेगी चारु। मैं तुमसे तंग आगया हूँ। तुम्हें भेज कर ही मैं कहीं जाऊँगा। उठो अटैची सम्भालो। तुम जैसी स्वेच्छाचारिता के लिये मेरे घर में जगह नहीं है।"

हरीश की यह बात सुन कर चारु के थमे हुये आँसू फिर बरस पड़े। वह रोते-रोते बोली—"मैं तुम्हारी दासी हूँ। मुझे अपने से दूर न करो। नहीं तो समाज के काले नाग मुझे डस लेंगे। मैं अपने किये पर बहुत शर्मिन्दा हूँ।"

हरीश का चेहरा क्रोध से तमतमा रहा था। चारु रोती हुई बदलू की ओर बढ़ी और उसके वक्ष में सिर गढ़ा कर बोली—"दादा ! अब मैं जिन्दा रहना नहीं चाहती हूँ। मेरा गला दाब दो मुझे मार डालो। मैं जान पर खेल जाऊँगी; लेकिन यहाँ से जाऊँगी नहीं।"

बूढा हृदय पसीज उठा। बदलू चारु का सिर ऊपर उठा अपने गमछे से उसके आँसू पोंछता हुआ बोला—"रानी बहू। रोओ न। मेरी बात तो सुनो। मैं............।,'

"दादा ! मेरे बापू।" कह कर चारु बिलख-बिलख कर रोने लगी।

बदलू के भी आँसू आगये। वह रोते-रोते बोला—"रानी बहू, मैं जानता हूँ कि तुम अपनी गलती पर पछता रही हो, लेकिन क्या करूँ मैंने बाप की तरह पाला है बबुआ को इसलिये उसका मन रखना ही

पड़ेगा। मेरे पीछे न पड़ो रानी मैं घर का नौकर हूँ, मालिक तुम्हारे सामने खड़े हैं मैं······।"

चारु फूट-फूट कर रोने लगी और बदलू से बोली—"मैं फांसी लगा लूँगी दादा! लेकिन यहाँ से जाऊँगी नहीं। मुझे मार डालो और विभा के साथ अपने बबुआ का विवाह करो यह मुझे मंजूर है। लेकिन मेरे जीते जी यह कभी नहीं हो सकेगा- जो मुझे मौसी कहती है वह मेरी सौत बन कर आये।"

नाश्ते की चाय.केक और पेस्ट्री सब ठण्डी हो गई हरीश बारबार रिस्ट वाच देखता था कि डिस्पेंसरी जाने के लिए देर हो रही है लेकिन; चारु का मामला सुलझना नजर नहीं आरहा था। खीझकर वह बिना नाश्ता किये ही उठ खड़ा हुआ और बदलू दादा की ओर उन्मुख हो, क्रोधित स्वर में कहने लगा—"दादा! तुम यह नाटक खेलो और त्रिया चरित्र देखो मैं जाता हूँ मुझे हैरान मत करना।"
बदलू के प्रज्ञा-चक्षु खुल गये थे। वह अधीर होकर बोला—"न जाओ बबुआ, मेरी बात सुनो अगर सुबह का भूला शाम को घर आजाय तो उसे भूला न कह कर क्षमा कर देना चाहिये। रानी बहू ने बाहर की दुनियाँ देखली है। अपने-पराये कैसे होते हैं यह जान लिया है मैं कहता हूँ कि अब उनको अपने पास रखो; क्योंकि अपना-अपना ही होता है और गैर दूसरे ही माने रखता है। तुम दवाखाने जाओ, लौट कर जब आओगे तो बातें होंगी।"

बदलू की बातें सुनकर हरीश चला गया और वह चारु को समझाता रहा। उसकी भूलें उसे महसूस कराता रहा।

× × ×

जब दोपहर हो गई और चारु घर नहीं पहुंची तो राधामोहन और रेवा एक साथ ही घर से निकल पड़े। दम्पति जब हरीश के घर

पहुँचे तो रसोई में बैठी चारु खाना परोस रही थी और हरीश खा रहा था और बूढ़ा बदलू अपने मालिक बबुआ पर पंखा डुला रहा था ।

राधामोहन और रेवा दोनों सामने पड़े कोच पर बैठ गये । भोजन से निवृत्त होते ही हरीश उनके पास आया और चारु शरमाती, सकुचती तथा संकोच से गढ़ती हुई अपनी भाभी के निकट आकर बैठ गई और धीरे-धीरे कहने लगी—"भाभी ! अब हम लोगों को सबसे पहले यह सोचना है कि साँप भी न मरे और न लाठी टूटे ! विभा का ब्याह पहले रोहन से तय हुआ । मैंने अपने स्वार्थवश उसमें अड़ंगा डाला । बात बिगड़ गई और अब समस्या यह सामने है कि इसी मास इसी लगन में उसका ब्याह हो जाना चाहिये ।"

बदलू हाथ में चाँदी की तश्तरी लिये खड़ा था उसमें सौंफ, इलायची और पान के बीड़े सज्जित थे, साथ ही मुखबिलास की एक डिबिया रखी थी । हरीश ने उसके हाथ से तश्तरी ले मेज पर रख दी और राधामोहन की ओर उन्मुख हो सधी आवाज में कहने लगा—"राधामोहन बाबू ! मैंने आपका बहुत लिहाज किया, परिस्थिति को निकट से समझा । अतः मुझे अपना विचार बदलना पड़ा । मेरे एक मित्र हैं, डाक्टर त्रिपाठी सहारनपुर में प्रैक्टिस करते हैं, वे विधुर हैं और स्वभाव के बहुत ही सरल । मैं सदाशिव को लेकर उनके पास जाऊँगा और यह निश्चित है कि इसी महीने और इसी लगन में विभा का ब्याह कार्य सम्पन्न हो जायेगा ।"

"इससे अच्छा और क्या है ?" राधामोहन ने इस प्रकार हरीश का समर्थन किया और रेवा भी उसी धार में बहने लगी । वह बोली—"डाक्टर साहब ! आपका सोचना उचित है, सदाशिव भी कोई गैर नहीं हमारे अपने ही हैं । यों तो घात-प्रतिघात जीवन में चलते ही रहते हैं, बिगड़ी बन जाय, सारे पहलू झँप जाय मैं यही चाहती हूं । बहुत सुन्दर है, आप ऐसा ही कीजिए ।"

विग्रह सन्धि में बदल गया था सुबह की भूली चारु घर आगई थी। रेवा और राधामोहन को अतीव सन्तोष था कि बिगड़ी बन गई है। अब बदनामी सबका पानी भरेगी, विद्याधर की बहन कला जिसने यह विष वमन किया था उसका मुँह अपने आप ही बन्द हो जायगा। सबमें वार्ता चल रही थी और बदलू अपने नित्य-कर्म में व्यस्त था। जब तीसरे पहर की बेला हुई रेवा और राधामोहन जाने का आयोजन बनाने लगे, तो बदलू उन्हें रोकता हुआ सस्नेह आग्रहपूर्वक कहने लगा – "आज हमारी रानी बहू घर वापस आगई हैं कितनी खुशी का दिन है यह। इसीलिये मैंने केसर की खीर बनाई है राधामोहन बाबू, चलिये जब सब लोग एक साथ बैठ कर खायेंगे तो मेरी बूढ़ी आत्मा को बड़ा सन्तोष मिलेगा।"

राधामोहन ने रेवा की ओर देखा। उसकी दृष्टि में समर्थन था। चारु हरीश को कनखियों से देख रही थी और आज उसे फिर याद आरहा था कि विवाह के पहले गंगा तट पर चांदनी रात में एक दिन हरीश ने मुझसे कहा था कि चारु आज का दिन सोने का था और रात चाँदी की। सो सचमुच यह स्वर्णावसर था। उसने खोया प्यार प्राप्त कर लिया था। वह सम्राज्ञी बन गई थी अपने प्रियतम की जो बादशाहों का भी बादशाह था, क्योंकि उसका कलेजा हाथ भर का था।

सबने एक साथ भोजन किया। फिर जब रेवा और राधामोहन अपने घर जाने लगे, तो उस समय चारु एक डिलीवरी केस में व्यस्त होने जा रही थी और हरीश बदलू से कह रहा था—"जल्दी करो दादा! लच्छीराम सिंहानिया के यहाँ जाना था मैं सीधा वहीं जारहा हूँ। तुम तनिक दवाखाने चले जाओ, तब तक मैं आता हूँ।"

## चौवन

जब कर्णधार ही चला गया था तो नाव क्या करती। वह हवा के रुख के साथ पानी में तैर रही थी। सुखरानी ने कई दिन तक कौर नहीं तोड़ा जब से उसका लाल रूठ गया था और रामकुमार भी लम्बी-लम्बी साँसें लेकर रह जाते कि अचानक यह क्या हो गया ? उनका लाड़ला देवकुमार कहाँ चला गया ? माँ-बाप से अधिक अस्तित्व था शरबती की वेदना का। वह मन ही मन रोती थी और पति के लौट आने के लिये अहर्निश मंगल-कामना करती रहती।

लेकिन यह अमावस की रात थी, जिसमें चाँद का निकलना वर्जित था। देवकुमार का पता नहीं चला। सबकी कोशिशें बेकार गईं; किन्तु वह न जाने कहाँ खो गया था।

अषाढ़ बीत गया। इस बीच रामकुमार कई बार शहर आये, बैंक में पता किया; लेकिन सब व्यर्थ रहा। देवकुमार का पता नहीं चला। जब रामकुमार की भेंट राधामोहन से हुई तो उसने बतलाया कि चारु को डाक्टर हरीश ने पुनः पत्नी-स्वरूप स्वीकार

कर लिया है। आजकल वह अपनी ससुराल में रहती है। शरबती ससुर के मुँह से यह सुनकर बहुत प्रसन्न हुई।

सुखरानी की यह स्थिति थी कि देवकुमार के चले जाने के कारण कई दिन तक उसने कुछ नहीं खाया। फिर कलेजे पर पत्थर रख वह पेट भरने के लिये विवश हो गई। उसकी खाँसी आजकल बहुत बढ़ गई थी। रामकुमार और शरबती जब दोनों उसे दवाखाने के लिये जोर देते तो वह काँखकर जवाब देती कि मेरी दवा देवकुमार है। उसको देखते ही खाँसी कूँच कर जायेगी।

दिन पर दिन बीतते गये। रोहन का ब्याह अभी हुआ नहीं था; लेकिन अगली सहालगों के लिये तय हो गया था। लड़की किसी कस्बे की थी, जिसको कला देख आई थी। कला के द्वारा ही शरबती और सुखरानी को ज्ञात हुआ कि जिस लड़की का ब्याह पहले रोहन से हो रहा था, फिर डाक्टर हरीश के साथ तय हुआ। और डाक्टर हरीश ने जब चारु को अपने घर में रख लिया तो अब उसका ब्याह सहारनपुर में एक डाक्टर के साथ उसने करवा दिया।

सावन भी जब आधा बीत चला और देवकुमार का कुछ पता नहीं चला तो एक दिन रामकुमार शहर गये। दो महीने का किराया देकर उन्होंने घर का ताला खोल दिया और सामान गाँव उठा लाये।

शरबती उस दिन खूब रोई। वह सारे दिन सोचती रही कि विधि के विधान को कोई नहीं जानता। मुझे क्या पता था कि वे ( देव-कुमार ) चले जायेंगे और एक दिन शहर का मकान भी खाली कर दिया जायेगा। सब समय की बलिहारी है। वाह री दुनियाँ तेरे करिश्मे खूब देख लिये। शहर का समाज मुझसे बिल्कुल छूट गया। सबकी बिगड़ी बन गई मेरा ही घर बरबाद होना था सो हो रहा है। वे चले गये। बूढ़े माँ-बाप और मेरी ओर से एकदम आँखें ही फेर ली।

अब शरबती सूखकर काँटा हो गई थी। ऐसा लगता कि उसकी देह में खून ही नही रह गया है।

× × ×

जब कभी डाक्टर हरीश, चारु, रेवा और राधामोहन एक जगह इकट्ठे होते तो देवकुमार का प्रसंग जरूर चलता। सब लोग अफ़सोस जाहिर करके रह जाते। रेवा शरबती की बहुत याद करती। वह उसके प्रति अक्सर सोचा करती कि बेचारी का जीवन काँटों से भर गया। देवकुमार मालूम होता है कि कहीं भटक गया। हो सकता है किसी दूसरे शहर में उसने नौकरी कर ली हो। एक दिन बातों ही बातों में रेवा ने चारु से कहा कि देवकुमार के गाँव जाने के लिये मेरी बड़ी इच्छा हो रही है। सोचती हूँ कि इस बहाने शरबती को भी देख आऊँगी और दुनियांदारी भी हो जायेगी।

चारु को रेवा की बात पसंद आई। उसने उसका पूरा-पूरा समर्थन किया। डाक्टर हरीश और राधामोहन ने भी मोतीपुर जाने की योजना बना ली।

एक दिन प्रातः डाक्टर हरीश की कार पर बैठ सब लोग राज-कुमार के घर जा पहुँचे। चारु और रेवा भीतर शरबती के पास चली गई। हरीश राधामोहन सहित बाहर बैठ गया रामकुमार के पास।

शरबती ने रो-रो कर चारु और रेवा को बतलाया कि उसकी सास सुखरानी की किन दारुण परिस्थितियों में मृत्यु हुई। मरते दम तक वह बार-बार दरवाजे की ओर देखती रही कि शायद उसका पुत्र आ जाय। पहले जब खाँसी का बहुत जोर बढ़ा तो दिन रात बेटा-बेटा कह-कर उसकी याद किया करती। उसके बाद साँस उखड़ने और दम फूलने लगी। वह बहुत हैरान हो उठी। गाँव के वैद्य का इलाज चला। हालत अधिक खराब होने पर पड़ोस के कस्बे से डाक्टर भी बुलाया गया। लेकिन कोई लाभ नहीं हुआ वह मृत्यु के मुँह में चली गई।

शरबती ने और बतलाया कि बीमार तो वह रहती ही थी। इस पर पिछले महीनों में खूब कसकर मांदी हुई। बीमारी की देह थी उस पर दिन-रात रोना और मारे दुख के खाना न खाना इन सब बातों को लेकर श्वांस ने फिर घर दबाया और वह दुनियाँ से उठ गई। मरते समय उसकी यह स्थिति थी कि दोनों आँखों से आँसू बह रहे थे। गले में कफ रुँध गया जिससे वह बोलने से असमर्थ हो गई। बलगम गले मे घुर्र-घुर्र बजता तो बड़ा भयानक लगता। अन्त समय दाँत भी भिच गये। होंठ बार-बार हिलते शायद वह अपने लड़के का नाम तब भी रट रही थी जिसकी भाषा मूक थी। बहुत खराब मौसम था उस दिन। मूसलाधार पानी बरस रहा था। रात इतनी अँधेरी थी कि हाथ को हाथ नहीं सुझाई देता। बाहर कुत्तों का भौंकना और रोना सुन घर का कुत्ता झब्बू भी रोने लगा। हवा इतनी जोर से चल रही थी जैसे आँधी।

इसके आगे शरबती कहने लगी कि मैंने झब्बू को पीटा। वह कूँ-कूँ करता हुआ बरोठे में भाग गया और तनिक देर बाद फिर रोने लगा। आधी रात का समय था। माँ की आँखें किवाड़ों की ओर देख रही थीं। वे इतनी अशक्त हो चुकी थीं कि हाथ-पैर भी नहीं हिला डुला पातीं। हवा से किवाड़ें आपस में टकराकर बार-बार बज उठते। तब उनकी दृष्टि उनपर स्थिर होकर रह जाती। आखिर पिताजी का मन नही माना। उन्होंने किवाड़ें खोल दिये। हवा कमरे में आकर भर गई। लालटेन लुपलुपाकर बुझ गई और जब दुबारा मैंने रोशनी जलाई तो देखा माँ दुनियाँ से जा चुकी थीं। उनकी आँखें खुली की खुली ही रह गई और प्राण-पखेरू उड़ गये थे। मैं उनकी छाती पर सिर पीट-पीटकर रोने लगी। पिताजी ने उनकी खुली पलकें बन्द कर दीं और मुँह पर चादर डाल दी।

रेवा के आँसू आ गये और चारु भी शरबती की बातें सुनकर

रो दी। बाहर राधामोहन और हरीश ने जब रामकुमार के मुँह से ये सारी बातें सुनीं तो वे समवेदना से भर आये।

× × ×

उसी दिन साँझ होते-होते हरीश की मोटर मोतीपुर गाँव से शहर आ गई। जब सब लोग नीचे उतरे तो राधामोहन के मुँह से बर-बस ही निकल गया—"काश! आज के दिन मैं अपने मित्र देवकुमार के किसी काम आ सका होता। उसकी तो दुनियाँ ही बदल गई, घर बर-बाद हो गया।"

यह सुन चारु ने एक लम्बी साँस ली, रेवा उदास मन नीले शून्य आकाश की ओर देखने लगी और डाक्टर हरीश भी एक दीर्घ उच्छ्वास लेकर रह गया।

# पचपन

जिस दिन देवकुमार गाँव से लौटा उसी दोपहर को उसने शहर छोड़ दिया। अनिश्चित योजना और अनजानी मंजिल पर चल पड़ा स्टेशन आते ही एका-एक उसके मन ने कहा कि दूर, यहाँ से बहुत दूर चले जाना चाहिये, जहाँ सभी कुछ नया हो, अनजाना हो और कोई भी लिप्सा और लगाव का वातावरण न हो। इस तरह सोचता विचारता वह बनारस का टिकट ले बैठा लेकिन जब ट्रेन पर सवार हुआ और इलाहाबाद जंकशन के बाद फाफामऊ स्टेशन पड़ा, तो वहीं उतर गया।

वह दिन बीत गया और रातको उसका बसेरा एक मछुवे के दरवाजे पर हुआ। प्रातः सूर्य की प्रथम किरण फूटते ही न जाने उसे क्या सनक सूझी कि वह सीधा पैदल ही त्रिवेणी की ओर चल दिया। संगम नहाकर फिर उसने शहर की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखा। किले के ठीक सामने झूँसी की ओर उसके पाँव बढ़ने लगे। यह स्थान उसे रुचिकर नहीं प्रतीत हुआ। अतः मंजिल बढ़ती गई और वह चलता गया।

देवकुमार अपने साथ अपनी संचित पूंजो लेकर चला था; क्योंकि महीने दो महीने बाहर रहने की योजना थी। कुल मिला कर इस समय उसके पास लगभग सौ-सौ के पन्द्रह नोट थे। मतलब यह कि उस समय जो कुछ भी नकद था, वह सब ले आया था। वह विन्ध्याचल क्षेत्र में दस-पन्द्रह दिन इधर-उधर भटकता रहा। फिर मिर्जापुर होता हुआ बनारस पहुंचा।

शंकर जी की नगरी काशी में देवकुमार का मन लग गया। उसने दशाश्वमेध घाट के निकट एक कमरा किराये पर ले लिया और अपना अस्त-व्यस्त जीवन व्यतीत करता हुआ सोचने लगा, कि स्त्री की जाति पहचानी नहीं जाती है कि वह कितनी कोमल है और कितनी कठोर! माँ को मैंने सरला के रूप में पाया था, उनमें इतना क्रोध! यह सब क्या है, मनुष्य का स्वभाव कभी नहीं बदलता यह सत्य है; लेकिन विचार उसके मानस जगत में तैरते रहते हैं तभी वे उछलते है; तभी डूबते हैं। और विचारों के मंथन में रस की सृष्टि होती है और विष की भी। एक स्थिति वह आती है कि रोता हुआ आदमी हँस देता है और दूसरी में छींकते ही उसकी नाक काट ली जाती है। तभी वह बदलता है, गुस्सा करता है, रोता और चिल्लाता है। माँ का कोई दोष नहीं। कला का जादू उनके सिर पर चढ़ कर बोल रहा था। मैंने कितना समझाया शरबती ने भी बहुत कहा; लेकिन उनका भ्रम विश्वास नहीं बन पाया। कभी-कभी भ्रम के वशीभूत् हो मनुष्य अपने मन में एक ग्रंथि पाल लेता है जो जिन्दगी में मरने और मिटने की समस्या बन जाती है। न जाने कैसा है मेरा जीवन पत्नी के पीछे गाँव के समाज में उपहास हुआ और शहर में भी मैं उसके कार्यकलापों से सन्तुष्ट नहीं रह सका। चारु की झूठी बदनामी द्रौपदी का चीर बन गई। वह बढ़ती गई और अन्त में मुझे उस पथ पर ला खड़ा कर दिया जिसका न आदि है और न अन्त!

देवकुमार जब भी फुरसत में होता तो वह पिछली बातें सोचा करता और अतीत के चलचित्र उसकी आँखों के सामने आने लगते । दिन भर की बेकारी, अकेला और एकाकीपन उसे धीरे-धीरे अब बहुत खलने लगा था । अतः उसने मन बहलाव का एक साधन ढूंढ़ लिया । नौकरी को वह दासता का रूप देता था । उसके लिये मन नहीं हुआ । वह एक टाइप मशीन खरीद कर कचहरी पर बैठने लगा और इस तरह अब वह जितना कमाता था, उससे बहुत कम खर्च करता था ।

इस बीच उसने घर की खबर बिलकुल नहीं ली पत्र लिखने की फिर बात ही पैदा नहीं होती थी । बनारस नगर उसे बहुत आकर्षक लगता था । यही कारण था कि सन्ध्या समय गंगा स्नान कर विश्वनाथ महादेव के दर्शन कर, जब वह गादोलिया के चौराहे पर पहुँचता तो उसे लगता कि शहर निखर रहा है वातावरण मुखरित है और जन कोलाहल इस बात का प्रतीक है, कि यह जगह कितनी गुलजार है । तब ज्ञान-वापी और चौक होता हुआ वह बुलानाला की ओर चल देता । यहीं कम्पनी बाग था । इतना रमणीक, इतना सुन्दर कि चांदनी रात में. उसके बीचों बीच स्थित जलाशय में, जब चाँद का प्रतिबिम्ब फूल की थाली की भांति लरजता तो लगता कि बाग हँस रहा है और दिन में रंगीन सुगन्धितपूर्ण पुष्पों में मन लगता था और जगह-जगह बने कुञ्ज आने-जाने वालों का विश्राम-स्थल बने रहते । तब कहना पड़ जाता कि बाग सुखदायी है । देवकुमार उसमें जाकर बैठ जाता । घण्टों बीत जाते और वह उठने का नाम ही नहीं लेता ।

इस तरह देवकुमार का जीवन व्यतीत हो रहा था । अषाढ़ में उसने घर छोड़ा था और अब क्वार बीत कर कार्तिक का कृष्ण पक्ष चल रहा था । आदमी चाहे जितना निर्मोही बनना चाहे; लेकिन अपनत्व उसे कचोटता जरूर है । अपने पराये होजाते हैं; फिर भी उनकी याद आती है । माँ-बाप यदि श्रद्धा के प्रतीक हैं तो पत्नी प्यार की, देवकुमार का

मन अब धीरे-धीरे बनारस से उखड़ने लगा था। अब वह सोचने लगा था कि क्यों न पिताजी, माँ और शरबती को यहीं बुला लूँ। दिन भर में मैं तीन-चार रुपये कमा लेता हूँ नौकरी की अपेक्षा अधिक स्वतन्त्र हूँ। कानपुर से कोई मतलब नहीं और न कोई प्रयोजन रह जायेगा गाँव से ही जब सब लोग यहाँ चले आयेंगे। पिताजी को एक पत्र लिख दूँ वे सबको लेकर यहाँ चले आयेंगे।

किन्तु देवकुमार ऐसा नहीं कर सका। अब एकान्त से ऊब गया था और एकाकीपन उसे बहुत खल रहा था। आखिर एक दिन घर का ताला बन्द कर वह स्वयं घर की ओर चल पड़ा कि गाँव से पिताजी माँ और शरबती को यहीं लिवा लाऊँगा फिर जीवन शान्तिपूर्वक व्यतीत होगा। न कोई झगड़ा रहेगा न झँझट।

इस आधार पर जब देवकुमार अपनी मंजिल तय करता हुआ गाँव पहुँचा तो वहाँ का विचित्र दृश्य देख कर उसके रोंगटे खड़े होगये। श्वेत, नैनसुख की लुँगी बाँधे और श्वेत परिधान ओढ़े मुण्डित सिर रामकुमार बरोठे में अकेले बैठे थे। चटाई ही उनका आसन थी और वे ठुड्डी पर हाथ रखे पता नहीं क्या सोच रहे थे। देवकुमार उनके सामने पहुंचा। वह उनके पैर छूने के लिये आगे बढ़ा ही था कि वे बोल उठे –'मुझे मत छुओ बेटा ! मैं दाग देकर बैठा हूँ, अब आये हो, जब तुम्हारी माँ तुम्हारी याद करते-करते यमपुर पहुँच गई और कल खाना बनाते समय बहू के कपड़ों में आग लग गई। यह जल-भुन कर खाक होगई मैं कुछ भी नहीं कर सका। देवी चली गई, और तुम इतने निष्ठुर निकले, कि अब आये हो ?"

देवकुमार भौचक्का सा हो बाप की ओर देखने लगा। उसने पूछा—"क्या कहा पिताजी ? माँ नही रहीं और आपकी बहू जल कर मर गई ? यह सब हो जायगा मैं नहीं जानता था। आप.........।"

"देवकुमार अब अपना घर सम्हालो मुझे छुट्टी दो। शहर का मकान मैंने खाली कर दिया है। गाँव में ही रहो; क्योंकि मेरे बुढ़ापे का सहारा अब तुम्हीं हो ?"

बाप की यह बात सुनकर देवकुमार उनका मुँह देखने लगा। फिर न जाने क्या सोचकर वह खूब जोर से हँसा और हँसते हँसते कहने लगा—"पिताजी ! शरबती मरी नहीं जिन्दा होगई है। माँ अमर होगई हैं जानता हूँ कि वे मेरी राह क्यों नहीं देख सकी ? शरबती पर दैवी कोप क्यों फट पड़ा ? क्योंकि दुनियाँ बहुत बेरहम है। यहाँ सच्चाई कुचली और पीसी जाती है और बेईमानी का ढोंग रचने वाला ही महान् कहा जाता है। काश ! मैं पहले सम्हल गया होता तो ये दोनों दुर्घटनायें न होतीं। इस चुड़ैल कला ने ही मेरा सत्यानाश किया है, अभी जाकर मैं उसका गला दबाता हूँ। दुष्टा ने ऐसा दाव खेला कि माँ चली गई, शरबती दुनियाँ से उठ गई; मेरा जीवन सूना हो गया। मैं उसका गला घोंट कर ही रहूँगा, पिताजी ! अभी जाता हूँ।"

यह कहता हुआ देवकुमार, कला के घर की ओर भागा। रामकुमार उसके पीछे दौड़े, किन्तु उसकी गति में इतना वेग था कि वह तीर की भाँति कला के घर पहुँच गया। उस समय आँगन में बैठी कला खजूर के पंखे पर बड़ियाँ चुआ रही थी। देवकुमार को देखते ही आश्चर्यपूर्वक बोल उठी—"अरे देव ! कहाँ चले गये थे तुम ? बहुत देर कर दी आने में भइया ! चाची तुम्हारी याद में तड़फ-तड़फ कर मर गई और बेचारी बहू की मौत ऐसी बुरी हुई कि वह न किसी से कुछ कह सकी और न सुन सकी। कहाँ चले गये थे तुम ?"

"मैं ! कला दिदिया, मुझसे पूछती हो, जहन्नुम में चला गया था और अब प्रेत बनकर तुम्हारी खबर लेने आया हूँ। नीच, दुष्टा, चाण्डालिन तूने मेरा घर बरबाद कर दिया, मैं तुझे जिन्दा नहीं छोड़ूँगा।" यह कहता हुआ आक्रोश में भरा देवकुमार कला की ओर

बढ़ आया और दोनों हाथों से उसका गला दबाता हुआ बोला—"तू ही कहती थी न कि मेरी बहू घुमक्कड़ है। मैं बदचलन हूं! तू कौन सा मुँह में सोना डाले है यह तो पहले बता? नीच कमीनी, तेरा माँस तो कौए और कुत्ते भी नहीं खायेंगे!"

कला की घिघ्घी बँध गई। उसका गला रुकने लगा। गंगाधर ( यह कौतुक देखकर ताज्जुब हुआ। वे लपक कर देवकुमार के पास आये; लेकिन उसके एक धक्के में ऐसे गिरे कि चारों खाने चित्त हो गये। फिर भी बुड्ढे ने संयम से काम लिया। वह जल्दी से उठ बाहर भागा और जोर-जोर से चिल्लाने लगा—"दौड़ो! बचाओ! देवकुमार मेरी कला का गला घोंट रहा है।"

लोग दौड़ पड़े। देखते ही देखते गगाधर का आँगन भीड़ से खचाखच भर गया। क्या है! क्या बात हो गई? देवकुमार कहाँ से आ गया? आदि प्रश्न सर्वत्र गूंजने लगे।

तब दोपहर हो गई थी। आँगन में थोड़ी सी धूप थी और हवा ऐसी सधी चल रही थी मानो कोई नवोढ़ा दुल्हन हो जो अभी डोली से उतरी हो। लोगों ने कोशिश करके देवकुमार को कला से छुड़ाया। वह मृत प्राय: सी हो जमीन पर गिर पड़ी और देवकुमार भीड को चीरता हुआ बाहर की ओर भागने लगा। वह कहता जा रहा था और अपनी छाती पीट रहा था—"कला ने मेरा सत्यानाश कर दिया। कला, कला नहीं जहर बुझाई छुरी निकली। मैं बरबाद हो गया। मैं लुट गया! मैं चिल्ला-चिल्लाकर कहूँगा कि कला ने मेरा सर्वनाश कर दिया।"

रामकुमार बच्चों की भाँति फूट-फूट कर रोने लगे। वे पुत्र के पीछे भागे। लेकिन देवकुमार आगे बढ़ता जा रहा था और विक्षिप्त की नाई बक रहा था—"मैं तो कला को ही दोष दूंगा इसने ही मेरा सत्यानाश किया!" रामकुमार भागते गये। पागलों की भाँति देवकुमार आगे-आगे दौड़ता गया। पता नहीं कब रात हो गई। रामकुमार थक कर

वीराने में ही बैठ गये और पागल देवकुमार शहर की गलियों में आकर भटकने लगा।

जिस घर में देवकुमार रहता था वहाँ कोई बंगाली-दम्पति आकर आबाद हो गये थे। वह दरवाजे पर पहुँचा और सनसनाता हुआ आँगन में घुस गया। वहाँ एक अपरिचित स्त्री को सामने देख वह यह कहता हुआ बाहर भागा—"नहीं, तुम शरबती नहीं हो सकतीं। वह मुझसे रूठ गई है तभी तो जलकर मर गई। मैं खून पी लूंगा कला का ! इसी ने मुझे बरबाद किया।"

अब स्थिति यह थी कि देवकुमार के पीछे लड़कों का आलम चलता। वे उसे खिझाते, चिढ़ा-चिढ़ा कर भागते और कोई-कोई शरारती लड़के ईंट ढेलों से भी खबर लेते। आवेश और असन्तुलन में आ, देवकुमार ने अपने कपड़े चींट-चींट कर डाले थे। पैरों के जूते पता नहीं कहाँ छूट गये और दो ही चार दिन के अन्तर में उसकी दाढ़ी काफी बढ़ गई, बाल रूखे हो गये थे। वह सचमुच पागल बन गया था। जब वह शहर के सम्भ्रान्त बाजारों में पहुँचता और दोनों हाथों से छाती पीट पीट कर कहता—"कला मेरी दुश्मन है। उसने ही मुझे तबाह किया. मैं बरबाद हो गया !! कला ने मेरा सब कुछ लूट लिया !!!" तो लोग यह अनुमान लगाने लगते कि यह कोई कलाकार है। इसे कला से रुचि रही होगी और जब सफलता नहीं मिली, तो यह पागल हो गया।

किन्तु जब राधामोहन के घर के सामने होकर देवकुमार निकलता, तो रेवा रो देती। उसको घर में बुलाने का प्रयत्न करती तब वह हँस कर कहने लगता—"भाभी ! तुम नहीं जानतीं, कला से मेरी कट्टर दुश्मनी है। मैं उसको नेस्त नाबूद कर दूंगा; क्योंकि उसने मुझसे माँ को छीन लिया है और शरबती को ?"

और कभी-कभी वह बैंक भी पहुँच जाता। वहाँ लोग उसका उपहास करते। तब राधामोहन की आँखों में आँसू आ जाते। वह मन

हने लगता कि मन की ग्रन्थि, जब खुलती नहीं तो विवेक भ्रष्ट है। आदमी पागल हो जाता है और दुनियाँ उसकी खिल्ली

डाक्टर हरीश और चारुशीला दोनों ही बहुत दुखी थे और इस कि किसी प्रकार देवकुमार को दयाल बाग के पागल खाने जाय। बहुत सम्भव है कि वहाँ उसके मन की स्थिति में सुधार लेकिन पागल बहकता है, सुनता किसी की नहीं।

दिन पर दिन बीतते रहे। जाड़ा बीता, गरमी आई, बरसात के बाद शरदऋतु का आगमन हुआ; किन्तु देवकुमार विक्षिप्त हो। उसमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ। वह अहर्निश सोते जागते, ठते और चलते-फिरते यही बका करता—"कला ने मुझे बरबाद दया!" समझने वाले तथ्य को परखकर, लम्बी-लम्बी साँसें छोड़ते अनजान यह कहकर छुट्टी पा जाते, कि यह पागल अजीब है। दिन-एक ही बात रटा करता है।